संवर्ग-1 : अनुप्रायोगिक मनोविज्ञान एवं व्यक्तित्व

इकाई-1 : व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं व्यकित्व वर्गीकरण : विकास, परिभाषाएं एवं क्षेत्र

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास
1.2.1 प्रथम चरण-गर्भावस्था
1.2.2 द्वितीय चरण-जन्मकाल
1.2.3 तीसरा चरण-बाल्यावस्था
1.2.4 चौथा चरण-युवावस्था
1.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं
1.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र
1.4.1 मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा
1.4.2 सामाजिक समस्याएं
1.4.3 शिक्षा
1.4.4 परामर्श तथा निर्देशन
1.4.5 उद्योग एवं व्यापार
1.4.6 सेवाओं या नौकरियों में चुनाव
1.4.7 अपराध निरोध
1.4.8 सैनिक क्षेत्र
1.4.9 राजनैतिक क्षेत्र
1.4.10 विश्व शांति
1.4.11 यौन शिक्षा
1.4.12 क्रीड़ा या खेल क्षेत्र
1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 प्रस्तावना (Introduction)

मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को विभिन्न मानवीय समस्याओं के सुलझाने में प्रयोग करना व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है। अर्थात् मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग मानव समस्या का समाधान एवं उसके कल्याण के लिए किया जाता है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का ही एक पहलू है। हैपनर के अनुसार, ''व्यावहारिक मनोविज्ञान के लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन, भविष्य कथन और मानव क्रियाओं पर नियंत्रण है जिससे कि हम अपने जीवन को बुद्धिमत्तापूर्वक समझ सकें और निर्देशित कर सकें तथा दूसरे के जीवन को प्रभावित कर सकें।''

व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का ही एक पहलू है। जिस तरह विज्ञान के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों पहलू होते हैं उसी प्रकार मनोविज्ञान में सैद्धांतिक के साथ-साथ व्यावहारिक पहलू भी है। इसमें भी मनोवैज्ञानिक या वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में प्रयोग के आधार पर सामान्य सिद्धांतों की खोज करता है और इनके लाभों को जनसाधारण तक पहुंचाता है।

1.1 उद्देश्य (Objectives)

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान के बारे में जान सकेंगे।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
3. व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाओं को जान सकेंगे।
4. व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्रों को पढ़ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.2 व्यावहारिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास (Historical Background of Applied Psychology and Development)

पैटर्सन (1940) ने अपने लेख Applied Psychology Comes of Age में व्यावहारिक मनोविज्ञान के इतिहास के विकास पर प्रकाश डाला। उनके अनुसार व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास चार चरणों में हुआ है। ये चरण हैं-गर्भावस्था, जन्मकाल, बाल्यावस्था तथा युवावस्था।

1.2.1 प्रथम चरण - गर्भावस्था

पैटर्सन के अनुसार 1882 से लेकर 1917 तक मनोविज्ञान का विकास व्यावहारिक मनोविज्ञान के गर्भावस्था का काल था। इस काल में गाल्टन, केटेल और बिने का योगदान महत्वपूर्ण था। इस काल में अमेरिका जैसे कई देश विश्व युद्ध में लगे हुए थे।

1.2.2 द्वितीय चरण- जन्मकाल

पैटर्सन ने 1917 से 1918 तक के समय को व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्मकाल माना है और इस काल में कई मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण हुआ। इस काल में ही अमेरिका जैसे देशों ने सेना में भर्ती के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया। इसी काल में सैनिकों के चुनाव के लिए आर्मी-अल्फा और आर्मी-बीटा परीक्षणों का जन्म हुआ। अल्फा परीक्षण अधिकारी वर्ग के लिए तथा बीटा परीक्षण अनपढ़ लोगों के लिए उपयोग में लाये गए।

1.2.3 तीसरा चरण- बाल्यावस्था

पैटर्सन के अनुसार सन् 1918 से 1937 तक मनोविज्ञान के विकास के काल को व्यावहारिक मनोविज्ञान की बाल्यावस्था मानी जानी चाहिए। इसी काल में 1937 में अमेरिका में व्यावहारिक मनोविज्ञान के एक राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय सुधार में मनोविज्ञान के व्यवहार को बढ़ावा देना था।

1.2.4 चौथा चरण- युवावस्था

सन् 1937 के बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान ने अपनी युवावस्था में प्रवेश किया। तब से आज तक इसका क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान काल में मानव के जीवन के कई क्षेत्र में इसका उपयोग हो रहा है।

1.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं

कई मनोवैज्ञानिकों ने व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं जिनमें कुछ प्रमुख परिभाषाओं को आगे दिया जा रहा है। वैसे सामान्य परिभाषा में ''व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक मनोविज्ञान का व्यावहारिक अध्ययन है।''

एच. डब्ल्यू. हैपनर के अनुसार ''व्यावहारिक मनोविज्ञान का लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन, भविष्य कथन एवं नियंत्रण है ताकि हम स्वयं अपने जीवन को बुद्धिमतापूर्ण सही ढंग से समझ सकें तथा अन्य व्यक्तियों को प्रभावित कर सकें।''

आर. डब्ल्यू. हजबैण्ड के अनुसार ''व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन करता है।''

पॉफेन बर्जर के अनुसार ''व्यावहारिक मनोविज्ञान के उद्देश्य विभिन्न प्रकार की योग्यताओं एवं क्षमताओं से युक्त व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने तथा उनके पर्यावरण का चयन एवं नियंत्रण करने के बाद उनको उनके कार्यों से इस प्रकार समायोजित करना है कि वे अधिक से अधिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत सुख तथा संतोष पा सकें।''

अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अपने या दूसरों के व्यवहार या आचरण एवं व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन एवं आवश्यकता अनुसार वांछित परिवर्तन लाने वाले मनोविज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान कहते हैं।

1.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र (Fields of Applied Psychology)

आधुनिक युग में व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बराबर बढ़ता जा रहा है। उस हर क्षेत्र में जहां मानव जीवन में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है वहां व्यावहारिक मनोविज्ञान का भी क्षेत्र है। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बड़ा व्यापक एवं विस्तृत है। परन्तु इसके क्षेत्र को निम्नलिखित मुख्य भागों में बांटा जा सकता है-

1. मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा (Mental Hygiene and Cure)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. सामाजिक समस्याएं (Social Problems)
3. शिक्षा (Education)
4. परामर्श तथा निर्देशन (Counselling and Guidance)
5. उद्योग एवं व्यापार (Industry and Trade)
6. सेवाओं या नौकरियों में चुनाव (Selection in Services or Jobs)
7. अपराध निरोध (Prevention of Crime)
8. सैनिक क्षेत्र (Army Field)
9. राजनैतिक क्षेत्र (Political Field)
10. विश्व शांति (World Peace)
11. यौन शिक्षा (Sex-Education)
12. क्रीड़ा या खेल क्षेत्र (Sport field)

1.4.1 मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा (Mental Hygiene and Cure)

व्यावहारिक मनोविज्ञान का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में नैदानिक मनोविज्ञान से व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित समस्याओं को समझने, उनके कारणों का पता लगाने तथा उनका निराकरण करके व्यक्ति के वातावरण को अनुकूल बनाने में सहायता मिलती है। मानसिक स्वास्थ्य को किस तरह बनाये रखा जा सकता है इसके लिए विभिन्न उपायों तथा तकनीकों की खोज की जाती है एवं व्यक्तियों को जानकारी दी जाती है। मनोवैज्ञानिकों के हस्तक्षेप के पूर्व मानसिक विक्षिप्तों पर ओझों तथा झाड़-फूंख करने वालों के द्वारा अमानुषिक अत्याचार किये जाते थे। पागलों को बेड़ियों में जकड़ कर बन्द स्थानों पर रखा जाता था। मनोवैज्ञानिकों ने पागलों की बेड़ियां कटवा दी और मनोरोगों के कारणों का विश्लेषण करके उनकी चिकित्सा प्रारम्भ की। आज प्रत्येक व्यवस्थित एवं विकसित मानसिक चिकित्सालय में कोई न कोई अवश्य रहता है। मानसिक रोग जैसे हिस्टीरिया, मनोविक्षिप्तता, मनोग्रंथियां एवं मनोविदलता के बारे में लोगों में बड़ी भ्रान्तियां फैली हुई थीं। रोगियों पर भूत-प्रेत का प्रभाव मानते थे। कई मनोरोगियों को डायन समझा जाता था और उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। मनोवैज्ञानिकों ने इन मानसिक रोगों के कारणों का विश्लेषण करके कारणों का पता लगाकर मानसिक रोगों की सफलता पूर्वक चिकित्सा की। फ्रायड, युंग, एडलर आदि मनोविश्लेषण वादियों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण अन्वेषण किये। मनोवैज्ञानिकों ने इस बात का पता लगाया कि मन और शरीर का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अत: रोगियों में शारीरिक रोगों के साथ-साथ मानसिक व्याधियां भी होती हैं। कई शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए आधुनिक चिकित्सक मनोवैज्ञानिकों की सहायता लेते हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि यदि मानव प्रवृत्तियों एवं मानसिक प्रक्रियाओं को ठीक-ठीक और सही ढंग से समझ लिया जाए तो 95% रोगी केवल सुझावों (Suggestions) के द्वारा ठीक किये जा सकते हैं।

वर्तमान काल में ध्यान-योग (ध्यान-योग की विशेष पद्धतियां जैसे-भावातीत ध्यान, प्रेक्षाध्यान, विपश्यना ध्यान, योगासन आदि) द्वारा मानसिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखा जा सकता है। ध्यान-योग द्वारा मानसिक रोगों की चिकित्सा भी की जा सकती है। इस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई शोध कार्य किये जा चुके हैं और निरन्तर चल रहे हैं। व्यावहारिक मनोविज्ञान के मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा क्षेत्र में योग मनोविज्ञान का भी महत्वपूर्ण योगदान है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ध्यान की विशेष पद्धतियों और योगासनों से मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बनाये रखा जा सकता है। योग मनोविज्ञान द्वारा भी सम्पूर्ण योग की शिक्षा देकर स्वास्थ्य को सुधारा जा सकता है और अच्छा बनाये रखा जा सकता है।

1.4.2 सामाजिक समस्याएं (Social Problems)

व्यावहारिक मनोविज्ञान का सामाजिक समस्याओं को सुलझाने तथा सही और स्वस्थ समाज का निर्माण करने में भी महत्वपूर्ण योगदान है। समाज को समृद्ध बनाने और उसकी प्रगति बनाये रखने में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान उपयोगी सिद्ध हुआ है। समाज के व्यक्तियों के समुचित अनुकूलन के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। जाति-भेद समस्या, रूढ़िवादी मानसिकता, दहेज प्रथा, कुपोषण, बाल विवाह आदि जैसी ज्वलन्त समस्याओं पर व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया जाता है। सामाजिक सेवाओं, सामाजिक शिक्षा और समाज कल्याण में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षणों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के आधार पर जनता की अभिरुचि का पता लगाकर एवं उसको समझकर उसके अनुकूल सुझाव देने व सुधार करने का प्रयत्न किया जाता है। पश्चिमी देशों में रंग-भेद की समस्याओं का मूलाधार एवं समाज में जातिवाद व जातिभेद की समस्याएं भी मनोवैज्ञानिक हैं। इन सभी को व्यावहारिक मनोविज्ञान द्वारा हल किया जाता है।

समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है और इन सामाजिक सम्बन्धों के ठीक रहने से ही समाज ठीक रहता है। इनमें गड़बड़ी से ही सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। सामाजिक सम्बन्ध मनुष्यों की प्रवृत्तियों, भावनाओं आदि के परस्पर समायोजन पर निर्भर करते हैं। वास्तव में सामाजिक समस्याएं इसी समायोजन की समस्याएं हैं। इनको सुलझाने के लिए भी मनोवैज्ञानिक तरीकों को काम में लिया जाता है।

1.4.3 शिक्षा (Education)

वर्तमान काल में शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का व्यवहार बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान ने क्रांति कर दी है। शिक्षा मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय बन गया है। शिक्षा के क्षेत्र में नयी-नयी खोज, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, चिन्तन, तर्क आदि अनेक मानसिक प्रक्रियाओं पर शोध एवं मनोवैज्ञानिक नियमों की खोज की जा रही है। पाठ्यक्रमों को बालकों की रुचि के अनुसार बनाने की चेष्टा की जा रही है। बालकों की रुचि योग्यता और व्यक्तित्व के विकास के लिए विभिन्न शोध कार्य किये जाते रहे हैं। शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा शिक्षा देने के उत्तम उपाय खोजे जा रहे हैं। शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण देने एवं व्यवहार कुशल बनाने के लिए भी शिक्षा मनोविज्ञान की अहम् भूमिका है। बालकों में अनुशासन किस तरह उत्पन्न किया जाए, स्वस्थ आदतें कैसी बनाई जाएं, बुरी आदतें कैसे छुड़ाई जाएं तथा उनकी विभिन्न योग्यताओं का सर्वोत्तम विकास किस तरह किया जाए, यह भी शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों की अभिरुचि तथा मानसिक परीक्षा करके उनके अध्ययन के विषयों को सुनिश्चित करने में सहायता देते हैं। बालक का सर्वांगीण विकास किस तरह किया जा सकता है, बालक को क्या पढ़ायें, कब पढ़ायें व कैसे पढ़ायें, इन सम्भावनाओं का भी पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक सुझावों के आधार पर पाठ्यक्रमों में सुधार तथा विद्यार्थियों में विभिन्न कार्यक्रमों का प्रबन्धन, शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध, शिक्षा-प्रणाली आदि का भी अध्ययन कर इनमें वांछित सुधार किये जाते हैं।

उच्च शिक्षा के लिए, विषयों के चयन के लिए और शिक्षा समाप्ति के पश्चात् व्यवसायों के चयन के लिए मनोवैज्ञानिकों के द्वारा परामर्श व निर्देशन दिये जाते हैं जिससे छात्रों में भटकाव की सम्भावना कम रहती है। छात्रों की योग्यताएं, अभिवृत्ति, बुद्धि एवं कार्य करने की क्षमता के आधार पर उनको उचित रोजगार की सलाह दी जाती है। चूंकि विद्यार्थी ही आगे जाकर समाज का परिपक्व नागरिक बनता है, अत: उसे सामाजिक कुरीतियों एवं बुराईयों से दूर रहने की प्रेरणा व शिक्षा दी जाती है। मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाली हानियों के प्रति भी विद्यार्थियों को जागृत किया जाता है जिससे कि वह आगे चलकर व्यसन मुक्त आदर्श व्यक्ति बन सकें। वर्तमान समय में संचार माध्यमों द्वारा, पाश्चात्य संस्कृति का हमारे देश के बालकों पर हमला हो रहा है, जिससे बालकों में असामान्य व्यवहार जैसे—विद्यालय से भाग जाना (भगोड़ा व्यवहार), मादक पदार्थों का सेवन करना तथा चोरी करने जैसे अन्य असामाजिक व्यवहार पैदा हो रहे हैं। इन सबका उपचार व समाधान व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक करते हैं।

1.4.4 परामर्श तथा निर्देशन (Counselling and Guidance)

वर्तमान काल में व्यक्ति का जीवन संघर्षमय हो गया है। व्यक्तियों को भारी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। पढ़े लिखे लोगों में भी बेरोजगारी फैली हुई है। गलत व्यवसाय के चयन की समस्या हर कहीं बनी हुई है। बेरोजगारों की अपेक्षा नौकरियां बहुत कम हैं जिससे बेरोजगारों में संघर्ष व तनाव व्याप्त है। पढ़े-लिखे लोग भी व्यवसायों में जाना नहीं चाहते और नौकरियों के पीछे भागते हैं। इनमें से अधिकतर लोग यह भी समझ नहीं पाते कि वे कौन सा कार्य कर सकते हैं व उनमें कौन से कार्य करने की क्षमता है। ऐसे लोग ऐसे व्यवसाय चुन लेते हैं जो उनके लिए उपयुक्त नहीं होते और कालान्तर में वे असफल हो जाते हैं। अत: विकासशील देशों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से परामर्शदाता एवं मनोवैज्ञानिक लोगों को उनका व्यवसाय निश्चित करने के लिए सलाह देते हैं। इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक सेवाएं विद्यालयों में, महाविद्यालयों में, विश्वविद्यालयों में और रोजगार कार्यालयों में भी मनोवैज्ञानिकों की सहायता से दी जाती है।

सही लोगों के लिए सही काम का चयन (व्यवसाय चयन) और उपयुक्त काम के लिए सही व्यक्ति का चयन (कर्मचारी चयन) भी मनोविज्ञान की सहायता से किया जाता है। व्यवसाय में आने वाली रुकावटों और समस्याओं का समाधान भी मनोवैज्ञानिक तरीकों से किया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत व घरेलू समस्याओं को सुलझाने में भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परामर्श देता है। इस तरह के परामर्श की लोगों को आवश्यकता पड़ती रहती है और परामर्श से उनकी समस्याओं का समाधान हो जाता है। व्यक्ति की स्वयं की खराब आदतें और अपने पुत्र-पुत्री या परिवार के किसी सदस्य की असमायोजन की समस्या के लिए भी मनोवैज्ञानिक परामर्श लिया जाता है। म्नोवैज्ञानिक परामर्श से व्यक्ति अपने या अपने परिवार के सदस्य के व्यवहार में वांछित सुधार लाकर अपनी और अपने परिवार के सदस्यों की प्रगति कर सकता है।

1.4.5 उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र (Industry and Trade)

उद्योग एवं व्यापार को वैज्ञानिक स्तर पर लाने एवं इनको आधुनिक बनाने में भी मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। औद्योगिक क्षेत्रों में उद्योगों की सही ढंग से स्थापना करना, उनको आधुनिक रूप देना, कर्मचारियों का चयन, मशीनों का चयन एवं प्रबंधन को दुरूस्त करने में मनोविज्ञान ने बहुत सहायता की है। इसके अध्ययन के लिए मनोविज्ञान की शाखाएं जैसे-औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) एवं संगठन मनोविज्ञान (Organisational Psychology) की स्थापना हुई है। औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योग के उत्पादन की समस्या, मशीनों की समस्या, कर्मचारियों की समस्या आदि का अध्ययन करता है जबकि संगठन मनोविज्ञान उद्योग के प्रबन्धन का विशेष रूप से अध्ययन करता है। आधुनिक युग में जहां विश्वभर में उद्योग एवं आर्थिक उदारीकरण को प्राथमिकता दी जा रही है, वहीं व्यापार क्षेत्र में भी भारी बदलाव आ रहा है। ऐसी स्थिति में औद्योगिक मनोविज्ञान एवं संगठन मनोविज्ञान का महत्व और भी बढ़ जाता है।

औद्योगिक मनोविज्ञान इस बात का अध्ययन करता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक अच्छी किस्म का उत्पादन किस प्रकार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्याएं, कर्मचारियों की औद्योगिक समस्याएं, कर्मचारियों की चयन समस्याएं, कर्मचारियों की कार्य दशाएं, कर्मचारियों का मनोबल, कर्मचारियों का प्रशिक्षण, कारखानों में मशीनों की दशाएं आदि समस्याओं का अध्ययन भी करता है। इन सभी समस्याओं के अध्ययन के बाद मनोवैज्ञानिक उद्योग एवं कर्मचारी कल्याण के लिए समाधान सुझाता है। इसके अतिरिक्त कारखानों और उद्योगशालाओं की बहुत सी समस्याओं जैसे यंत्रों में सुधार, कार्य करने की विधि, कार्य करने के घण्टे तथा विश्राम के समय का वितरण, थकावट और उकताहट दूर करने के उपाय, वेतन तथा मजदूरी का निर्धारण, काम करने की स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियां आदि पैदा करने में भी मनोवैज्ञानिकों से बहुत सहायता मिलती है। कारखानों में दुर्घटनाओं की रोकथाम सम्बंधी मनोवैज्ञानिक सुझाव भी दिये जाते हैं। मजदूरों या कर्मचारियों और प्रबन्धकों के बीच मतभेदों को दूर करने में, ताले बन्दी की समस्याएं सुलझाने में भी मनोविज्ञान ने बड़ी सहायता की है। कर्मचारियों के चौकन्नेपन की, रुचियों की, अभिवृत्ति की, बुद्धि एवं विशेष योग्यताओं की विभिन्न परीक्षाओं तथा परीक्षणों आदि से जांच की जाती है।

उद्योग के उत्पादन, वितरण, विनिमय आदि कार्यों के सभी क्षेत्रों में मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन के उपभोक्ता, विक्रय तथा विज्ञापन आदि का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। उपभोक्ता किस तरह की वस्तुओं को पसन्द करता है और उन वस्तुओं को किस तरह बेचा जाता है, उत्पादन की गुणवत्ता किस तरह बढ़ाई जा सकती है, विज्ञापन के कौन से तरीके सफल हो सकते हैं आदि इन सभी प्रश्नों के मनोवैज्ञानिक समाधान सुझाये जाते हैं। व्यापारिक क्षेत्र एवं शेयर बाजार में भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव देखे जाते हैं।

1.4.6 सेवाओं या नौकरियों में चुनाव (Selection in Services or Jobs)

वर्तमान में लगभग सभी देशों में सभी प्रकार की सरकारी और गैर सरकारी नौकरियों या सेवाओं में चुनाव के लिए मनोवैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता ली जाती है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा बनाये गए मनोपरीक्षण एवं परीक्षाओं के आधार पर सार्वजनिक सेवा आयोग, लोक सेवा आयोग तथा अन्य नियुक्ति संस्थाएं, सरकारी हों या गैर सरकारी, कर्मचारियों का चुनाव करती हैं। सेना में भी थल, वायु और जल सेवाओं के लिए योग्यता परीक्षाओं द्वारा योग्य व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। ये योग्यता परीक्षाएं वास्तव में मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं ही हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेना में भर्ती के लिए आर्मी एल्फा तथा आर्मी बीटा मनोवैज्ञानिक परीक्षण बनाए गए थे। अधिकारियों के चुनाव के लिए आर्मी एल्फा परीक्षण तथा सामान्य सैनिकों के चुनाव के लिए आर्मी बीटा परीक्षण काम में लिए गए। कारखानों में मशीनों को चलाने के लिए उपयुक्त कर्मचारी के चुनाव के लिए भी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। गैर सरकारी संस्थाएं भी अपने कर्मचारियों का चुनाव मनोवैज्ञानिक ढंग से करती हैं। आधुनिक युग में जहां नयी-नयी तकनीकों का उपयोग बढ़ रहा है वहीं उनके संचालन के लिए चयनित कर्मचारियों की नियुक्ति होती है। इन कर्मचारियों का चुनाव मनोवैज्ञानिक विधि से होता है। इस तरह हम देखते हैं कि नौकरियों में चुनाव के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान का बहुत महत्व है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.4.7 अपराध निरोध (Prevention of Crime)

अपराधों एवं अपराधियों की रोकथाम में मनोविज्ञान ने बहुत सहायता की है। बढ़ती जनसंख्या एवं बेरोजगारी ने समाज में अपराधियों एवं अपराधों की संख्या भी बढ़ा दी है। मनोविज्ञान के अनुसार अपराधी को दण्ड देने की अपेक्षा उसके दोषों को समझकर उनमें सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। अपराधियों की मानसिकता बदलने का प्रयास किया जाता है ताकि वह अपराध कर ही न सके। अपराधियों को सुधारने की दिशा में नित्य नये प्रयोग किये जाते हैं। खुले जेल-खाने, बालसुधार गृह, जूवेनिल रिफार्म हाऊस आदि इसी के परिणाम हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान के प्रभाव से अपराधियों के प्रति दुर्व्यवहार बन्द हो गया है और उनमें सुधार होता जा रहा है।

किशोर अपराधियों को सुधारने के लिए भी कई मनोवैज्ञानिक उपायों को अपनाया जाता है। किशोर अपराधियों के रहने के वातावरण एवं उनकी परिस्थितियों में भी परिवर्तन लाने का मनोवैज्ञानिक प्रयास किया जाता है। मनोविज्ञान ने अपने शोध कार्यों में यह सिद्ध कर दिया है कि अपराधी अकेले ही अपराधों के लिये उत्तरदायी नहीं हैं बल्कि उनकी परिस्थितियां, उनका वातावरण और समाज भी अपराध के लिए जिम्मेदार हैं। अत: मनोविज्ञान इन सभी का उपचार करने का प्रयत्न करता है। छोटे बच्चों द्वारा मादक द्रव्यों की तस्करी करना और उनका सेवन करना बच्चों का अपराध नहीं है बल्कि उनका समाज, उनका वातावरण एवं परिस्थितियां यह कृत्य करने के लिए उन्हें बाध्य करती हैं। ऐसी परिस्थिति में मनोवैज्ञानिक छोटे बच्चों की परिस्थितियों, मानसिक अवस्थाओं में सुधार लाने का प्रयत्न करते हैं। छोटे बच्चों के वातावरण, परिस्थितियां एवं उनकी दिनचर्या को भी बदलने का प्रयास किया जाता है।

अपराध निरोध के अतिरिक्त न्याय करने में भी मनोविज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। न्यायधीश की मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि सही न्याय देने में सक्षम होती है। अनेक यंत्रों द्वारा भी अपराधी की आन्तरिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है और सही न्याय किया जा सकता है।

1.4.8 सैनिक क्षेत्र (Army Field)

सेना में भर्ती हेतु उपयुक्त व्यक्तियों के चुनाव में मनोविज्ञान की सहायता ली जाती है। जल, थल तथा वायु सेनाओं में भर्ती के लिए अभ्यासार्थियों का चयन मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा किया जाता है। युद्ध काल के दौरान शत्रु को भयभीत करने तथा सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए मनोविज्ञान की सहायता ली जाती है। देशों के बीच शीतयुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रचारों पर ही निर्भर होते हैं। सैनिकों में स्थिरता और दृढ़ता बनाये रखने के लिए मनोवैज्ञानिक सुझाव दिये जाते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अल्फा और बीटा परीक्षण भी सेना में सैनिकों के चयन के लिए काम आते हैं। ये परीक्षण मनोवैज्ञानिक स्तर पर बनाये जाते हैं। युद्ध के दौरान कई सैनिक मानसिक रोगों के शिकार हो जाते हैं। युद्ध की स्थितियों से मनोबल एवं मनोस्थितियों में बदलाव आ जाता है, जिससे सैनिक युद्ध से भाग सकता है। अत: सैनिकों का मनोबल बनाये रखने व मानसिक द्वन्द्वों की तुरंत चिकित्सा करने के लिए मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों की सहायता ली जाती है।

1.4.9 राजनीतिक क्षेत्र (Political Field)

राजनीतिक क्षेत्र में राज्य या देश तानाशाही हो, सामन्तशाही हो या जनतंत्रात्मक हो, मनोविज्ञान का व्यापक रूप से प्रयोग होता है। शासक को सफल होने के लिए शासकों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से जानना जरूरी है। अच्छा शासक अपनी प्रजा का मनोविज्ञान जानकर उसके अनुसार क्रिया करता है। कानून बनाने के बाद शासन की समस्या हल नहीं हो जाती क्योंकि जनता में कानून को मानने और तोड़ने दोनों तरह की प्रवृत्तियां पायी जाती हैं। कानून का पालन कराने के लिए शासक को जनता से मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यवहार करने की आवश्यकता होती है। इसी तरह कानून बनाने में भी इस बात के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है कि उस कानून से प्रभावित होने वाले लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा तथा उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू चुनाव भी है और चुनाव में प्रचार का बड़ा महत्व है। मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया चुनाव प्रचार व्यक्ति को अपने उद्देश्य में सफलता दे सकता है। चतुर लोग मनोवैज्ञानिक प्रचारों से मतदाताओं का रुख ऐन वक्त पर पलट देते हैं और हारी हुई बाजी को जीत लेते हैं। कुछ लोग चुनाव के समय लोगों की भावनाएं जानकर, उनकी भावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से भुनाकर चुनाव जीत जाते हैं। चुनाव के समय विशेष क्षेत्र के मतदाता क्या चाहते है? उनकी मानसिक दशाएं कैसी हैं? इस ज्ञान के आधार पर ही चुनाव प्रचार किया जाता है। राजनैतिक प्रशासन में भी मनोविज्ञान का बहुत महत्व है। राजनैतिक पार्टियों का मनोबल गिराने या बढ़ाने में भी मनोविज्ञान की अहम भूमिका रहती है। उपद्रवों या दंगा करने वाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भीड़ को शान्त करना हर अधिकारी के लिए सम्भव नहीं है। ऐसा तो वही कर सकता है जो भीड़ मनोविज्ञान को अच्छी तरह जानता हो। राजनेता अपनी राजनीति में तभी सफल हो सकता है जब उसे अपने दल के कार्यकर्त्ताओं के मनोविज्ञान का ज्ञान हो, साथ ही साथ दूसरे दलों के मनोविज्ञान का भी।

1.4.10 विश्व शान्ति (World Peace)

विश्व शान्ति को बनाये रखने के लिए मनोविज्ञान की भूमिका अहम् है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण समझ लेने पर विभिन्न राष्ट्रों के लोगों में आपसी मतभेद कम हो जाते हैं। लोगों के व्यक्तित्व के विधेयात्मक गुणों को बढ़ाकर तथा हिंसात्मक एवं आक्रामक प्रवृत्तियों को ज्ञान से अहानिकारक तरीकों जैसे खेलों की प्रतियोगिताओं आदि के द्वारा निकालकर विश्व में हिंसा और संघर्ष कम किये जा सकते हैं। अशान्ति और संघर्ष के मनोवैज्ञानिक कारणों पर दृष्टि रखकर उनके प्रकट होने से पहले ही उन्हें खत्म किया जा सकता है। विभिन्न जातियों एवं प्रजातियों तथा सम्प्रदायों की प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति पर नजर रखी जा सकती है और उनको आपसी संघर्ष से बचाया जा सकता है। विश्व शान्ति की समस्याएं मानव सम्बन्धों से जुड़ी हुई हैं। अत: मानव मनोविज्ञान के ज्ञान से विश्व में शान्ति बनाई रखी जा सकती है।

1.4.11 यौन शिक्षा (Sex-education)

यौन-क्रिया सभी प्राणियों में एक आवश्यक शारीरिक या जैविक प्रेरणा है। सभी प्राणी प्रजनन से अपना वंश बढ़ाते हैं। परन्तु जब मनुष्य में यौन-क्रिया समय से पूर्व शुरू हो जाए और अनैतिक आचरण के लक्षणों के रूप में प्रकट होने लगे तो यह एक व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामाजिक समस्या भी बन जाती है। जब व्यक्ति असामान्य यौन व्यवहार करने लगता है तथा असामान्य साधनों से अपनी काम पूर्ति करता है तो यह अनैतिक आचरण या चरित्र विकृति कहलाती है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य यौन स्वच्छन्दता का पूरे विश्व के लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ता जा रहा है। अवयस्क व्यक्ति भी इस समस्या की चपेट में आते हैं और समय से पूर्व वयस्क बन जाते हैं। टी.वी. मीडिया एवं अन्य कुछ मीडिया इस समस्या के प्रचारक हैं। यौन स्वच्छन्दता के कारण व्यक्तियों में चरित्र विकृतियां उत्पन्न होती जा रही हैं। बलात्कार एवं अन्य यौन विकृतियां भी इसके कारण हैं। दूसरी ओर इन विकृतियों के बढ़ने से व्यक्तियों में आपराधिक भावना भी पैदा होती है और वे मनोलैंगिक (Psycho-sexual) समस्याओं के शिकार हो जाते हैं। सम्भोग का सही अर्थ न समझना, मनोनपुंसकता का भय पैदा हो जाना आदि अनेक यौन समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान की यौन-शिक्षा शाखा उपरोक्त प्रकार के चरित्र विकृतियों में सुधार लाने एवं उन्हें ठीक करने के लिए उपाय सुझाती हैं। मनो-लैंगिक विकृतियों की भी मनोविश्लेषण एवं अन्य मनो-चिकित्सा द्वारा चिकित्सा की जाती है। अवयस्क व्यक्तियों को यौन शिक्षा देकर यौन का सही अर्थ समझाया जाता है और उनकी यौन समस्याओं का समाधान किया जाता है। यौनाचारण के लिए उन्हें सही समय और व्यवहार की जानकारी दी जाती है।

1.4.12 क्रीड़ा या खेल क्षेत्र (Sport Field)

खेल या क्रीड़ा जगत् में भी मनोविज्ञान का पर्याप्त उपयोग होता है। खिलाड़ियों के चयन के लिए ही मनोविज्ञान के परीक्षणों का उपयोग होता है। खेलकूद प्रतियोगिताओं में खिलाड़ियों का मनोबल और उत्साह बढ़ाने के लिए भी मनोविज्ञान का बहुत उपयोग होता है। यदि खिलाड़ी किसी कारणवश हतोत्साहित हो जाए तो ऐसी स्थिति में मनोविज्ञान उसकी पूरी सहायता करता है। खिलाड़ियों के मानसिक स्तर को सही बनाए रखने के लिए मनोविज्ञान का पर्याप्त उपयोग किया जाता है। खेल या प्रतियोगिता के समय खिलाड़ियों में चिन्ताएं, नैराश्यता एवं कुंठाएं उत्पन्न हो सकती हैं तथा उनमें प्रतियोगिता का एक दबाव बना रहता है। ऐसी स्थितियों में मनोवैज्ञानिक उनकी समस्याओं का निदान कर उचित उपाय या परामर्श सुझाते हैं जिससे कि खिलाड़ियों का मनोबल ऊंचा बना रहे। उनकी चिंताएं, कुंठाएं तथा नैराश्यता में कमी लायी जा सके। जिससे उनके खेल का प्रदर्शन बेहतर प्रतियोगिताओं में मनोवैज्ञानिक खिलाड़ियों के लिए बाहरी वातावरण को उनके पक्ष में बनाने के लिए भी प्रयत्न करते हैं। दर्शकों में कुछ ऐसे दर्शक बिठा दिए जाते हैं जो निरन्तर खेलने वाले खिलाड़ियों का मनोबल बढ़ाने के लिए दीर्घा से सकारात्मक टिप्पणी करके प्रोत्साहित करते रहते हैं। इसी तरह विरोधी टीम का मनोबल कम करने के लिए दीर्घा में दर्शक बिठा दिए जाते हैं। ये सब मनोवैज्ञानिक स्तर पर होते हैं। खिलड़ियों का मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए भी मनोविज्ञान पूरी तरह से उपयोगी होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

I निबन्धात्मक प्रश्न :

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं देते हुए इसके विकास को समझाइये।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के कौन-कौन से मुख्य क्षेत्र हैं? किन्हीं दो मुख्य क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

II लघूत्तरीय प्रश्न :

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान के कितने क्षेत्र हैं?
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के मानसिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा क्षेत्र को समझाइये।
3. सेवाओं या नौकरियों के चुनाव में व्यावहारिक मनोविज्ञान की भूमिका को समझाइये।

III वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास.......................... चरणों में हुआ।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के इतिहास पर.......................... ने प्रकाश डाला।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 2 व्यक्तित्व : अर्थ, परिभाषाएं एवं कारक

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 व्यक्तितत्व का अर्थ
2.3 व्यक्तितत्व की परिभाषाएं
    2.3.1 संग्रही
    2.3.2 समाकलनात्मक
    2.3.3 सोपानित
    2.3.4 समायोजन
2.4 व्यक्तितत्व के निर्धारक
    2.4.1 जैविक निर्धारक
    2.4.2 पर्यावरण सम्बन्धी निर्धारक
    2.4.3 सांस्कृतिक निर्धारक
2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.0 प्रस्तावना

व्यक्तित्व आधुनिक मनोविज्ञान का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विषय है। व्यक्ति के व्यवहार का पूर्व कथन भी उसके व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर किया जा सकता है। इस अध्याय में व्यक्तित्व क्या है? उसकी परिभाषाएं एवं व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों का हम अध्ययन करेंगे।

2.1 उद्देश्य

1. व्यक्तित्व के अर्थ को समझ सकेगें।
2. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को जान पायेंगे।
3. व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों को समझ सकेगें।

2.2 व्यक्तित्व का अर्थ

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण या विशेषताएं होती हैं जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होतीं। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्ति के इन गुणों का संगठन ही व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है।

व्यक्तित्व का अंग्रेजी रूपान्तरण पर्सनेलिटी है। जो लेटिन भाषा के पर्सोना शब्द से विकसित हुआ। पर्सोना का अर्थ बाह्य आवरण या मुखौटा होता है जिसको पहनकर या धारणकर कलाकार रूप बदलकर नाटक प्रस्तुत करते हैं। रोमन काल में विशेष गुणयुक्त पात्र को ही पर्सोना कहा जाने लगा। इस दूसरे अर्थ को ही आधुनिक मनोविज्ञान के पर्सोनलिटी में लिया गया है। जनसाधारण में व्यक्तितत्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप से लिया जाता है, परन्तु मनोविज्ञान में व्यक्तितत्व का अर्थ व्यक्ति के रूप गुणों की समष्ठी से है, अर्थात् व्यक्ति के बाह्य आवरण के गुण और आन्तरिक तत्व, दोनों को माना जाता है। दर्शन में व्यक्तित्व को आन्तरिक तत्व 'जीव' माना जाता है। व्यक्तित्व एक स्थिर अवस्था न होकर एक गत्यात्मक समष्ठी है जिस पर परिवेश का प्रभाव पड़ता है और इसी कारण से उसमें बदलाव आ सकता है। व्यक्तित्व विशेष लक्षणों का योग न होकर व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाएं और गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तितत्व झलकता है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसके वातावरण या परिवेश में समायोजन करने के लिए होता है।

2.3 व्यक्तितत्व की परिभाषाएं

मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं समाज-शास्त्रियों ने व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। इस तरह व्यक्तित्व की सैकड़ों परिभाषाएं दी जा चुकी हैं। सुविधा की दृष्टि से गिलफोर्ड (Guilford, 1959) ने इन

परिभाषाओं को चार वर्गों में बांट दिया है जो निम्नलिखित हैं—

1. संग्राही (Ominbus) परिभाषाएं
2. समाकलनात्मक (Integrative) परिभाषाएं
3. सोपानित परिभाषाएं (Hierarchical Definitions)
4. समायोजन (Adjustment) आधारित परिभाषाएं।

उपरोक्त वर्गों को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व की परिभाषाएं इस प्रकार दी जा सकती हैं—

2.3.1 संग्राही (Ominibus) या सर्वांगीण परिभाषाएं

इस वर्ग में वे परिभाषाएं आती हैं जो व्यक्ति की समस्त अनुक्रियाओं, प्रतिक्रियाओं तथा जैविक गुणों के समुच्चय पर ध्यान देती है। इसमें कैम्फ (Kempf) तथा मार्टन प्रिंस की परिभाषाएं महत्वपूर्ण हैं। कैम्फ (1919) के अनुसार ''व्यक्तित्व उन प्राभ्यास संस्थाओं का या उन अभ्यास के रूपों का समन्वय है जो वातावरण में व्यक्ति के विशेष सन्तुलन को प्रस्तुत करता है।''

मार्टन प्रिंस (Morton Prience 1924) के अनुसार ''व्यक्तित्व, व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रुझान, क्षुधाएं, मूल प्रवृत्तियां तथा अर्जित विन्यासों एवं प्रवृत्तियों का समूह है।''

2.3.2 समाकलनात्मक (Integrative) परिभाषाएं

इस वर्ग की परिभाषाओं में व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों, गुणों एवं तत्वों के योग पर बल दिया जाता है। इन गुणों के समाकलन से व्यक्ति में एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है। इस वर्ग की परिभाषाओं में वारेन तथा कारमाइकल (1930) एवं मेकर्डी की परिभाषाएं उल्लेखनीय हैं।

वारेन तथा कारमाइकल (Warren and Carmichacl) के अनुसार ''व्यक्ति के विकास की किसी अवस्था पर उसके सम्पूर्ण संगठन को व्यक्तित्व कहते हैं।''

मेकर्डी (Mac Curdy) के शब्दों में ''व्यक्तित्व रूचियों का वह समाकलन है जो जीवन के व्यवहार में एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।''

2.3.3 सोपानित परिभाषाएं (Hierarchical Definitions)

विलियन जैम्स तथा मैस्लो जैसे कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के कई सोपान बताए हैं। इन मनोवैज्ञानिकों ने मुख्य रूप से व्यक्तित्व के चार सोपान माने हैं।

1. भौतिक व्यक्तित्व (Material self)
2. सामाजिक व्यक्तित्व (Social self)
3. आध्यात्मिक व्यक्तित्व (Spiritual self)
4. शुद्ध अहम् (Pure Ego)

प्रथम सोपान के अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की बनावट में आनुवांशिकता से प्राप्त विशेष गुण सम्मिलित है जबकि द्वितीय सोपान में सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक विकास का उल्लेख होता है। व्यक्तित्व का तीसरा सोपान जैम्स ने आध्यात्मिक व्यक्तित्व माना है। उनके अनुसार इस सोपान वाले व्यक्ति की रूचि आध्यात्मिक विषयों में होती है और सामाजिक सम्बन्धों से इसे अधिक महत्व देता है। तब उसके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास होने लगता है। चौथे सोपान में व्यक्ति अपने आत्म स्वरूप का पूर्ण ज्ञान कर लेता है और सभी वस्तुओं में अपनी आत्मा का दर्शन करता है और तब वह अपने व्यक्तित्व के अंतिम सोपान पर पहुंचता है। श्री अरविन्द ने भी व्यक्ति विकास के क्रम में करीब-करीब इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने भौतिक (Physical), भावात्मक या प्राणिक (Vital), बौद्धिक (Mental), चैत्य (Psyche), आध्यात्मिक (Spiritual) तथा अति मानसिक (Supramental) सोपानों का उल्लेख किया है।

2.3.4 समायोजन (Adjustment)

इस वर्ग की परिभाषाओं में मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यक्तितत्व के अध्ययन तथा व्याख्या में समायोजन को महत्वपूर्ण मानते हैं। इस वर्ग में वे परिभाषाएं आती हैं जिनमें समायोजन पर सबसे अधिक बल दिया जाता है। व्यक्ति में ऐसे गुण जो उसको समायोजित करने में उसकी सहायता करते हैं, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक उन सब का गठन इस प्रकार का होता है कि वे निरन्तर गतिशील रहते हैं। इन गुणों की गत्यात्मकता के कारण ही एक विशेष प्रकार की अनन्यता या अपूर्वता (Uniqueness) व्यक्ति में पैदा हो जाती है। बोरिंग के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति का उसके वातावरण के साथ अपूर्व व स्थायी समायोजन है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यक्ति के व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से परिभाषित करने में उपरोक्त परिभाषाएं आंशिक हैं। किसी व्यक्ति का चाहे कितने ही मानसिक या शारीरिक गुणों का योग हो, कितना ही चिन्तनशील या ज्ञानी हो, परन्तु उसके व्यवहार में गतिशीलता न होने पर उसका व्यवहार और समायोजन अधूरा रह जाता है। आलपोर्ट ने इस बात को ध्यान में रखकर अपने विचारों को व्यक्त करके व्यक्तित्व की परिभाषा को सर्वमान्य बनाने का पूर्ण एवं सफल प्रयास किया। उसकी परिभाषाएं अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा पूर्ण परिभाषा के रूप में स्वीकार की गई है। अत: इस वर्ग की परिभाषाओं में आलपोर्ट की परिभाषा महत्वपूर्ण है।

आलपोर्ट (1939) के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जो कि पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजनों को निर्धारित करता है।''

2.4 व्यक्तित्व के निर्धारक (Determinants of personality)

व्यक्तित्व को प्रभावित करने में कुछ विशेष तत्वों का हाथ रहता है उन्हें हम व्यक्तित्व के निर्धारक कहते हैं। ये ही तत्व मिलकर व्यक्तित्व को पूर्ण बनाने में सहयोग देते हैं। इन्हीं तत्वों के प्रभाव से इन्हीं तत्वों के अनुरूप व्यक्तित्व का विकास होता है। कुछ विद्वानों ने व्यक्तित्व के निर्धारण में जैविक (Biological) आधार को प्रमुख माना है तो कुछ ने पर्यावरणीय (Environmental) आधार को प्रधानता दी है, परन्तु व्यक्तित्व के विकास में इन दोनों निर्धारकों का हाथ रहता है। अत: इन दोनों निर्धारकों 1. जैविक 2. पर्यावरण का अध्ययन आवश्यक है।

2.4.1 जैविक निर्धारक (Biological Determinants)

जैविक निर्धारण निम्न चार हैं—

1. आनुवांशिकता (Heredity)
2. शारीरिक गठन व स्वास्थ्य (Physique and Health)
3. अन्त:स्रावी ग्रंथियां (Endocrine Glands)
4. शारीरिक रसायन (Body Chemistry)

2.4.1.1 आनुवांशिकता (Heredity)—व्यक्तित्व में कुछ गुण पैतृक या आनुवांशिक होते हैं। शरीर का रंग, रूप, शरीर की बनावट गुणों से युक्त हो सकते हैं। इसका कारण बालक को प्राप्त हुए अपने माता-पिता के पितृय सूत्र क्रोमोसोम्स हैं। बालक की आनुवांशिकता में केवल उसके माता-पिता की देन ही नहीं होती। बालक की आनुवांशिकता का आधा भाग माता-पिता से, एक चौथाई भाग दादा-दादी से, नाना-नानी से व आठवां भाग परदादा-दादी और अन्य पुरखों से प्राप्त होता है। अत: बालक के व्यक्तित्व पर पैतृक गुणों का प्रभाव पड़ता है। उसका रंग-रूप या शारीरिक गठन के गुण उसके माता या पिता से या उसके दादा या दादी के गुणों के अनुरूप हो सकते हैं। इसी तरह उसमें बुद्धि एवं मानसिक क्षमताओं के गुण अपने पूर्वजों के अनुरूप हो सकते हैं। कई अध्ययनों में यह देखा गया है कि पूर्वजों की मानसिक व्याधियों के गुण उनकी पीढ़ी के किसी भी व्यक्ति में प्रकट हो सकते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि पैतृक गुणों का व्यक्ति के व्यक्तित्व गठन पर कम या ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

2.4.1.2 शारीरिक गठन और स्वास्थ्य (Physique and Health) शारीरिक गठन के अन्तर्गत व्यक्ति की लम्बाई, बनावट, वर्ण, बाल, आंखें व नाक नक्शा आदि अंगों की गणना होती है। ये शारीरिक विशेषताएं इतनी स्पष्ट होती हैं कि बहुत से लोग इन्हीं से व्यक्ति का बोध करते हैं। हालांकि यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है फिर भी ये विशेषताएं व्यक्तित्व की द्योतक अवश्य हैं। शरीर से हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर व्यक्ति को देखकर लोग प्रभावित होते हैं। वे उसके शरीर के गठन की प्रशंसा करते हैं। इससे उस व्यक्ति के मानसिक पहलू पर प्रशंसा का प्रभाव ऐसा पड़ता है कि दूसरों की अपेक्षा वह अपने को श्रेष्ठ समझने लगता है और उसमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन के भाव पैदा हो जाते हैं।

शारीरिक गठन ठीक न होने और शारीरिक अंगहीनता रहने पर व्यक्ति में हीन भावना पैदा हो जाती है। वह अपने आपको गया बीता व हीन समझता है और उसमें आत्मविश्वास की कमी हो सकती है, वह अपने कार्य की सफलता में सदा आशंकित रहता है और अभाव की पूर्ति के लिए वह असामाजिक व्यवहार को अपना सकता है।

व्यक्तित्व विकास पर स्वास्थ्य का भी असर पड़ता है। जो व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है वह अच्छा सामाजिक जीवन व्यतीत करता है और उसमें सामाजिकता विकसित होती है। स्वस्थ व्यक्ति अपने कार्य को सफलता से समय पर पूरा करके अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर लेता है। इसके ठीक विपरीत अस्वस्थ व्यक्ति का व्यक्तित्व अधूरा रह जाता है। अस्वस्थता के कारण अपने कार्यों को समय पर पूरा नहीं कर पाता जिससे वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति समय पर नहीं कर पाता। उसमें कार्य करने की रुचि भी कम रहती है। अस्वस्थ व्यक्ति दूसरों को प्रभावित भी नहीं कर सकता। इस तरह, व्यक्तित्व पर शारीरिक गठन और स्वास्थ्य का काफी प्रभाव पड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.4.1.3 अंत:स्रावी ग्रंथियां (Endocrine Glands)– व्यक्तितव के विकास में अन्त:स्रावी ग्रंथियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ये प्रत्येक मनुष्य के शरीर में पायी जाती हैं। इन ग्रंथियों को नलिका विहीन ग्रंथियां भी कहते हैं। ये बिना नलिकाओं के शरीर में स्राव भेजती है। इनके स्राव हार्मोन्स (Harmons) कहलाते हैं। विभिन्न ग्रंथियां एक या एक से अधिक हार्मोन्स का स्राव करती हैं। मुख्य रूप से ये ग्रंथियां ८ होती हैं। ये हैं—

1. पियूष ग्रंथि (Pituitary Gland)
2. पीनियल ग्रंथि (Pineal Gland)
3. गल ग्रंथि (Thyroid Gland)
4. उपगल ग्रंथि (Parathyroid Gland)
5. थाइमस ग्रंथि (Thymus Gland)
6. अधिवृक्क ग्रंथि (Adrenal Gland)
7. अग्न्याशय ग्रंथि (Pancreas Gland)
8. जनन ग्रंथि (Gonad Gland)

इन ग्रंथियों के स्राव का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, इसका संक्षेप में वर्णन आगे किया जा रहा है।

1. पियूष ग्रंथि (Pituitary Gland)– इस ग्रंथि के मास्टर ग्लेण्ड भी कहते हैं। इससे पिट्यूटिराइन नामक हार्मोन्स उत्पन्न होते हैं। ये हार्मोन्स शरीर के अन्य ग्रंथियों के हार्मोन्स पर नियंत्रण करते हैं। इन हार्मोन्स में मुख्य हार्मोन सोमेटोट्रोपिक हैं। शारीरिक विकास पर इस हार्मोन का बहुत प्रभाव पड़ता है। विकास काल में इस ग्रंथि की क्रिया तीव्र होने पर व्यक्ति की अस्थियां, मांसपेशियां और लम्बाई तेजी से बढ़ती है। सामान्य से अधिक मात्रा में इस हार्मोन का स्राव हो तो व्यक्ति की लम्बाई असामान्य या दानवाकार हो जाती है। उसकी लम्बाई 7 से 9 फीट तक बढ़ जाती है। व्यक्ति के विकास काल में स्राव सामान्य से कम मात्रा में होने से व्यक्ति बौना रह जाता है। यद्यपि उसकी बुद्धि सामान्य स्तर की रहती है, परन्तु शारीरिक गठन आकर्षक नहीं होता है। पियूष ग्रंथि के दो भाग होते हैं-अग्र एवं पश्च भाग। पश्च भाग रक्त चाप, वृक्क-कार्य एवं वसा चयापचय को नियंत्रित करता है। जबकि अग्र भाग उपरोक्त शारीरिक विकास को नियंत्रित करता है।

2. पीनियल ग्रंथि (Pineal Gland)– शंकुरूप होने के कारण इस ग्रंथि का नाम पीनियल ग्रंथि पड़ा। यह मस्तिष्क में स्थित होती है। यह रहस्यमयी ग्रंथि है। पूर्व में इसको आत्मा व शरीर का सेतु माना जाता था। इसके कार्य व स्राव अभी भी रहस्यमयी है फिर भी यह अनुमान लगाया जाता है कि ये शारीरिक वृद्धि और युवावस्था को बनाये रखने में सहायक हैं।

3. गल ग्रंथि (Thyroid Gland)– इस ग्रंथि से थायरोक्सिन नामक हार्मोन स्रावित होता है जो शरीर में आयोडीन की मात्रा को नियंत्रित करता है। यदि बाल्यावस्था में आयोडीन की मात्रा की कमी हो तो शरीर व मस्तिष्क का उचित विकास नहीं होता है फलस्वरूप व्यक्ति मन्द बुद्धि और छोटे कद का होता है। उसके शरीर में दुर्बलता होती है। जब यह ग्रंथि अधिक सक्रिय हो जाती है तब व्यक्ति को भूख ज्यादा लगती है। हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। थायरोक्सिन का प्रभाव व्यक्ति के भावों व संवेगों पर भी पड़ता है। इसमें स्रावित होने वाली आयोडीन की कमी से गलगण्ड नामक रोग हो जाता है।

4. उपगल ग्रंथि (Parathyroid Gland)– ये ग्रंथियां थाइराइड ग्रंथि के पास ही स्थित होती है। ग्रंथियों के स्राव शरीर को शक्तिमान बनाये रखती है। यदि उपगल ग्रंथियों को अलग कर दिया जाए या ग्रंथियों कि अस्वस्थता हो तो इनके स्राव के अभाव के कारण सम्पूर्ण शरीर का अनुपात नष्ट हो जाता है और शरीर में ऐंठन तथा मरोड़ पैदा हो जाती है जिससे मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

5. थाइमस ग्रंथि (Thymus Gland)– यह ग्रंथि सीने के अग्र भाग की गुहा में स्थित होती है। इसके कार्य तथा स्रावों के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है फिर भी ऐसा माना जाता है कि युवावस्था में यह यौन ग्रंथियों पर नियंत्रण रखती है तत्पश्चात यह ग्रंथि सिकुड़कर छोटी हो जाती है और अपना कार्य बन्द कर देती है।

6. अधिवृक्क ग्रंथि (Adrenal Gland)– इस ग्रंथि से अधिवृक्कीय नामक हार्मोन स्रावित होता है। जिसका व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। सामान्य मात्रा में यह पुरुषों और स्त्रियों में उनके सामान्य गुणों को बनाये रखता है। अधिक मात्रा में स्रावित होने पर स्त्रियों में पुरुषोचित गुणों को बढ़ा देता है। स्त्रियों में अधिवृक्की हार्मोन की मात्रा बढ़ जाने से स्त्रियों के अंगों की गोलाई खत्म हो जाती है और आवाज भारी हो जाती है। यह आपत्ति के समय जीव की शक्तियों का संगठन करता है। इसकी अधिकता से दिल की धड़कनें तेज हो जाती हैं। रक्तचाप बढ़ जाता है, पसीना आता है तथा आंखों की पुतलियां फैल जाती हैं। अधिवृक्क के अभाव में एडिसन नामक बिमारी हो जाती है जिससे शरीर में निर्बलता और शिथिलता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बढ़ जाती है, चयापचय (Metabolism) की क्रिया मंद पड़ जाती है, सर्दी-गर्मी सहन करने की क्षमता भी कम हो जाती है और चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है।

7. अग्न्याशय ग्रंथि (Pancreas Gland)– यह ग्रंथि अग्न्याशय रस स्रावित करती है जिसमें इन्सुलीन नामक हार्मोन होता है। यह हार्मोन रक्त में शर्करा को पचाता है जिससे शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है। इसकी कमी या अभाव में शर्करा का पाचन नहीं हो पाता जिससे मधुमेह नामक रोग हो जाता है। इससे व्यक्ति को चक्कर आते हैं, कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और भय की भावना बढ़ जाती है।

8. जनन ग्रंथि (Gonad Gland)– जनन ग्रंथियों के स्राव का भी व्यक्ति पर विशेष: प्रभाव पड़ता है। यौन सम्बन्धित रुचि के विकास में यह ग्रंथि सहायक होती है। किशोर अवस्था में ये ग्रंथियां विशेष रूप से सक्रिय होती हैं अत: इस आयु में स्त्रियों और पुरुषों में यौन चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। पुरुषों में पुरुषोचित यौन लक्षण दाढ़ी, मूंछ, भारी आवाज आदि का विकास होता है। ये परिवर्तन टेस्टोस्टेरोन हार्मोन स्रावित होने के कारण होते हैं। इसी तरह स्त्रियों में स्त्री सुलभ लक्षण जैसे दुग्ध ग्रंथियों आदि का विकास एस्ट्रोजन हार्मोन के स्राव के कारण होता है।

2.4.1.4 शारीरिक रसायन (Body Chemistry)– अन्त:स्रावी ग्रंथियों एवं शरीर रचना के अतिरिक्त व्यक्तित्व के जैविक कारकों में शारीरिक रसायन का उल्लेख भी आवश्यक है। प्राचीन काल से मनुष्य के स्वभाव का कारण उसके शरीर के रसायन के तत्वों को भी माना गया है। ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व यूनान के प्रसिद्ध चिकित्सक व विचारक हिपोक्रेटीज ने शरीर में पाये जाने वाले रसायनों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव का निरूपण किया है। लगभग इस प्रकार का वर्णन आयुर्वेद में भी किया है। ये शारीरिक रसायन चार प्रकार के होते हैं। 1. रक्त, 2. प्त्ति, 3. कफ और 4. तिल्लीद्रव्य। रक्त की अधिकता से व्यक्ति आदतन आशावादी और उत्साही (Sanguine) होता है। पित्त की अधिकता वाले व्यक्ति चिड़चिड़े या कोपशील (Choleric) प्रकृति के होते हैं। जिस व्यक्ति में कफ अथवा श्लेष्मा की प्रधानता होती है वे शान्त व आलसी होते हैं। ऐसे व्यक्ति को श्लेष्मिक (Phelgmatic) प्रकृति का कहते हैं। जिस व्यक्ति में तिल्ली द्रव्य या श्याम पित्त की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्ति उदास (Melancholi) रहने वाले होते हैं इन्हीं के आधार पर हिप्पोक्रेटीज ने व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्णन किया है।

उपरोक्त जैविक कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य जैविक कारक भी हैं जो व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं, ये कारक हैं—बुद्धि (Intelligence), रंगरूप (Colour), लिंग (Sex)।

2.4.2 पर्यावरण सम्बन्धी निर्धारक (Environmental Determinants)

ये निम्न तीन निर्धारक हैं-

1. प्राकृतिक निर्धारक (Natural Determinants)
2. सामाजिक निर्धारक (Social Determinants)
3. सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinants)

1. प्राकृतिक निर्धारक (Natural Determinants)—मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण में रहता है उसके जीवन तथा व्यक्तित्व पर भौगोलिक परिस्थितियों एवं जलवायु का प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों और जलवायु का उसके स्वास्थ्य, शरीर की बनावट तथा मानसिक स्थितियों पर प्रभाव पड़ता है। जैसे ठण्डी जलवायु में रहने वाले व्यक्तियों का रंग गोरा होता है जबकि गर्म जलवायु में रहने वाले व्यक्ति सांवले रंग के होते हैं। भौगोलिक परिस्थितियों का भी शारीरिक गठन पर प्रभाव पड़ता है जैसे पहाड़ी लोगों का शारीरिक गठन। मैदानी लोगों के शारीरिक गठन से अलग प्रकार का होता है। जिन जगहों पर भूकम्प या प्राकृतिक आपदाएं ज्यादा होती हैं वहां के लोगों में सुरक्षा की भावना कम होती है। यदि व्यक्ति की भौगोलिक परिस्थितियों या जलवायु बदल दी जाये तब उनके व्यक्तित्व में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे ऊष्ण प्रदेश में रहने वाले लोगों को शीत प्रदेश में रखा जाए तो उनके कार्य करने की क्षमताएं घट सकती हैं और स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। इसी तरह ठण्डे प्रदेश में रहने वाले व्यक्तियों को यदि ऊष्ण प्रदेश में रखा जाए तो ऐसा ही प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है।

2. सामाजिक निर्धारक (Social Determinants)—व्यक्ति सामाजिक प्राणी है और समाज की इकाई भी। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वह समाज में रहता है। अत: समाज का, समाज की संरचना का और समाज के लोगों का उस पर बहुत प्रभाव पड़ता है। परिवार के लोगों से लेकर समाज के लोगों तक का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या हम आगे कर रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(अ) परिवार या घर का प्रभाव (Effect of Family or Home)

(i) माता-पिता का प्रभाव-सभी मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि व्यक्तित्व के विकास में घर के परिवेश का बड़ा प्रभाव पड़ता है। परिवार के सदस्यों का भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है। जन्मकाल से ही मनुष्य का व्यक्तित्व का विकास प्रारम्भ हो जाता है। जन्म के समय उसकी माता तक ही उसका परिवार सीमित रहता है। उसे अपने सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी माता पर निर्भर रहना पड़ता है। अत: माता के विवेकशील और व्यवहार कुशल रहने पर तथा बालक को सही ढंग से देखभाल करने से सन्तान या बालक का व्यक्तित्व विकास उचित ढंग से होता है। शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि जैसे महापुरुषों के व्यक्तित्व विकास का श्रेय उनकी माताओं को है। माता-पिता द्वारा आवश्यकताओं की उचित पूर्ति होने से बालक आगे चलकर आशावादी, कर्मवीर व परोपकारी बनता है, किन्तु माता-पिता द्वारा आवश्यकताओं की उचित पूर्ति न करने से तथा पर्याप्त स्नेह न देने से बालक कर्महीन व निराशावादी बन जाता है। बाल्यकाल में तिरस्कृत रहने पर वह हीन भाव एवं असुरक्षित भाव से पीड़ित रहता है तथा उसमें आत्म विश्वास की कमी रहती है। आगे चलकर वह परावलम्बी स्वभाव का हो जाता है। वह अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए भी दूसरों का मुंह देखता रहता है। फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास उचित दिशा में नहीं होता।

माता-पिता के प्रेम के अभाव का सभी बालकों पर एक सा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसमें बालक के जन्मजात स्वभाव और प्रवृत्तियों का बड़ा महत्व है। माता-पिता के प्रेम की अवहेलना और ताड़ना से एक बालक दब्बू बन सकता है परन्तु दूसरा बालक दबंग और उद्दंड बन सकता है। आलपोर्ट के अनुसार "जो आग मक्खन को पिघलाती है वहीं आग अण्डे को कठोर बनाती है।" माता-पिता द्वारा बच्चे को झिड़कना और गोद में न लेना भी उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

(ii) घर के अन्य सदस्यों का प्रभाव- बालक के व्यक्तित्व पर घर के अन्य सदस्यों का काफी प्रभाव पड़ता है। घर में रहने वाले दादा-दादी या नाना-नानी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, मामा-मामी, बड़े भाई-बहन या अन्य कोई रिश्तेदार जो उसके परिवार में रहते हैं, का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। बालक इनके व्यवहारों को देखता है और सीखता है। कालान्तर में ये व्यवहार उसके व्यक्तित्व का एक भाग बन जाता है। परिवार में बड़े लोग बालक के सामने आदर्श के समान होते हैं बालक उन जैसा बनना चाहता है और वह तादाम्य क्रिया अपनाता है। यदि परिवार में बालक इकलौती सन्तान है तो परिवार में उसे आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार मिलता है फलस्वरूप वह जिद्दी व शरारती हो जाता है। बच्चे के लिए शरारती होना एक आवश्यक गुण है और इससे आगे चलकर वह निर्भीक व साहसी बनता है परन्तु आवश्यकता से अधिक शरारती होने से वह नियंत्रण की सीमा तोड़ देता है और वह समाज विरोधी व्यवहारों को सीखकर उसमें रुचि रखने लगता है। अत: उसका व्यक्तित्व विकास उचित रूप से नहीं हो पाता। यदि परिवार बड़ा है, संयुक्त परिवार है, उसके सदस्यों के व्यवहारों में समायोजन नहीं है, घर में कलहपूर्ण स्थिति रहती है तो उसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ेगा और बालक का समायोजन आगे चलकर गड़बड़ा सकता है।

यदि परिवार के सदस्यों में आपराधिक प्रवृत्तियां हैं तो उसका प्रभाव भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है और बालक में भी आपराधिक प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं और आगे चलकर वह बालक सामाजिक अपराध करने लगता है। इसी प्रकार भग्न परिवार (Broken Family) भी किशोर अपराध का मुख्य कारण है।

(iii) व्यक्तित्व पर जन्म क्रम का प्रभाव- प्राय: यह बात आमतौर पर स्पष्ट है कि परिवार के छोटे-बड़े, सबसे बड़े या सबसे छोटे आदि विभिन्न क्रम के बालकों के प्रति एक सा व्यवहार नहीं किया जाता। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एल्फ्रैड एडलर के अनुसार परिवार में बालक के जन्मक्रम का उसके व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, उसकी शारीरिक स्थिति तथा उसके कार्यशैली पर भी प्रभाव पड़ता है। सबसे छोटा बालक सभी से लाड़-प्यार पाता है अत: वह दूसरों पर अत्यधिक निर्भर बन जाता है। सबसे बड़ा बालक स्वावलम्बी व निर्दयी बन जाता है, क्योंकि कुछ दिन तक इकलौते रहने के कारण न तो कोई उसकी चीजों में हिस्सा बांटता है और न कोई उसका अधिकार छीनने वाला होता है परन्तु दूसरे बालक के जन्म से पहले बालक के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इससे उसका एकाधिकार छिन जाता है और कभी-कभी तो उसकी अवहेलना होने लगती है। अत: वह छोटे बालक के प्रति ईर्ष्या करने लगता है और अपना अधिकार बनाये रखने की कोशिश करता है। अनुसंधानकर्त्ताओं ने प्रत्येक जन्मक्रम में बालक में एकसी व समान संख्याओं में उलझनें पायी हैं। एडलर के इस कथन में बहुत कुछ सत्यता है कि व्यक्ति अपनी जीवन शैली बहुत कुछ परिवार में प्रारम्भिक जीवन से ही निश्चित कर लेता है, परन्तु यह मानने के निश्चित प्रमाण नहीं हैं कि बचपन की यह शैली आजीवन अपरिवर्तित रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(ब) विद्यालय का प्रभाव (Effect of School)– बालक के व्यक्तित्व विकास पर विद्यालय, विद्यालय में होने वाले अध्ययन, विद्यालय के शिक्षक, बालक के सहपाठी तथा विद्यालय की भौगोलिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। आगे इन कारकों का संक्षिप्त में वर्णन किया जा रहा है।

(i) शिक्षा का प्रभाव–विद्यालय में शिक्षा किस प्रकार की दी जाती है इसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पड़ता है। कई विद्यालयों में धार्मिकता, कट्टरधार्मिकता की शिक्षा दी जाती है इससे बालक के व्यक्तित्व का विकास संकीर्णन और एक निश्चित धर्म की तरफ होता है। इससे बालक दूसरे धर्मों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष करने वाला बन जाता है। कई अंग्रेजी भाषा के विद्यालयों में बालक को मातृभाषा या अन्य भाषाएं बोलने नहीं दी जाती, बल्कि केवल अंग्रेजी भाषा ही बोलने को बाध्य किया जाता है, ऐसी स्थिति में बालक पर मानसिक दबाव बढ़ जाता है तथा उसमें निराशा एवं कुण्ठाएं उत्पन्न हो जाती है, जिससे आगे चलकर बालक के व्यक्तित्व विकास में तथा समायोजन में बाधा आती है।

कई विद्यालयों में संतुलित शिक्षा नहीं दी जाती। आज की शिक्षा प्रणाली में यह सबसे बड़ा दोष है। बालक के मानसिक और शारीरिक विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि उसके पाठ्यक्रम की कितनी ज्यादा पुस्तकें बढ़ाई जाये इस पर ध्यान दिया जाता है। बालक के बस्ते का बोझ, गृह कार्य की मार बालक के सर्वांगीण विकास में बाधक बनती है। और उसके सन्तुलित व्यक्तित्व विकास, सर्वांगीण विकास और मूल्यों के विकास के लिए विद्यालय में संतुलित एवं नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए। प्रायोगिक आधारित शिक्षा मूल्य-परक शिक्षा, अनेकान्त धार्मिक शिक्षा तथा शारीरिक विकास की शिक्षा भी बालक के व्यक्तित्व के विकास में बहुत सहायक होती है।

(ii) शिक्षकों का प्रभाव–जिस प्रकार बालक परिवार में माता या पिता से तादात्म्य कर लेता है उसी प्रकार विद्यालय में भी शिक्षकों से तादात्म्य कर लेता है। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो तो बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कई बार बालक शिक्षकों के नकारात्मक गुणों को सीख जाता है। शिक्षकों द्वारा बालकों से बीड़ी, सिगरेट मंगवाना और उनकी उपस्थिति में उनका प्रयोग करना घातक है क्योंकि इसका तादात्म्य कर बालक बीड़ी, सिगरेट पीना सीख जाता है। यदि शिक्षकों में अच्छे गुण हैं तो बालक भी उन गुणों का तादात्म्य कर लेता है, फलस्वरूप बालक के व्यक्तित्व विकास में वे गुण जुड़ जाते हैं। संक्षेप में आमतौर से बालक के प्रति व्यवहार में प्रकट होने वाले शिक्षक के व्यक्तित्व के सभी गुण-दोष बालक के व्यक्तित्व विकास पर अच्छा-बुरा प्रभाव डालते हैं।

(iii) सहपाठियों का प्रभाव–बालक के व्यक्तित्व विकास पर उसके सहपाठियों या विद्यालय के साथियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में उसको सभी प्रकार के साथियों के साथ रहना पड़ता है। कई सहपाठी आयु में उससे भिन्न होते हैं, कई स्नेह करने वाले तो कई निर्दयी विद्यार्थी भी उसके साथ होते हैं। इन सभी साथियों के साथ बालक अपनी विद्यालय की दिनचर्या व्यतीत करता है। छोटी आयु या छोटी कक्षा का विद्यार्थी बड़े विद्यार्थी से दबता है। यह दबना आदर्श सूचक भी हो सकता है और भय सूचक भी। अतः इन कारकों का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पड़ता है। कई बार बालक अभद्र बालकों के व्यवहारों को सीख जाता है जिसमें गाली-गलौच, विद्यालय से भागने, शिक्षकों तथा माता-पिता के साथ अभद्र व्यवहार करना सीख जाता है, जो उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करता है। सहपाठियों का बालक के व्यक्तित्व पर सबसे अधिक प्रभाव खेल-क्रीड़ा समूह के प्रभाव के रूप में पड़ता है। विद्यालय में साथ-साथ खेलने वाले या प्रतियोगिता करने वाले विद्यार्थी अपना-अपना बालक का जिस संस्कृति के परिवेश में विकास होता है उस संस्कृति के खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, परम्परा, विवाह, सामाजिक समारोह और सामाजिक संस्थाओं आदि का प्रभाव पड़ता है। जनजातियों की संस्कृति में भी भारी भिन्नताएं हैं। जैसे नागा लोग सिरों के शिकारी (Head Choppers) है तथा भील लड़ाकू है और संथाल सीधे-साधे हैं। इस तरह सांस्कृतिक परिवेश में सामाजिक रचना, सामाजिक स्थितियां, सामाजिक कार्य तथा नियम संहिताएं मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

(iv)विद्यालय की भौगोलिक स्थिति– विद्यालय की भौगोलिक स्थिति कैसी हैं? इसका प्रभाव भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। विद्यालय कहां स्थित है तथा विद्यालय भवन की क्या स्थिति है? इसका भी प्रभाव बालक के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। यदि विद्यालय प्रदूषण जनित जगह पर स्थित है, जहां वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण हो तो ऐसे विद्यालय में अध्ययन करने वाले बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। यदि विद्यालय ऐसे मौहल्ले में स्थित है जहां समाज कंटक जैसे शराबी, जुआरी, वेश्यावृत्ति करने वाले और चोरी करने वाले रहते हैं तो ऐसे क्षेत्र के विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसमें बालक समज विरोधी व्यवहार सीख सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि विद्यालय का भवन स्वच्छ नहीं है और जीर्ण-शीर्ण और खण्डहर अवस्था में है तो उस स्थान पर पढ़ने वाले बालकों के व्यक्तित्व के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनके मन में हर समय भवन के ढह जाने का भय रहता है तथा उनमें अन्य व्याधियां भी उत्पन्न हो सकती हैं जो उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक होते हैं।

(स) समाज का प्रभाव (Effect of society)- जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि व्यक्ति समाज का अंग और इकाई है। अत: समाज का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। समाज की परम्पराओं रीति-रिवाजों, सामाजिक नियमों का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति समाज के लोगों के आचरण तथा प्रतिमानों को अपनाता है। जाति, वर्ण तथा व्यवसाय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की समाज में स्थिति अलग-अलग होती है। परिवार की सामाजिक स्थिति से बालकों के व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पड़ता है। वर्णभेद जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा जातिभेद अर्थात् विभिन्न जातियों की सामाजिक स्थितियां भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोग जाति-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल विवाह के पक्षधर होते हैं तो कुछ घोर विरोधी। कुछ लोग समाज के प्रत्येक नियम को तोड़ने को तत्पर दिखाई देते हैं जबकि कुछ लोग उनका कठोरता से पालन करते दिखाई पड़ते हैं। ऊंची जाति के बालकों में बड़प्पन की भावना और नीची जातियों में हीनता की भावना देखी जा सकती है। ऊंचे घरानों के बालकों का व्यक्तित्व संयमित दिखाई पड़ता है परन्तु इसके लिए कोई ठोस मनोवैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।

बालक के व्यक्तित्व के विकास पर समाज सुधारकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा समाज विरोधी व्यक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। समाज सुधारक, समाज सेवी तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता समाज के कल्याण तथा समाज के उत्थान के लिए कार्य करते हैं और इनका प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। इसी तरह समाज विरोधी कार्य करने वाले और सामाजिक कंटकों का भी प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। समाज विरोधी लोग या समाज कंटक, समाज विरोधी कार्य जैसे जेबकतरी (पॉकिट मार), चोरी, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति आदि कार्यों को करते हैं और इनका प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। समाज सेवक समाज के विभिन्न लोगों जैसे वृद्ध, निराश्रित, गरीब की सेवा करते हैं और समाज की सुरचना करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी परोपकारी सेवा भावनाओं का भी प्रभाव अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। अन्य व्यक्ति भी परोपकारी भावनाओं को अपनाकर अपने व्यक्तित्व का सकारात्मक विकास कर सकते हैं।

2.4.3 सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinantes)

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर संस्कृति की अहम् भूमिका है। व्यक्ति का व्यक्तित्व संस्कृति के अनुरूप होता है। जन्मकाल से ही शिशु का पालन-पोषण तथा समाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है। प्रत्येक संस्कृति में शिशु के सामाजीकरण की एक विधि होती है क्योंकि इसी विधि के द्वारा संस्कृति अपने को सुरक्षित रखती है। संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते हैं। आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। जिस संस्कृति में बालक का लालन-पालन होता है उसी संस्कृति के गुण उसके व्यक्तित्व में आ जाते हैं।

मैकाईवर और पेज (Mac Iver and Page) के शब्दों में "संस्कृति हमारे रहने व सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्यकलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।" इस तरह संस्कृति कार्य करने की शैलियों, मूल्यों, भावात्मक लगावों और बौद्धिक अभियान का क्षेत्र है। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से इन्हीं गुणों के आध ार पर भिन्न होती है। अलग- अलग संस्कृतियों के अलग-अलग मूल्य होते हैं। जैसे-प्राचीन काल में भारतीय लोग धर्मपरायण और आध्यात्मिक थे। आधुनिक भारतीय उतने आध्यात्मिक एवं धार्मिक नहीं हैं। फिर भी उनमें आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसका कारण हमारी संस्कृति का प्रभाव ही है। पाश्चात्य लोगों के लिए भौतिक व मानसिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसी तरह अलग-अलग संस्कृति के समाजों में रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, कला, मूल्यों और परम्पराओं में भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। कुछ संस्कृतियों की जातियों में मनुष्य हत्या को पाप समझते हैं तो दूसरी ओर नागा संस्कृति में उन लोगों का बड़ा सम्मान होता है जो नर मुण्ड काट के लाते है। जो व्यक्ति जितने ज्यादा नर मुण्ड काटता है उतनी ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और उतने ही ज्यादा स्त्रियों के विवाह के प्रस्ताव आते हैं। जबकि दूसरी संस्कृति में नर हत्या करने वाले के साथ समाज के लोग अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहते। भारतीय संस्कृति के कुछ परिवारों में तलाक देना अच्छा नहीं माना जाता परन्तु कुछ जनजातियों में जो स्त्री जितने अधिक तलाक पाती है, उसकी प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक बढ़ती है। पाश्चात्य देशों में तलाक को बुरा नहीं माना जाता है। कुछ समाज में कुंआरी कन्या के गर्भवती हो जाने पर कोई उससे विवाह नहीं करता, परन्तु कुछ जन-जातियों में विवाह से पहले संतानोत्पत्ति करना लड़की के विवाह में सहायक होता है। इस तरह की सांस्कृतिक भिन्नताएं बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

I निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले जैविक कारकों को समझाइये।
2. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारकों को समझाइये।

II लघूत्तरीय प्रश्नः-

1. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं को स्पष्ट करें।
2. व्यक्तित्व के अनुवांशिक निर्धारकों को स्पष्ट करें।
3. गल ग्रंथि के कार्यों को समझाइये।
4. व्यक्ति के विकास में विद्यालय का किस तरह प्रभाव पड़ता है।

III वस्तुनिष्ठ प्रश्नः-

1. रक्त में शक्कर को पचाने वाले हार्मोन का नाम .... है।
2. टेस्टोस्टेरोन का स्राव .... ग्रंथियां करती हैं।
3. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को .... भागों में बांटा गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 3 क्रेत्समर एवं शेल्डन का वर्गीकरण

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 व्यक्तित्व वर्गीकरण
3.3 क्रेत्समर का व्यक्तित्व वर्गीकरण
3.3.1 पुष्टकाय प्रकार
3.3.2 कृशकाय प्रकार
3.3.3 तुन्दिल प्रकार
3.3.4 मिश्रकाय प्रकार
3.4 शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण
3.4.1 स्थूलकाय या गोलाकार या अंतरंग प्रधान
3.4.2 मध्यकाय या आयताकार या काय प्रधान
3.4.3 लम्बाकार या लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान
3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक सदियों से प्रयत्न करते रहे हैं। नये-नये सिद्धांतों की खोज और व्यक्ति को विभिन्न वर्गों में रखकर व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया। ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक व चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स ने काय रस के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा। अपने अध्ययन में उसने मनुष्य में चार रसों की उपस्थिति मानी, ये चार रस हैं—1. रक्त, 2. कृष्ण, 3. पीत और 4. कफ। हिप्पोक्रेट्स के अनुसार इन चारों में से एक काय रस की व्यक्ति में प्रधानता होती है और उसके अनुसार उसकी चित्त-वृत्ति होती है। इसी तरह आयुर्वेद में भी वात, कफ, पित्त के आधार पर व्यक्ति के चित्त की प्रकृति का वर्णन किया गया है। श्रीमद् भगवद्गीता में भी तीन गुणों सत्, रज, तम के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया गया है। इस शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न सिद्धांतों द्वारा व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया।

3.1 उद्देश्य (Objectives)

1. क्रेत्समर के व्यक्तित्व वर्गीकरण को समझ सकेंगे?
2. शेल्डन के व्यक्तित्व वर्गीकरण को जान सकेंगे?

3.2 व्यक्तित्व वर्गीकरण (Personality Classification)

जर्मन मनोवैज्ञानिक क्रेत्समर (1925) ने शारीरिक रचना के प्रकारों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। उसने व्यक्तियों को चार भागों में वर्गीकृत किया जिसका विस्तार से अध्ययन हम आगे करेंगे। इसी तरह अमेरिकन चिकित्सक विलियम शेल्डन (1942) ने व्यक्तियों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है—एन्डोमॉर्फी अथवा स्थूलकाय, मीजोमॉर्फी या मध्यकाय, एक्टोमॉर्फी या लम्बकाय। युंग तथा अन्य प्रमुख मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को दो भागों में बांटा- बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। इसी तरह से कई अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को तीन भागों में बांटा-अंतर्मुखी, बहिर्मुखी और उभयमुखी। आइजैनक (1970, 1975) ने व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा-अंतर्मुखी, बहिर्मुखी, स्थिर और अस्थिर। आलपोर्ट (1966) ने शील गुणों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। व्यक्तित्व का सम्पूर्ण अध्ययन करने के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। इन सिद्धांतों को पांच वर्गों में रखा जा सकता है- 1. प्रकार और गुणशील सिद्धांत, 2. मनोगत्यात्मक सिद्धांत, 3. मानवीय सिद्धांत, 4. अधिगम सिद्धांत, 5. ज्ञानात्मक सिद्धांत। उपरोक्त पांच प्रकार के सिद्धांतों से व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण और अध्ययन किया जा सकता है, परंतु इस अध्ययन में हम मुख्य रूप से क्रेत्समर का और शेल्डन का 'प्रकार' व्यक्तित्व के वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे।

3.3 क्रेत्समर का व्यक्तित्व वर्गीकरण (Krets-chmer's Classification of Personality)

क्रेत्समर, जो कि एक जर्मन मनोचिकित्सक थे, ने जर्मनी में कई मनोरोगियों के अध्ययन से व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। अपनी एक शोध पुस्तक ''फिजिक एण्ड करेक्टर'' (Physique and Character) में व्यक्ति के शारीरिक गठन एवं स्वभाव के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। उसने व्यक्तित्व के चार प्रमुख प्रकार बताए-

3.3.1 पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type)

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में शारीरिक गटन अच्छा होता है। इनके कंधे चौड़े, पीठ सीधी और हाथ-पांव की पेशियां अच्छी तरह विकसित होती हैं। इस प्रकार का व्यक्ति स्वभाव में साहसी, निर्भीक तथा प्रभुत्व की इच्छा रखने वाला होता है। उसकी रुचियां सफलता प्राप्त करने में होती हैं। ये सक्रिय ज्यादा रहते हैं, आराम से अधिक कार्य को महत्व देते हैं। ये व्यक्ति समाज में अधिक सफल होते हैं। इस वर्ग के व्यक्तियों में मनोविद्लता (Schizophrenia) रोग होने की सम्भावना अधिक होती है।

3.3.2 कृशकाय प्रकार (Asthenic Type)

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का शरीर दुबला-पतला और लम्बा होता है, अर्थात् उसका शरीर कृश होता है। उसकी मुखाकृति, गर्दन, रीढ़ की हड्डी आदि में पतलेपन और लम्बाई का प्रभाव स्पष्ट होता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों की आलोचना करने वाला होता है। परन्तु स्वयं की आलोचना उसे असहनीय होती है, अर्थात् जब दूसरे उसकी आलोचना करते हैं तो वह इस बात को बहुत ही बुरा मानता है। ये व्यक्ति भावुक शांत और एकांत प्रिय होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में मनोविदलता या मनोभाजन (Schizo-phrenia) मानसिक रोग होने की प्रबल सम्भावना होती है।

3.3.3 तुन्दिल प्रकार (Pyknic Type)

क्रेत्समर के अनुसार इस प्रकार के व्यक्तित्ववान व्यक्तियों के शरीर में तोंद की प्रधानता होती है तथा ये कद में ठिगने, हट्टे-कट्टे, गोल-मटोल होते हैं। इनकी धड़ और शारीरिक गुहाएं बड़ी होती हैं। सीना और कंधे अच्छी गोलाई लिए हुए होते हैं। इनकी गर्दन तथा हाथ-पैर छोटे होते हैं और ये नाटे कद के होते हैं। इनकी बढ़ी हुई तोंद, गोल चिकना चेहरा, छोटी बांहे तथा टांगे उसकी तुन्दिल प्रकार के व्यक्तित्व की परिचायक हैं। ये व्यक्ति मिलनसार, हंसमुख तथा मैत्री रखने वाले होते हैं। ये व्यक्ति बड़े बातूनी होते हैं अर्थात् उन्हें बातें करने में बड़ा आनन्द आता है। ये लोग आराम पसन्द भी होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की मनोस्थितियां जल्दी-जल्दी बदलती रहती हैं। अत: क्रेत्समर ने ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की चित्त-प्रकृति को चक्रीयवृत्ति (Cyclothymic) कहा है। ऐसा व्यक्ति सुख और दु:ख में भी अधिक प्रभावी होता है। ऐसे व्यक्तियों में उत्साह-विशाद (Manic-Depressive) नामक रोग होने की सम्भावना अधिक होती है।

3.3.4 मिश्रकाय प्रकार (Dysplastic Type)

क्रेत्समर के अनुसार इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का शरीर का गठन बेलोचदार तथा असामान्य होता है। इनके व्यक्तित्व में ऊपर वर्णित तीनों प्रकार का मिश्रण पाया जाता है। क्रेत्समर के अनुसार अधिकतर मानसिक रोगियों के शरीर की

क्रेत्समर का वर्गीकरण
शारीरिक रचना के आधार पर

वर्ग या प्रकार	शरीर रचना	चित्त प्रकृति	सम्भावित रोग
पुष्टकाय Athletic	कंधे चौड़े, मांसपेशियां विकसित, शारीरिक गठन अच्छा	साहसी, निर्भीक, प्रभुत्व वाले क्रियाशील व्यवहार कुशल	मनोविदलता
कृशकाय Asthenic	दुबले-पतले, सीना सपाट, कंधे छोटे, नाजुक शरीर	भावुक, आलोचक, शांत, एकान्तप्रिय	मनोविदलता
तुन्दिल Pyknic	तुन्दिल, नाटा कद, गोल चिकना चेहरा, छोटी परन्तु मोटी बाहें	हंसमुख, मिलनसार और मैत्री रखने वाले, चक्रीयवृत्ति, अस्थिर स्थिति	उत्साह विषाद
मिश्रकाय Dysplastic	बेलोचदार शरीर, शारीरिक विषम अनुपात	अस्थिर मानसिक स्थिति	असामान्य अंत:स्रावी स्राव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बनावट मिश्रकाय प्रकार की होती है। इनके शारीरिक विकास में कई प्रकार की असामान्यताएं पायी जाती हैं। इनमें अन्त:स्त्रावी ग्रंथियों का स्त्राव भी सामान्य नहीं होता है। इस प्रकार मानसिक रोगियों की शारीरिक बनावट का अध्ययन करके क्रेत्समर ने यह ज्ञात किया कि किस प्रकार के मानसिक रोगी के शरीर की बनावट को किस वर्ग में रखा जा सकता है। उसने अपने एक अध्ययन में यह भी पाया कि कृशकाय प्रकार के 66% व्यक्ति मनोभाजन या मनोविदलता से पीड़ित होते हैं।

3.4 शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण (Sheldon's Classification of Personality)

क्रेत्समर का व्यक्तित्व वर्गीकरण मनोवैज्ञानिकों को संतुष्ट नहीं कर पाया। मनोवैज्ञानिक ने उसके वर्गीकरण को आंशिक रूप से सही और आंशिक रूप से गलत पाया। कई शोध अध्ययनों में उसका वर्गीकरण खरा नहीं उतरा तथा उसके द्वारा किये गए व्यक्तित्व वर्गीकरण में सभी व्यक्तियों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। अमेरिका के चिकित्सक शेल्डन (1942) ने भी शरीर के प्रकार और चित्त प्रकृति का अध्ययन किया। उसने शरीर की रचनाओं में तीन घटकों को प्रधान माना है। इन तीन घटकों में जिस घटक की शरीर में प्रधानता है उसके अनुसार उस व्यक्ति का व्यक्तित्व होगा। उसने पहला घटक स्थूलकाय का या एण्डोमॉर्फी माना है। दूसरा घटक मध्यकाय का या मीजोमॉर्फी का व तीसरा घटक है लम्बकाय या एक्टोमॉर्फी। जिस व्यक्ति के शरीर में स्थूलकायता या एण्डोमॉर्फी की प्रधानता होती है तो उसका शरीर स्थूल होता है और यदि मध्यकायता या मीजोमॉर्फी घटक की प्रधानता होती है तो शारीरिक बनावट मध्यकाय होती है। लम्बकायता, एक्टोमॉर्फी प्रधान घटकों वाले शरीर की बनावट लम्बकाय होती है। इस तरह शेल्डन ने तीन प्रकार के व्यक्तियों का शरीर की बनावट के आधार पर उल्लेख किया है। उसने तथा उसके सहयोगियों ने सन् 1942 में चित्तप्रकृति के विभिन्न रूप सम्बंधि एक अध्ययन 'दी वैराइटीज ऑफ टेम्परामेंट' का प्रकाशन किया। कालान्तर में इस प्रकार के आधार पर बिस्काफ ने तीन घटकों या तत्वों वाले व्यक्तियों के लक्षणों का वर्णन किया है। शेल्डन ने व्यक्तियों को घटकों के आधार पर निम्न तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है—

1. स्थूलकाय या गोलाकार या अंतरंग प्रधान (Endomorphic or Viscerotonic)
2. मध्यकाय या आयताकार या काय प्रधान (Meso-morphic or Somato-nic)
3. लम्बाकार या लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान (Ectom-orphic or Cerebrotonic)

शेल्डन द्वारा वर्गीकृत उपरोक्त तीनों प्रकार के व्यक्तित्वों के लक्षणों का विस्तार से वर्णन हम आगे करेंगे।

3.4.1 स्थूल काय या गोलाकार या अंतरंग प्रधान (Endomorphic or Viscerotonic)

इस वर्ग वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व अंतरंग प्रधान होता है। इनमें अपनी दिनचर्या रहन-सहन और कार्य करने के ढंग विशेष लक्षणों युक्त होते हैं। इनके मुख्य-मुख्य लक्षणों का विस्तार से नीचे वर्णन किया जा रहा है।

1. आराम प्रेमी–ये शारीरिक आराम प्रेमी होते हैं। शारीरिक श्रम से बचना चाहते हैं और अधिक से अधिक शारीरिक आराम चाहते हैं। इनके कपड़े ढीले-ढाले होते हैं। जहां कहीं बैठते हैं तो अपनी पीठ किसी प्रकार कुर्सी या दिवार से टिका लेते हैं।

2. मंद प्रतिक्रिया–इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में कार्य करने की क्रिया धीमी होती है। ये अपना हर कार्य देरी से करते हैं और कार्य करने में पीछे रह जाते हैं। कई बार ये अपना कार्य टाल देते हैं। अपने कार्य के लिए कई बार में अपने साथियों पर निर्भर रहते हैं। दिनचर्या में प्रात:काल ये तब तक नहीं उठते जब तक कोई इन्हें जगा न दे। अत: प्रात:काल जगने के लिए भी ये दूसरों पर निर्भर हो जाते हैं। इसलिए इन व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को मंद प्रतिक्रिया वाला कहते हैं।

3. चाल ढाल में शिथिलता–अंतरंग प्रधान व्यक्ति का प्रत्येक कार्य लापरवाही और असावधानी से होता है। अपने कार्य को करने में तत्परता नहीं दिखाता है और न ही वह नियोजित ढंग से किसी कार्य को करता है। इस प्रकार का व्यक्ति उठने बैठने एवं चलने में ढीला ढाला रहता है। अधिकांश समय वह बैठना ही पसंद करता है। अपने आसपास बिखरे सामान को भी वह व्यवस्थित नहीं करता है।

4. भोजनप्रिय–इस वर्ग का व्यक्ति अत्यन्त भोजन प्रिय होता है। हर समय कुछ न कुछ खाते रहना इस वर्ग के व्यक्ति की विशेषता है। वह नये-नये व्यंजन बनवाने और खाने का शौकीन होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन करके वह आनन्द लेता है।स्थूल अंतरंग वर्ग का व्यक्ति न केवल विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का शौकीन होता है अपितु अन्य लोगों को भी भोजन पर आमंत्रित करता है तथा उन्हें भी विभिन्न व्यंजनों का भोजन करवाने का शौकीन होता है। इस प्रकार भोजन करना और भोजन करवाना उसकी सामाजिक गतिविधि का एक अंग बन जाता है। कभी-कभी तो यह व्यक्ति अकेला भोजन भी नहीं कर सकता। जब तक उसके साथ खाने वाला कोई दूसरा न हो उसे भोजन करने में तृप्ति नहीं होती।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. पाचन-क्रिया में आनंद-इस वर्ग का व्यक्ति डटकर भोजन करता है और भोजनोपरांत अपने पेट पर हाथ फेरता रहता है। प्राय: पेट पर हाथ फेरते हुए यह व्यक्ति यह कहता रहता है कि खूब डट कर भोजन किया और भोजन से आनन्द प्राप्त हुआ व तृप्ति हुई। विशेष समारोह, उत्सवों एवं त्यौहारों में इनकी पाचन क्रिया ज्यादा सक्रिय हो जाती है। उक्त व्यक्ति ऐसे अवसरों पर आवश्यकता से अधिक भोजन करते उक्त व्यक्ति हैं।

6. जन-प्रेमी-स्थूल अंतरंग व्यक्ति जन-प्रेमी होता है। वह लोगों से मित्रों से घिरा रहना चाहता है। लोग उसके पास आते रहें और मिलते रहें यह उसे अच्छा लगता है। वह चाहता है कि अपनी पार्टी, समारोह, क्लब आदि में प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी तरह से जाने। सबसे मेल-जोल बढ़ाना उसकी प्रमुख विशेषता है।

7. शिष्टाचार का प्रेमी-इस प्रकार के व्यक्तित्व का व्यक्ति जन-प्रेमी के साथ-साथ शिष्टाचार का भी प्रेमी होता है। लोगों के बीच शिष्ट एवं सभ्य व्यवहार करना इस व्यक्ति की विशेषता है। समाज, समारोह, विवाह शादियों आदि में यह व्यक्ति अपनी शक्ति एवं समय देने में आगे रहता है। विशेष समारोहों, उत्सवों के समय अपने रीति-रिवाजों का पालन करने में वह सदैव तत्पर रहता है।

8. अविवेकी मिलनसारिता-जन-प्रेमी और शिष्टाचार का प्रेमी होने पर भी इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति हर किसी से मिलने और मित्र बनाने में प्रयत्नशील रहता है। उसे जीवन का आनंद अंधाधुंध मिलनसारिता में आता है। कभी-कभी तो वह यह भी नहीं सोचता कि किससे मिलना चाहिए, किससे कब कैसे बात करनी चाहिए बस मिलना, बातचीत करना और मित्र बनाना ही उसका शौक रहता है। इस मिलन क्रिया में वह अपने विवेक का प्रयोग कम करता है इसलिए उसे अविवेकी मिलनसार व्यक्ति भी कहते हैं।

9. प्यार और अनुमोदन की चाह-स्थूल अंतरंग व्यक्ति की प्रबल चाह लोगों से प्रेम पाने की होती है। उसकी प्रबल चाह यह भी होती है कि लोग उसके कार्य का, उसकी बातों का और व्यवहार का अनुमोदन करते रहें। जब उसको यह अनुभव होता है कि लोग उसको नहीं चाहते हैं तब वह चिंतित हो जाता है। इस चिंता को दूर करने का वह अपने साथियों से प्रेम प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। जब उसे प्यार मिलने लग जाता है तब वह चिंता मुक्त हो जाता है।

10. जन अभिविन्यासी-स्थूल अंतरंग व्यक्ति की प्रमुख विशेषता यह है कि वह प्रत्येक वस्तु से संबंधित व्यक्ति की ओर उन्मुख होता है। जैसे कोई वस्तु अच्छी बनी हुई है तो वह उस वस्तु को बनाने, व्यक्ति से मेलजोल करने का प्रयत्न करता है। उस वस्तु के निर्माता के बारे में जाने का अवश्य प्रयास करता है। यह गुण उसकी लोकप्रियता का आधार है।

11. भाव प्रवणता-इस व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सबके प्रति निरंतर और सतत् भाव प्रवण होता है। प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहता है और ऐसा लगता है कि जैसे वह कभी चिंता नहीं करता।

12. सहिष्णुता-स्थूल अंतरांग व्यक्ति में सहिष्णुता का विशेष गुण होता है। वह लोगों के अपराधों, भूलों तथा गलतियों को शीघ्र क्षमा कर देता है। स्वयं की गलतियों पर क्षमा याचना करने में नहीं हिचकिचाता है। आपसी मतभेदों को दूर करने में यह सक्रिय रहता है। उसकी सहिष्णुता लोगों को शांत रखने में सहायक होती है।

13. आत्म-संतोष-इन व्यक्तियों में अत्यधिक आत्म संतोष पाया जाता है। ये प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निराश नहीं होते। वे इस बात से आशान्वित रहते हैं कि अच्छे दिन आयेंगे और फिर परिस्थितियां बदलेंगी। इन्हें जो कुछ भी प्राप्त होता है उससे भी संतुष्ट हो जाते हैं।

14. गहन निंद्रा-स्थूल अंतरंग व्यक्ति चिंता मुक्त रहने के कारण गहन निंद्रा में सोते हैं। निंद्रा के समय उन्हें आसपास की आवाजों, शोर-शराबों की खबर नहीं रहती। चाहे इनके पास रेडियो, टी.वी., कुछ भी चल रहा हो, ये गहरी नींद में सोते हैं। एक तरह से ये घोड़े बेच कर सोते हैं।

15. समन्वयवादी-ये व्यक्ति घोर समन्वय- वादी होते हैं। प्रत्येक समस्या के दोनों पहलुओं पर ध्यान देते हैं और शांति से समाधान निकाल लेते हैं। कठिन समस्या का जिसका कोई हल नही दिखता, ये व्यक्ति उसका कोई न कोई हल निकाल लेते हैं। ये अपनी पराजय जल्दी स्वीकार नहीं करते।

16. निश्चल एवं सरल स्वभाव-स्थूल अंतरंग व्यक्ति निश्चल एवं सरल स्वभाव के होते हैं। ये अपनी भावनाओं को छुपाकर नहीं रखते हैं। इनमें पारदर्शिता होती है। किसी मामले या समस्या को हल करने के लिए लिखा-पढ़ी करने की अपेक्षा आमने-सामने बैठकर बात करना ज्यादा पसन्द करते हैं। जो भी बात हो उसे ये स्पष्ट रूप से व सरल भाव से कह देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17. दु:ख में संगी-साथी की तलाश-ये व्यक्ति जब किसी कठिनाई में पड़ जाते हैं तो ये चाहते हैं कि कोई व्यक्ति या संगी-साथी उसके साथ रहे। इस तरह ये संगी-साथी की तलाश में रहते हैं। बीमार पड़ जाने की स्थिति में ये चाहते हैं कि ज्यादा से ज्यादा लोग उनको देखने आयें और वह लोगों से घिरा रहे। अपनी समस्या के विषय में वे दूसरों को बताना चाहते हैं। जब कोई अच्छा संगी-साथी मिल जाता है तब उसको अपनी मन की बात सुनाकर मन का बोझ उतार देते हैं।

18. पारिवारिक प्रेमी-स्थूल अंतरंग व्यक्ति का जीवन बाल्यकाल के समान होता है। वह बच्चों की तरह जीवन का आनंद लेना चाहता है। वह अपने परिवार में सुखी रहना चाहता है और यह भी चाहता है कि दूसरे लोग भी जीवन में खुश रहें। परिवार में उसका सरल स्वभाव, निश्चल प्रेम, स्पष्टवादिता और सबके प्रति सद्भावना उसको प्रतिष्ठित बना देती है।

19. मादक द्रव्य का प्रभाव-इन पर मादक द्रव्यों का प्रभाव शिथिलीकरण के रूप में पड़ता है। मादक द्रव्य के प्रभाव में आकर ये शिथिलीकरण का अनुभव करते हैं और लोगों के साथ खूब बातचीत करना चाहते हैं। मादकता के कारण ये स्वयं गाने लगते हैं। पार्टी या समारोह में मादकता के कारण अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने में इन्हें रस मिलता है। अंतरंग व्यक्तित्व संबंधी उपरोक्त लक्षण एवं प्रकृतियां हमारे सम्मुख ऐसे व्यक्तित्व का चित्रण प्रस्तुत करते हैं जो अनेक दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस प्रकार के व्यक्ति के व्यक्तित्व में सामाजिक सद्भावना, निष्कपटता, सरलता और निश्चलता, सहिष्णुता आदि प्रवृत्तियां सामाजिक दृष्टि से हितकर हैं। परंतु कोई भी व्यक्ति शतप्रतिशत स्थूल अंतरंग नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति में शेल्डन द्वारा बताये गए तीनों गुणों का मिश्रण पाया जाता है, परंतु इनके अनुपातों में अंतर होने के कारण इनका व्यक्तित्व भिन्न हो जाता है।

3.4.2 मध्यकाय प्रधान व्यक्तित्व (Meso-morphic or Somatotonic)

इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का शरीर पुष्ट सुडौल एवं सुगठित होता है। इनकी शारीरिक शक्ति पर्याप्त विकसित होती है। इनकी मांसपेशियां एवं हड्डियां भी पर्याप्त विकसित एवं शक्तिशाली होती हैं। ये लोग, खेलकूद में रुचि एवं भाग लेते हैं। इनके शरीर पर चोट आदि का प्रभाव कम पड़ता है। ये अपने शरीर की देखभाल पर अधिक ध्यान देते हैं। अपने शरीर को पुष्ट सुगठित एवं ओजस्वी बनाये रखने के लिए व्यायाम और अन्य शारीरिक क्रियाएं करते रहते हैं।

शेल्डन के अनुसार इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में निम्न विशेष लक्षण पाये जाते हैं-

1. शारीरिक-श्रम और कार्य-प्रेमी- मध्य काय प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति शारीरिक कार्य के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। भोजन के बाद ये विश्राम नहीं करते अपितु किसी न किसी कार्य में व्यस्त हो जाते हैं। विश्राम की अपेक्षा किसी न किसी शारीरिक-श्रम में लग जाते हैं।

2. ओजस्विता और नेतृत्व-जैसा कि ऊपर बताया गया है कि मध्यकाय प्रधान प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में ओजस्विता एवं कर्मठता का गुण प्रधान होता है। इससे इनमें प्रत्येक परिस्थिति में नेतृत्व के गुणों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ये जो भी कार्य करते हैं उनमें उनकी कर्मठता एवं ओजस्विता के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं।

3. चाल-ढाल में स्वाग्रही-इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की चाल-ढाल में एक विशेष प्रकार की गति एवं तेजी दिखाई देती है जिससे वे दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक कार्य और स्थिति में इनकी शारीरिक क्रियायें स्वाग्रही होती है और क्रियायें इस तरह करते हैं कि दूसरे लोग उनको देखें। जैसे इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति यदि सिगरेट पीता है तो वह कश जोर से खींचता है और धुआं भी जोर से निकालता है ताकि दूसरे लोग उसे देखें। इस तरह वह अपनी क्रियाओं से दूसरों का ध्यान आकर्षित करता है।

4. व्यायाम-मनोरंजन प्रेमी-मध्यकाय प्रधान व्यक्तित्व वाला व्यक्ति व्यायाम में ही मनोरंजन का आनंद लेता है। शारीरिक रूप से सुदृढ़ होने के कारण यह गतिशील रहता है और अपना मनोरंजन भी खेल के द्वारा करता है। ये ऐसे खेल खेलते हैं जिनमें शारीरिक परिश्रम करना पड़े जैसे फुटबाल, टेनिस, कुश्ती, हॉकी आदि। इन खेलों से इनका शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है और मनोरंजन भी।

5. पढ़ाई-लिखाई से दूर-इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति पढ़ाई-लिखाई से दूर रहते हैं। ये शारीरिक श्रम तो चाहे जितना कर लेते हैं परंतु पढ़ाई-लिखाई में जी चुराते हैं। यदि इन्हें कुछ पढ़ने को दे भी दिया जाए तो उसे सरसरी दृष्टि से ही पढ़ते हैं न कि विशेष ध्यान देकर। इस तरह इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति शारीरिक श्रम करने की अपेक्षा पढ़ाई-लिखाई में कमजोर रहते हैं।

6. साहसी एवं संकटपूर्ण अवसर का प्रेमी-मध्यकाय प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का व्यवहार जोखिम भरे कार्यों को करने वाला (Risk taking behaviour) होता है। वह ऐसे कार्यों की तलाश में रहता जिसमें जोखिम हो और उन कार्यों को करके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर सके। वह प्रत्येक अवसर पर आगे बढ़कर काम करना चाहता है। इसमें उसके नेतृत्व की भावना भी प्रकट होती है। वह साहसी कार्यों को करना ज्यादा पसंद करता है। ऐसा व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सेना में सफल होता है।

7. वार्तालाप में निर्भीक–इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति वार्तालाप और व्यवहार में निर्भीक होता है और दो टूक बात कहने में नहीं हिचकिचाता है। इसके कारण उसके मित्र और परिचित व्यक्ति उससे बात करने में घबराते हैं।

8. प्रभुत्व वाला–इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति अपना प्रभुत्व दूसरों पर जमाता है। हर परिस्थिति में अपना स्थान ऊपर बनाये रखता है और अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करता है।

9. दृढ़ हृदय–इसके हृदय में दृढ़ता होती है। यह दया और सहानुभूति जैसी भावनाएं व्यक्त नहीं करता इसलिए कभी–कभी इसको कठोर हृदय वाला व्यक्ति भी कहते हैं। ऐसा व्यक्तित्व वाला व्यक्ति हर परिस्थिति में अपने स्वार्थ का ध्यान रखता है। दु:ख संवेदना जैसे भावों की अभिव्यक्ति को चरित्र की दुर्बलता समझता है इसलिए किसी की मृत्यु पर भी वह दु:खी नहीं होता है।

10. धर्मभीरुता का अभाव–इस वर्ग के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में धार्मिक पक्ष का महत्व नहीं होता अर्थात् अपने कार्य में धार्मिक पक्ष पर ध्यान नहीं देता। उसका मुख्य उद्देश्य अपने कार्य की सिद्धि होता है।

11. प्रतियोगिता में आक्रामक–मध्य कायप्रधान व्यक्ति आक्रामक प्रतियोगी होता है। जब कभी वह किसी प्रतियोगिता में भाग लेता है तो वह आक्रामक बन जाता है और अपनी शक्ति एवं प्रभुत्व को उस प्रतियोगिता में प्रदर्शित करता है। ऐसा व्यक्ति खेलकूद प्रतियोगिताओं में भी आक्रामक होता है।

12. सवृत स्थानभीति–इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति छोटे स्थान या बंद स्थान में रहना पसंद नहीं करता है। उसे ऐसे स्थान में भय लगता है। अत: वह सदा खुली या बड़ी जगह में रहना पसंद करता है।

13. कोलाहल प्रेमी–मध्य कायप्रधान व्यक्ति में कोलाहल उत्पन्न करने की विशेष प्रवृत्ति पायी जाती है। वह जहां कहीं भी जाता है अपनी उपस्थिति कोलाहल पैदा करके जताता है। विचित्र या भड़कीले वस्त्र पहनकर, जोर–शोर से बोलकर, किसी वस्तु को पटककर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। घर में प्रवेश के समय दरवाजा झटके के साथ खोलता है और झटके के साथ जोर से बंद करता है। उसके प्रत्येक कार्य में इस प्रकार की क्रिया होती है।

14. ऊंचा और स्पष्ट स्वर–मध्य कायप्रधान व्यक्ति मंद स्वर में नहीं बोलना चाहता है, बातचीत में उसका स्वर ऊंचा और स्पष्ट होता है। जब भी बात करता है तो अपने स्वरों को स्पष्ट और बल देकर बोलता है।

15. अतिपरिपक्व शरीर–इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति अपनी आयु से अधिक परिपक्व दिखाई देता है। शारीरिक कार्य एवं परिश्रम से उसके शरीर का गठन सुदृढ़ होता है इसलिए उसके हाथ पांव समय से पहले ही परिपक्व हो जाते हैं। उदाहरण के लिए एक सत्रह वर्षीय मध्य कायप्रधान युवक चौबीस वर्ष का व्यक्ति दिखता है।

16. कष्ट एवं पीड़ा के प्रति उदासीन– मध्य काय प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की दृष्टि में कष्ट एवं पीड़ा का कोई महत्व नहीं होता इसलिए वह पीड़ा के प्रति उदासीन होता है। उसकी यह धारणा होती है कि दुर्बल व्यक्ति ही पीड़ित होते हैं।

17. कठिनाई में भी सक्रियता–इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कठिनाई पड़ने पर और अधिक सक्रिय हो जाता है। भाग–दौड़ करके वह अपनी कठिनाई को दूर कर लेता है। अपनी कठिनाई को दूर करने के लिए किसी भी व्यक्ति से मिलने एवं सहायता लेने में वह नहीं हिचकिचाता है।

18. चिंतन में रूढ़िवादिता–मध्य कायप्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के चिंतन में रूढ़िवादिता रहती है, इसके चिंतन में कोई नवीनता नहीं होती। किसी समस्या की गहराई में जाने की इसकी प्रवृत्ति नहीं होती है। इनकी सोच में सही या गलत ये दो बातें ही प्रधान होती हैं। बीच की स्थिति के बारे में इनका चिंतन नहीं के बराबर होता है। अपने द्वारा बनाये गये विश्वासों का यह पक्का होता है। अपने विश्वासों के विरुद्ध कोई बात स्वीकार नहीं करता चाहे उसके लिए कई प्रमाण हों।

19. मादक द्रव्यों का प्रभाव–मादक द्रव्यों का पान करने पर इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति अधिक आक्रामक और हठधर्मी हो जाता है। इसके व्यवहार में आक्रामकता आ जाती है। यह लड़ाई झगड़ा भी करता है।

3.4.3 प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व (Ectomor-phic or Cerebrotonic)

प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व वाला व्यक्ति भी कहते हैं। शारीरिक दृष्टि से यह लम्बा दुबला पतला होता है। यह सही ढंग से पोशाक पहनता है। यह चिन्तनशील होता है परंतु शारीरिक शक्ति में कमजोर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होता है। यह श्रमसाध्य कार्य कम करता है। जब कभी भी इसको शारीरिक श्रम करना पड़ता है तो इसमें एक प्रकार की घड़बड़ाहट हो जाती है।

शेल्डन और उसके सहयोगियों द्वारा प्रमस्तिष्क प्रधान व्क्तित्व वाले व्यक्ति के जो लक्षण बताये गये हैं उनको संक्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है-

1. शारीरिक क्रिया-इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की शारीरिक क्रियाएं यंत्रवत् होती है। कार्य करने में चुस्त और फुर्तीला होते हैं। यह यांत्रिक साधनों के प्रयोगों को अपना ही एक अंग मानता है। जब वह कोई शारीरिक कार्य करता है तब उसमें एक मशीन की तरह गति होती है और कार्य को समय पर सम्पन्न करने की चेष्टा रहती है।

2. तत्काल प्रतिक्रिया-लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में किसी भी उत्तेजना के प्रति तत्काल प्रतिक्रिया होती है। उसकी तंत्रिकाएं इस प्रकार निर्मित होती हैं कि उनमें तत्काल प्रतिक्रिया हो जाती है। इनके स्नायु तंतुओं में निरंतर तनाव पाया जाता है और इसी तनाव के फलस्वरूप शारीरिक प्रतिक्रिया शीघ्र होती है। जो कार्य तत्काल यह व्यक्ति करता है उसमें एक प्रकार की पूर्णता पायी जाती है। इसके कार्य समय पर और ठीक प्रकार के होते हैं। इसमें इस व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को ज्यादा शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ती क्योंकि यह उसकी स्वाभाविक गति हो जाती है।

3. चाल-ढाल में संयम-प्रमस्तिष्क प्रधान वाले व्यक्ति की चाल-ढाल में संयम रहता है। यह व्यवस्थित कपड़े पहनता है और अपने हर कार्य को व्यवस्थित ढंग से करता है। अपने कमरे का दरवाजा खोलने और बंद करने में वह अत्यधिक सावधानी बरतता है। बैठने और खड़े होने में संयम रखता है। शारीरिक शिथिलता से दूर रहना इसकी प्रमुख विशेषता है।

4. एकांत प्रेमी-इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति एकांत प्रिय होता है। कोलाहल युक्त वातावरण से यह दूर रहता है। अपना निजी कार्य, पढ़ाई लिखाई एवं मनोरंजन भी एकांत में करता है। किसी के साथ रहना इसके लिए मुश्किल का काम है। जब कभी भी उसे एक ही कमरे में किसी अन्य व्यक्ति के साथ रहना पड़े तो वह बड़ा परेशान एवं दु:खी हो जाता है। उसका सदैव यही प्रयास रहता है कि वह अकेला रहे। यहां तक कि टहलने और घूमने में भी यह अकेला रहना पसंद करता है।

5. सीमित सामाजिक संबंध एवं जन-भीति-लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति का सामाजिक दायरा अत्यधिक सीमित होता है। वह लोगों से दूर रहना चाहता है। समारोह आदि में जन समूह से दूर रहना चाहता है और मात्र दो चार मित्रों और संबंधियों के ही साथ मिल बैठकर बातचीत करना पसंद करता है। ज्यादा भीड़-भाड़ या जन-समूह से उसको भय एवं संकोच रहता है। वह अपने सामाजिक संबंधो को भी अत्यंत सीमित रखता है। रास्ते में कोई परिचित मिल जाए जो उससे बिना बातचीत या नमस्कार किये बच निकलने का प्रयत्न करता है। संकोची स्वभाव का होने के कारण वह अन्य लोगों से संपर्क करने में कतराता है।

6. मानसिक क्रियाशीलता-लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति में अत्यधिक मानसिक क्रियाशीलता पायी जाती है। अपने सभी मानसिक कार्य बड़े ध्यान देकर करता है। कोई कार्य कितने समय में होता है, इसका सही-सही अनुमान लगा लेना इस व्यक्ति की विशेषता है। इसका कारण उसका सही मानसिक चिंतन है। यदि इस प्रकार का व्यक्ति कोई अध्यापक है तो अपनी कक्षा में उपस्थिति छात्रों की संख्या का ठीक-ठीक अनुमान लगा लेता है। यदि इस प्रकार का व्यक्ति भवन निर्माता है तो वह अनुमान लगा लेता है कि कितनी सीढ़ियां इस भवन में लगेंगी, छत पर कितनी पट्टियां आयेंगी। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के व्यक्ति में अधिक मानसिक क्रियाशीलता के कारण इसके अनुमान सही और सटीक होते हैं।

7. भावात्मक गोपनीयता-इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने भावों, हार्दिक इच्छाओं और संवेगों को गोपनीय रखने में कुशल होते हैं और इनको खुलकर प्रकट नहीं करते। अपने भावों, इच्छाओं और संवेगों को प्रकट करने में वे संयम बरतते हैं। यदि वह किसी को मित्र भी बनाते हैं तो इसकी जानकारी उस व्यक्ति को नहीं होने देते हैं। किसी से प्रेम करते हैं तो उसकी भी वह गोपनीयता रखते हैं।

8. संकोची स्वभाव-इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति स्वभाव से बड़ा संकोची होता है। उसके चेहरे एवं आंखों में सदा संकोच के भाव रहते हैं। वह किसी से आंख मिलाने से बचता है। जब कभी उसे हंसी आती है तो उसे छिपाने की कोशिश करता है।

9. विवृत-स्थान-भीति-इस प्रकार के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति जन-भीत होने के साथ-साथ वह विवृत-स्थान-भीत भी होता है। अर्थात् वह खुले और बड़े स्थान में रहना पसंद नहीं करता। यह संकुचित एवं बंद स्थानों को पसंद करता है ताकि उसकी गोपनीयता बनी रहे तथा उसे एकांतवास मिले।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10. अनिश्चित अभिवृत्ति–इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के रवैये के बारे में कहना कठिन होता है। इसके गूढ़ और गोपनीय स्वभाव के कारण लोग इसकी विचारधारा से परिचित नहीं हो पाते। इसलिये यह कहना कठिन हो जाता है कि इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का किसी समस्या पर रवैया या मत क्या होगा। जब कभी किसी बात पर मत देना हो तो ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का मत अनिश्चित हो जाता है क्योंकि वह किस पक्ष को मत देगा, यह गुप्त रखता है।

11. आदत से बचाव–लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति की दिनचर्या में समरूपता नहीं पायी जाती। किसी बात की आदत न पड़ जाए, इससे बचने के लिए वह अपने नित्य प्रति होने वाले कार्यों को थोड़ा परिवर्तन के साथ करता है। वह किसी क्रिया को आदत नहीं बनाना चाहता है।

12. संवेदनशील–इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बहुत ही संवेदनशील होता है। इसे यदि शारीरिक या मानसिक आघात पहुंचता है तो वह बहुत अधिक पीड़ा अनुभव करता है और अत्यंत संवेदनशील हो जाता है। वह इस शारीरिक या मानसिक आघात को लम्बे समय तक नहीं भूल पाता।

13. गहरी निंद्रा का अभाव–इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति गहरी एवं सुख की नींद नहीं सो पाता। निरंतर मानसिक क्रिया एवं चिंतन के कारण सोते समय भी बेचैन सा रहता है। सोते समय भी उसके दिमाग में चिंतन एवं बातें घूमती रहती हैं, इस कारण उसे समय पर अच्छी नींद नहीं आ पाती।

14. निरन्तर थकान का अनुभव–चूंकि इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति निरंतर चिंतनशील होता है और उसे पूरी नींद नहीं आती, इससे उसके शरीर को गहन विश्राम नहीं मिल पाता। फलस्वरूप वह निरंतर शारीरिक थकान अनुभव करता है।

15. संयमित वाणी–लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति शांत स्वभाव का होता है। यद्यपि उसकी मानसिक क्रियाएं अधिक रहती हैं फिर भी वह बोलने-चालने में शांत रहता है। किसी के साथ वार्तालाप में वह धीमे एवं संयत वाणी का उपयोग करता है। यह संयम केवल उसकी वाणी में ही नहीं अपितु उसके अन्य कार्यकलापों में भी प्रदर्शित होता है। जैसे दरवाजों को धीरे बंद करना, रेडियो या टी.वी. को धीरे बजाना इसके समग्र संयम का परिचायक है।

16. अंतर्मुखी–इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला व्यक्ति प्रायः अंतर्मुखी होता है। किसी भी समस्या के समाधान के लिए वह उस समस्या का गहराई से अध्ययन करता है। वह प्रत्येक समस्या की गहराई में जाकर उसे समझने एवं उसका विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रवृत्ति के होते इस व्यक्तित्व वाला व्यक्ति अच्छा अनुसंधान कर्त्ता या दार्शनिक हो जाता है।

17. विपत्ति में एकांत की आवश्यकता– लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति पर जब कभी कोई विपत्ति आती है तो उसे एकांत की आवश्यकता या खोज रहती है जिससे कि वह एकांत में जाकर अपनी समस्या या विपत्ति पर गहन विचार कर सके और उसका समाधान या निराकरण कर सके। प्रायः यह अपनी समस्या या विपत्ति का समाधान स्वयं अकेला ही करता है।

18. नित्य युवापन–मध्यकाय प्रधान व्यक्ति की तरह यह व्यक्ति अतिपरिपक्व नहीं दिखता अपितु अपनी वास्तविक आयु से भी कम परिपक्व दिखाई देता है। इससे इसकी आयु का अनुमान लगाना कठिन होता है।

19. शिष्टाचार प्रेमी–लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति शिष्टाचार का पूरा पालन करता है। इस वर्ग के व्यक्तित्व वाला किशोर भी अन्य वर्ग के प्रौढ़ व्यक्तियों के समान शिष्टाचार का ध्यान रखता है। यह शिष्ट कपड़े पहनता है और वार्तालाप में भी पूरी शिष्टता प्रदर्शित करता है।

20. मादक द्रव्यों का प्रभाव–लम्ब प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति प्रायः मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करता। यदि मादक द्रव्यों का प्रयोग औषधि के रूप में भी करना पड़े तो बहुत ही कम मात्रा में मादक द्रव्यों को उपयोग में लेता है।

6.0 अभ्यासार्थ प्रश्न

I निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. क्रेत्समर द्वारा किये गये व्यक्तित्व का वर्गीकरण कीजिये।
2. शेल्डन द्वारा किये गये व्यक्तित्व का वर्गीकरण कीजिये।

II लघूत्तरीय प्रश्नः–

1. तुन्दिल प्रकार के व्यक्तित्व को समझाइये।
2. कृशकाय व्यक्तितत्व की विशेषताएं बताइये।
3. प्रमस्तिष्क प्रधान व्यक्ति की विशेषताएं बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई: 4 व्यक्तित्व का वर्गीकरण एवं आचार्य महाप्रज्ञ
(लेश्या के आधार पर)

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 भामण्डल
4.3 अभामण्डल
4.3.1 क्या भामण्डल और अभामण्डल देखे जा सकते है?
4.4 लेश्या क्या है?
4.5 रंगों का मनोविज्ञान
4.6 लेश्याओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण
4.6.1 कृष्ण लेश्या
4.6.2 नील लेश्या
4.6.3 कापोत लेश्या
4.6.4 तेजो लेश्या
4.6.5 पद्म लेश्या
4.6.6 शुक्ल लेश्या
4.7 व्यक्तित्व विकास
4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्यायों में हमने व्यक्तित्व, उसके निर्धारक कारकों तथा क्रेत्समर एवं शैल्डन द्वारा किये गये व्यक्तित्व के वर्गीकरण के बारे में पढ़ा। जैसा कि पिछले अध्यायों में बताया जा चुका है कि समय-समय पर मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यक्तित्व को अलग-अलग ढंग से समझा है तथा उसका वर्गीकरण किया है। विभिन्न दर्शनों के आधार पर भी व्यक्तित्व का वर्गीकरण हुआ है। जहां श्रीमद्‌भगवद् गीता में सत्व, रज और तम गुणों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया वहीं श्री अरविंद ने पांच कोषों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण पांच सत्ताओं में किया। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने व्यक्तित्व वर्गीकरण के लिए क्रांतिकारी विचार एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किया। अपनी साधना एवं अनुभवों के आधार पर तथा उनके सम्पर्क में आने वाले हजारों व्यक्तियों की लेश्याओं का अपने स्तर पर अध्ययन कर लेश्याओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने का प्रयास किया। उन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व को लेश्याओं के आधार पर छ: वर्गो में वर्गीकृत किया।

विश्व भर में शताब्दियों से सूर्य के प्रकाश की किरणों का अर्जन किया जाता रहा है तथा उनमें उपस्थित सात रंगों के उपयोग का भी अध्ययन किया जाता रहा है। कई चिकित्सा पद्धतियों में सूर्य के प्रकाश तथा उसमें उपस्थित रंगों से चिकित्सा की जाती है। सूर्य किरण चिकित्सा पद्धति में सूर्य किरण स्नान, सूर्य की किरणों से विशिष्ट रंग का पानी एवं औषधियां तैयार करना निहित है। अत: इससे स्पष्ट है कि रंगों और मानव का सम्बंध अति घनिष्ठ और आदि काल से रहा है। आधुनिक विज्ञान भी कई प्रकार की रश्मियों से विभिन्न व्याधियों की चिकित्सा कर रहा है। अत: रंग रश्मियों का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य और शरीर पर पड़ता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी प्रभावित करता है। मनोवैज्ञानिकों ने भी व्यक्ति के व्यवहार, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर रंग रश्मियों के प्रभाव का अध्ययन किया है। डॉ. रिचर्ड्स जे. बुर्ट मैन के अनुसार- शारीरिक क्रिया-कलापों पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले तत्त्वों में आहार के अतिरिक्त यदि किसी का हाथ है तो वह है प्रकाश का। इसी तरह फाबेर बिरेन ने भी विभिन्न रंगों के कई प्रयोग व्यक्तियों पर करके यह सिद्ध किया कि रंगों एवं व्यक्ति की क्रियाओं का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है।

वेदों में भी सूर्य रश्मियों का व्यक्तियों के व्यवहार, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का कई जगह उल्लेख किया गया है। जैन आगमों में भी प्रकाशीय रंगों को लेश्या का नाम देते हुए इनका व्यक्ति के व्यक्तित्व से गहरा संबंध बताया है। भगवान

महावीर ने ढाई हजार वर्ष पूर्व लेश्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके सिद्धान्त के अनुसार लेश्या दो प्रकार की धाराओं में चलती है—भाव की धारा और रंग की धारा। इन दोनों का योग ही लेश्या का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार लेश्या एक प्रकार का पौद्‌गलिक पर्यावरण है। संसार के प्रत्येक पदार्थ, चाहे वह सजीव हो या निर्जीव हो, के चारों ओर रश्मियों का वलय होता है। ये वलय पदार्थ में से विकसित हुई रश्मियों के पुंज से बनता है। ये रश्मियां विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा या तरंगों के रूप में होती है। रश्मियों के प्रस्फुटित होने या विकसित होने पर पदार्थ के चारों ओर जो वलय बनता है उस वलय को आभा मंडल कहते हैं। जीव के चारों ओर भी रश्मियों का आवरण है।

जैसा कि हमने पीछे लिखा है कि वर्तमान समय में आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने लेश्या के आधार पर व्यक्तित्व वर्गीकरण प्रस्तुत कर एक क्रांतिकारी विचार एवं सिद्धांत जगत को प्रस्तुत किया है। अपने गहन अध्ययन और चिन्तन के आधार पर उन्होंने लेश्याओं को दो मुख्य भागों में बांटा है—1. भामंडल (Halo), 2. आभामंडल (Aura)।

4.1 उद्देश्य (Objectives)

1. भामण्डल की क्या विशेषता है?
2. आभामण्डल के बारे में जान सकेंगे।
3. लेश्या को समझ सकेंगे।
4. रंग हमारे व्यक्तित्व को कैसे प्रभावित करते है, यह जान सकेंगे।
5. छ: प्रकार की लेश्याओं को जान सकेंगे।
6. रंग और चैतन्य केन्द्रों के सम्बन्ध को जान सकेंगे।

4.2 भामंडल (Halo)

देवी, देवताओं, अवतारी पुरुषों, संत और सिद्ध पुरुषों के शरीर से निकलने वाली लेश्याओं (रश्मियों) का वलय जो इन पुरुषों के शरीर के चारों ओर दैदीप्यमान होता है उस वलय को भामंडल कहते हैं। इस भामंडल को देवी, देवताओं, सिद्ध योगी पुरुषों तथा संतों के चित्रों में चमकीले पीले वलय के रूप में दर्शाया जाता है।

4.3 आभामंडल (Aura)

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि प्रत्येक पदार्थ, चाहे वह सजीव हो या निर्जीव हो, के चारों ओर रश्मियों का एक वलय होता है जिसको आभामंडल कहते हैं। यह वलय या पुंज सूक्ष्म तंतुओं के जाल जैसा या रूई के सूक्ष्म तंतुओं के व्यूह के जैसा एक कवच के रूप में होता है। सजीव प्राणी में यह सम्पूर्ण शरीर के चारों ओर फैला हुआ होता है। वास्तव में यह पुंज शरीर से या पदार्थ से विकिरित होने वाली रश्मियां है जो घनीभूत होकर एक वलय के रूप मे या एक कवच के रूप में प्रकट होती हैं। ये रश्मियां विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा या तरंग के रूप में होती हैं।

"जैन आगमों में आभामंडल जैसे शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता किन्तु लेश्या शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग हुआ है उससे यह विज्ञान सम्मत बात लगती है कि शरीर विद्युत का भंडार है तथा इससे प्रतिक्षण विद्युत विकिरित हो रही है। विकिरित होने वाले पुद्‌गलों का अपना एक संस्थान बनता है जिसे हम आभामंडल कहते है"।

आभामंडल की अवधारणा प्राचीन काल से ही है। कई शास्त्रों में इसका उल्लेख है। आधुनिक वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि पदार्थ के चारों ओर प्रकाश का एक वलय होता है। वैज्ञानिकों ने इनके चित्र भी प्राप्त किये हैं।

4.3.1 क्या भामंडल और आभामंडल देखे जा सकते हैं?

ये प्रश्न बड़ा टेढ़ा प्रश्न है क्योंकि हर साधारण व्यक्ति अपने सामान्य चक्षुओं से भामंडल और आभामंडल को नहीं देख सकता है। परन्तु इस आधार पर हम लेश्याओं के भामंडल और आभामंडल की उपस्थिति को नकार नहीं सकते। जैसे क्ष-किरणों (X-rays) तथा लेजर रश्मियों को हम देख नहीं पाते परन्तु उनके प्रभावों को हम स्पष्ट रूप से अनुभव कर सकते हैं। ठीक उसी तरह भामंडल और आभामंडल का व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है चाहे वो दिखाई न दे। जैसे किसी संत पुरुष, योगी पुरुष या सरल व्यक्ति के पास बैठने पर उस संत पुरुष, योगी पुरुष के प्रति आकर्षण पैदा हो जाता है और व्यक्ति उसके पास घंटों बैठा रहना चाहता है। दूसरी तरफ कभी-कभी हम ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आ जाते हैं जिसके साथ ज्यादा ठहरने या बैठने की इच्छा नहीं होती है। उक्त प्रथम उदाहरण में संत योगी पुरुष का भामंडल व्यक्ति के आभामंडल को प्रभावित करता है और उसमें विशेष आकर्षण पैदा करता है। जबकि दूसरे उदाहरण में व्यक्ति का आभामंडल दूसरे व्यक्ति के आभामंडल में नकारात्मक प्रेरण (induction) प्रतिकर्षण होता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लेश्या आधारित आभामंडल होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सदियों से यह धारणा रही है कि आभामंडल केवल अंतर्द्रष्टा महापुरुष ही देख सकता है और यह बात सही भी है क्योंकि आभामंडल की रश्मियां उन्नत चेतना वाला ही देख सकता है या जिसके पास दिव्य दृष्टि हो वही आभामंडल को देखने में सक्षम होता है परन्तु आज के वैज्ञानिकों ने अति आधुनिक उपकरणों की सहायता से पदार्थों एवं प्राणियों के आभामंडल को देखा है और उनके चित्र भी खींचे है।

4.4 लेश्या क्या है?

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार लेश्या हमारी चेतना की रश्मि है। उनके अनुसार लेश्या का अर्थ ज्योति रश्मि से किया गया है, जिस तरह सूर्य की रश्मियां होती है वैसे ही हमारी चेतना की भी रश्मियां होती है। चेतना हमारे भीतर है परन्तु फिर भी उसकी किरणें शरीर द्वारा बाहर प्रस्फुटित होती हैं और इनका रंग व्यक्ति के भावों के अनुसार बदलता रहता है। जैन आगम नन्दी सूत्र में लेश्या शब्द पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। सूत्र में यह शब्द है 'रस्सी' अर्थात् रश्मि। रस्सी से लस्सी बना और उससे लेस्सा अर्थात् लेश्या शब्द बना। लेश्या सिद्धान्त बहुत पहले से ही दार्शनिक जगत में चर्चित है, वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने इसको आभामंडल या ओरा का नाम दिया है। लेश्या का सिद्धान्त भगवान महावीर के समय से चला आ रहा है जिसका प्रमाण जैन आगम आचारांग सूत्र में मिलता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने अपने लेश्या सिद्धान्त में मानव में उपस्थित छः प्रकार की लेश्याओं का वर्णन किया है। ये लेश्याएं छः भिन्न-भिन्न रंगों की है और इन रंगों की प्रधानता के अनुसार ही व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रदर्शित होता है। इन लेश्याओं से बनने वाला आभामंडल झील की भांति शांत और आग की लपटों की तरह उत्तेजित हो सकता है। आचार्यश्री द्वारा उल्लेखित ये लेश्याएं है— 1. कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. तेजो 5. पद्म एवं 6. शुक्ल। इन सभी लेश्याओं की व्यक्ति के व्यक्तित्व के संदर्भ में आचार्यश्री के एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम आगे वर्णन करेंगे।

उपरोक्त सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि (1) रश्मियों एवं उनके रंगों का प्रभाव मानव जीवन पर, व्यापक रूप से पड़ता है। तथा (2) मनुष्य एवं पदार्थों से उत्पन्न होने वाले आभामंडल व्यक्ति तथा उसके वातावरण को प्रभावित करते है। मनोवैज्ञानिकों ने भी रंगों एवं प्रकाशीय रंगों के व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का बड़ा गहन अध्ययन किया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रकाशीय रंग व्यक्ति की भावधारा को प्रभावित करते हैं। आचार्यश्री के अनुसार आभामंडल या लेश्या भावधारा को प्रभावित करते है तथा भावधारा, आभामंडल को प्रभावित करती है।

4.5 रंगों का मनोविज्ञान

प्रसिद्ध प्रकाशीय रंग वैज्ञानिक 'फाबेर बिरेन' ने रंगों के प्रभाव के आधार पर, व्यक्ति का चरित्र विश्लेषण करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Character Analysis Through Color' में रंगों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस प्रकार किया—

1. लाल रंग प्रिय व्यक्ति बहिर्मुखी प्रकृति के होते हैं। ये व्यक्ति ओजस्वी, आवेगशील व साहसी प्रकृति के होते हैं। इनमें सहानुभूति की गहरी मात्रा रहती है तथा मानव सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। ये अपने जीवन को गम्भीरता से लेते हैं।
2. नारंगी रंग को पसन्द करने वाले व्यक्ति अच्छे मित्र एवं सच्चे साथी होते हैं। दूसरे लोग इनकी कार्यशैली से ईर्ष्या करते हैं। ये अच्छे पकवान बनाने वाले और खाने के शौकीन होते हैं। ये अपने आपको सुखी बनाने एवं दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए अपने आध्यात्मिक मूल्यों को नजरअंदाज कर देते हैं। ये व्यक्ति आकर्षक एवं वाक्पटु होते हैं।
3. पीले रंग पसंदी व्यक्ति विद्वान एवं आदर्शवादी होते हैं। ये लोग शुद्ध प्रकृति के, उच्च मानसिक क्षमतावान एवं स्वप्नदर्शी होते है। इनके विचार विशद् एवं गहरे होते है। दार्शनिकों की भांति ये लोग प्रेम करने वाले होते हैं।
4. हरा रंग प्रिय व्यक्ति प्रकृतिवादी होते है तथा इनमें वैश्विकता की भावना रहती है। ये सहनशील, उदारमन तथा पूर्वाग्रहों से मुक्त रहते है।
5. नीले रंग को पसंद करने वाले व्यक्ति अंतर्मुखी एवं संकोची होते हैं। ये दूसरों के प्रति संवेदनशील होते हुए भी अपने उत्साह पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाले होते है। ये न्यायप्रिय भी होते है।
6. जिन व्यक्तियों को बैंगनी रंग प्रिय होता है वे असामान्य और अपवर्णक प्रकृति के होते है। वे दूसरों के लिए तो रहस्यमयी होते ही है साथ ही साथ स्वयं के लिए भी रहस्यमयी होते है। सामान्यतया ये थोड़े में ही संतुष्ट एवं सुखानुभूति प्राप्त करते हैं। विनम्रता इनकी मुख्य पहचान होती है। इनकी विद्वत्ता स्थाई होती है किन्तु ये कभी भी अपनी योग्यताओं को दूसरों पर नहीं थोपते।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भूरा रंग पसंद करने वाले व्यक्ति धनी, विश्वासपात्र और दृढ़ निश्चयी होते हैं। ये रूढ़िवादी प्रकृति के होते हैं। ये आवेश और दिखावे को नापसंद करते हैं। ये अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभाते हैं। इनका भोजन सादा परन्तु अच्छा होता है। किसी वस्तु को प्राप्त करने में उस वस्तु की मात्रा की अपेक्षा उसकी गुणवत्ता पर अधिक ध्यान देते हैं। इनके सिद्धान्त दृढ़ होते हैं।

उपरोक्त व्यक्तित्व विश्लेषण मनोविज्ञान जगत में पूर्ण व्यक्ति के व्यवहारों तथा उसके जीवन के अन्य मूल्यों का अध्ययन करने के लिए इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध कार्य की आवश्यकता है।

4.6 लेश्याओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने लेश्याओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण छः वर्गों में किया है। व्यक्ति में जिस प्रकार की लेश्या की प्रधानता होगी उसके अनुसार उसका व्यक्तित्व और गुण होंगे। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि लेश्याएं, आभामंडल की ही रश्मियां है। अतः व्यक्ति के आभामंडल में जिस रंग की प्रधानता होगी उसके अनुसार उसका व्यक्तित्व और उसके गुण होंगे। आचार्यश्री के अनुसार व्यक्तियों में आभामंडल और लेश्याओं से सम्बन्धित व्यक्तित्व का वर्णन इस प्रकार है—

4.6.1 कृष्ण लेश्या

यदि व्यक्ति के आभामंडल में काले रंग की प्रधानता हो तो ऐसे व्यक्ति के व्यक्तितत्व में कषायों का प्रबल आवेग रहता है। ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति असंयमी, शूद्र प्रकृति वाले, क्रूर, हिंसक और निर्लज्ज होते हैं। ऐसे व्यक्ति काम, क्रोध मद और लोभ में प्रवृत्त होते हैं तथा ये प्रबल आकांक्षा वाले भी होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में प्रायः मानसिक और शारीरिक तनाव बना रहता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कृष्ण लेश्या के व्यक्तित्व वाले लोगों में इदं (Id) की प्रधानता रहती है, जिस कारण वह अपनी अनियमित इच्छाओं की येन–केन प्रकारेण पूर्ति करना चाहता है ऐसे व्यक्तियों में अहं (Ego) एवं पराहम् (Super-ego) की न्यूनता रहती है इस कारण इन्हें अच्छे–बुरे का भान नहीं रहता है और सामाजिक बंधनों एवं नैतिकता की न्यूनता रहती है। ये सामाजिक नियमों को कम मानते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में ये पारिवारिक एवं सामाजिक नियमों का उल्लंघन करते हैं। इस तरह इनका व्यक्तित्व असंतुलित होता है।

4.6.2 नील लेश्या

जब व्यक्ति के आभामंडल में नीले रंग की प्रधानता हो तो ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में बौद्धिक स्तर निम्न होता है। वह अस्थिर मनोभाव वाला अर्थात् बार–बार मानसिकता बदलने वाला, ईर्ष्यालु व आसक्ति वाला होता हैं। ऐसे आभामंडल वाला व्यक्ति सुखभोग और काम की इच्छा रखने वाला होता है तथा उसकी प्रकृति में क्षुद्रता रहती है। उसमें हिंसा में प्रवृत्ति की तथा दूसरों को कष्ट पहुंचाने की भावधारा प्रधान रहती है। इस प्रकार की लेश्या वाला व्यक्ति यश लोलुपतायुक्त, प्रमादी, निर्लज्जभाव वाला, अधार्मिक होता है। वह असंयमी, काम एवं क्रोध भाव रखने वाला होता है। समाज में दिखावा करने वाला तथा ऊपर से अच्छा व्यवहार करते हुए मन में कुटिलता रखने वाला होता है। समाज की निंदा से बचने के लिए दिखावटी तौर पर वह अच्छा व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व से नील लेश्या वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व थोड़ा सुधरा हुआ होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में इदं (Id) की प्रधानता होती है परन्तु साथ ही अहं (Ego) का उदय होता है परन्तु इनमें पराहम् (Super-ego) की न्यूनता रहती है और इनका व्यक्तित्व असंतुलित होता हैं।

4.6.3 कापोत लेश्या

कापोत लेश्या या आभामंडल वाले व्यक्ति में कापोती रंग की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्तियों का व्यक्तित्व कृष्ण लेश्या तथा नील लेश्या वाले व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ सुधरा हुआ होता है। फ्रि भी इनकी वाणी एवं आचरण में स्पष्टता नही होती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को दूसरों को कष्ट पहुंचाने, कटु वचन कहने एवं उपहास करने में आनन्द आता है। अपने दोषों को छिपाने की एवं चोरी करने की इनकी प्रवृत्ति होती है। लोगों के काम में बाधा डालना तथा अपने झूठे अहं (Ego) का प्रदर्शन करना, जैसा वह है उससे कई गुना बढ़ा–चढ़ा कर अपने आप को दिखाना इनका स्वभाव होता है। इनमें मिथ्या दृष्टि (निषेधात्मक भाव) तथा मात्सर्य भावधारा की प्रधानता होती है। इस प्रकार की लेश्या वाले लोगों में काम, क्रोध, मद, लोभ आदि की प्रवृत्तियाँ होती है। ये अस्थिर स्वभाव वाले होते है इनमें धार्मिक प्रवृत्ति बहुत कम होती है तथा 'स्व' (Self) का स्तर निम्न होता है। इनकी मानसिक स्थितियां बदलती रहती है। ये अविश्वासी होते हैं तथा तथ्यों की सत्यता जाने बिना ही ये गलत क्रिया कर बैठते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसे व्यक्तियों के व्यक्तित्व में इदं (Id) की प्रधानता होती है। परन्तु अहं (Ego) का स्तर भी कुछ बढ़ जाता है। इस प्रकार की लेश्या वाले व्यक्ति में पराहम् (Super-ego) का उदय होता है जिस कारण ये कभी–कभी अच्छा व्यवहार भी करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.6.4 तेजो लेश्या

तेजो लेश्या वाले व्यक्ति के आभामंडल में लाल वर्ण की प्रधानता रहती है। इनका व्यक्तित्व काफी विकसित होता है। इनका व्यवहार नम्र एवं स्पष्ट होता है। ये स्थिर मानसिक स्थिति वाले होते हैं तथा इनकी मानसिक स्थितियां जल्दी-जल्दी नहीं बदलतीं। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति दूसरों के कार्य में बाधा नहीं डालते और समाज संरचना में इनका पूरा योगदान रहता है। ये धर्म में दृढ़ आस्था रखने वाले एवं धार्मिक होते हैं और मुक्ति की गवेषणा करने वाले होते है। ये आत्म-सिद्धि प्राप्त करने वाले होते है। ऐसे व्यक्ति पापकर्मों से, हिंसा से, प्रमाद से, यश लोलुपता से, सुख की गवेषणा से दूर रहते है। काम, क्रोध, मद, लोभ एवं मात्सर्य कर्म पर इनका पूर्ण नियंत्रण रहता है। अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखने में ये सक्षम होते हैं। ये जन हितैषी भी होते हैं। समाज के उत्थान में ऐसी लेश्या वाले व्यक्तियों का पूर्ण योगदान होता है। जन सेवा इनका मुख्य उद्देश्य होता है। जन कल्याण हेतु ये कई योजनाएं बनाते हैं और उनको क्रियान्वित करते है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में अहं (Ego) और पराहम् (Super-ego) की प्रधानता रहती है तथा इदं (Id) पर उनका नियंत्रण होता है। अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छा की पूर्ति करने में ये समाज एवं परिवार के नियमों एवं नैतिकता का पूरा ध्यान रखते है।

4.6.5 पद्म लेश्या

आभामंडल में पीले रंग की प्रधानता वाले लोग पद्म लेश्या के वर्ग में आते है। ऐसी लेश्या वाले व्यक्ति शांत, गंभीर और अल्प भाषी होते हैं। ये व्यक्ति अल्प क्रोधी तथा मान, माया और लोभ से दूर रहने वाले होते हैं। ये 'स्व' (Self) का परिमार्जन करने वाले और आत्मस्थित होते हैं। जितेन्द्रिय होने के कारण ऐसे व्यक्ति अपनी इंद्रियों पर पूर्णतया नियंत्रण रखते हैं। इनका आचरण शुद्ध, सम्पन्न होता है और ये आत्मज्ञानी होते हैं। प्राय: ये धर्मस्थ रहते हैं और मुक्ति की आकांक्षा करते हैं।

अपनी शारीरिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को ये आवश्यकतानुसार साधारण रूप से पूर्ण करते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी को कष्ट नहीं पहुंचाते और न ही पीड़ित करते है। इनका व्यक्तित्व बड़ा संतुलित रहता है। मानसिक क्षमताएं भी काफी उन्नत होती हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस प्रकार की लेश्या वाले व्यक्तियों में अहं (Ego) पूर्णरूप से विकसित हो जाता है तथा पराहम् (Super -ego) भी बहुत विकसित रहता है। ऐसे व्यक्तियों में इदं (Id), की शक्ति कमजोर हो जाती है जिससे अनावश्यक इच्छाएं, कामनाएं आदि की उत्पत्ति होती है।

4.6.6 शुक्ल लेश्या

शुक्ल लेश्या वाले व्यक्ति के आभामंडल में श्वेत वर्ण की प्रधानता रहती है। ऐसे व्यक्ति का चित्त शांत होता है। ये आत्मज्ञानी एवं 'स्व' (Self) को जानने वाले होते हैं। ये जितेन्द्रिय होते हैं अर्थात् सभी इंद्रियों पर इनका नियंत्रण और पूर्ण अधिकार हो जाता है। मन और वाणी पर भी इनका पूर्ण संयम होता है। ये व्यक्ति शुद्ध आचरण से सम्पन्न एवं ध्यानावस्थित होते है।

इनकी मानसिक स्थिति स्थिर एवं दृढ़ होती है। इनमें विलक्षण शारीरिक और मानसिक गुण होते है तथा ये व्यक्ति पराशक्तियों से ओतप्रोत होते हैं। इनकी पराशक्तियों का उपयोग भी आत्म-कल्याण एवं जन-कल्याण हेतु होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इनमें अहम् (Ego) तथा पराहम् (Super-ego) पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है तथा इदं (Id) लुप्त हो जाता है।

उपरोक्त लेश्याओं के बारे में आगम साहित्य में भी काफी कुछ वर्णन किया गया है। इनके रंगों के बारे में आगम साहित्य में बताया गया है कि कृष्ण लेश्या का वर्ण काला जैसा कि अंजन (सुरमा), कोयल, काला अशोक, काला कनेर की तरह होता है। नील लेश्या का वर्ण नीला होता है, ये नीलापन पपीहा, तोते के पंख, कबूतर व मोर की ग्रीवा (गर्दन) जैसा होता है। कापोत लेश्या का वर्ण कापोती काला व लाल होता है। जैसे तांबा या तांबे के कटोरे का रंग होता है। तेजो लेश्या का वर्ण रक्त वर्ण होता है जैसा कि मनुष्य के रक्त का रंग, प्रवाल, मूंगा आदि का रंग। पद्म लेश्या का वर्ण पीला होता है यह पीला वर्ण हल्दी, पीत कनेर, स्वर्ण की सीप या उत्तम स्वर्ण जैसा होता है। जबकि शुक्ल लेश्या का वर्ण श्वेत होता है। यह श्वेत रंग शरद पूर्णिमा के चंद्रमा, दूध, दही, श्वेत कनेर से भी ज्यादा श्वेत होता है।

4.7 व्यक्तित्व विकास (Personality Development)

वर्तमान में हर व्यक्ति संघर्षमय जीवन जी रहा है। आगे बढ़ने की होड़ में व्यक्ति पिसता जा रहा है। कई क्षेत्रों में विशेष कर शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तित्व विकास की बात तो की जाती है परन्तु व्यक्तित्व विकास किस तरह किया जाये यह एक समस्या बनी हुई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। शिक्षण संस्थाओं (Educational Institutes) तथा प्रबंधन संस्थाओं (Management Institutes) में व्यक्तित्व विकास के लिए कई कार्यक्रम चलाए जाते हैं। परन्तु इनसे व्यक्तित्व विकास कितना होता है ये हम सभी लोग जानते हैं। व्यक्तित्व विकास में क्या उन गुणों की प्रधानता होती हैं जिनसे स्वयं का और समाज में रहने वाले अन्य लोगों का कल्याण हो सके? वर्तमान व्यक्तित्व विकास क्रमों ने व्यक्ति को भौतिकवादी एवं अर्थवादी बना दिया है। संतुलित व्यक्तित्व विकास नहीं होने के कारण आज समाज में और व्यक्ति में असंतुलन बढ़ता जा रहा है। कई मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व विकास के लिए अवधारणाएं बनाई। परन्तु अधिकांश अवधारणाएं भौतिक स्तर पर ही व्यक्तित्व विकास के लिए सीमित रह गई।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने व्यक्तित्व विकास के लिए लेश्या ध्यान की अवधारणा प्रस्तुत की। इस अवधारणा के अनुसार व्यक्ति नियमित रूप से 10-15 मिनट के समय तक कुछ विशेष रंगों का ध्यान करे तो उसके शरीर की शारीरिक लेश्याओं (आभामंडल) में विशेष परिवर्तन आता है जो उसके व्यक्तित्व विकास हेतु महत्वपूर्ण है। जैसा कि पूर्व में यह बताया जा चुका है कि व्यक्ति की तीन प्रथम लेश्याएं व्यक्ति के असंतुलित व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती है। प्रथम तीन लेश्याओं में क्षुद्र या पाशविक गुणों की प्रधानता रहती है जिसके कारण व्यक्ति क्षुद्र या पाशविक व्यवहार करने को प्रवृत्त होता है। चोरी, हत्याएं, उग्रवादिता, दूसरों को जानबूझ कर कष्ट पहुंचाना, दूसरों के द्रव्य का हरण कर लेना आदि कर्म इन क्षुद्र लेश्याओं की प्रधानता का ही परिणाम है। विशेष रंगों का ध्यान करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में रूपान्तरण होता है और वह उच्च श्रेणी की लेश्याओं को प्राप्त कर लेता है और उससे उसके व्यक्तित्व में संतुलन बढ़ता है और उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। रंगों पर ध्यान करने की विधि को आचार्यश्री ने 'लेश्या ध्यान' का नाम दिया है। आचार्यश्री के अनुसार व्यक्ति के शरीर में तेरह (13) चैतन्य केंद्र होते हैं, ये हैं—

1. शक्ति केंद्र	2. स्वास्थ्य केंद्र	3. तैजस केंद्र	4. आनंद केंद्र	
5. विशुद्धि केंद्र	6. ब्रह्म केंद्र	7. प्राण केंद्र	8. चाक्षुष केंद्र	
9. अप्रमाद केंद्र	10. दर्शन केंद्र	11. ज्योति केंद्र	12. शांति केंद्र	13. ज्ञान केन्द्र

उपरोक्त वर्णित विभिन्न चैतन्य केंद्रों पर विभिन्न रंगों का ध्यान किया जाता है जैसे आनंद केंद्र पर हरे रंग का ध्यान करने से भावधारा की निर्मलता बढ़ती है। विशुद्धि केंद्र पर नीले रंग का ध्यान करने से काम वासनाओं पर नियंत्रण बढ़ता है। दर्शन केंद्र पर अरुण रंग का ध्यान करने से अन्तर्दृष्टि का विकास और आनंद की प्राप्ति होती हैं। ज्योति केंद्र पर चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करने से परम् शांति की प्राप्ति होती है तथा आवेश, आवेग, क्रोध और उत्तेजनाओं की शांति होती है। ज्ञान केंद्र पर पीले रंग का ध्यान करने से ज्ञान तंतुओं की सक्रियता में वृद्धि होती है और व्यक्ति ज्ञानवान बनता है।

व्यक्ति के विकास तथा व्यक्तित्व रूपान्तरण में रुग्ण (असंतुलित) व्यक्तित्व को स्वस्थ बनाया जाता है, अर्थात् व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिष्कार किया जाता है, तथा उसकी भावधारा को परिवर्तित कर निर्मल बनाया जाता है। ये दोनों कार्य लेश्या-ध्यान के द्वारा सरलता पूर्वक किये जा सकते हैं। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि आभामंडल या लेश्या, भावधारा को प्रभावित करती है तथा भावधारा आभामंडल को। भावधारा एवं आभामंडल एक दूसरे के पूरक हैं। अत: आवश्यकतानुसार विशेष चैतन्य केन्द्र पर विशेष रंग का ध्यान कर भावधारा को बदला जा सकता है तथा भावधारा से स्वत: ही आभामंडल या लेश्या बदल जाती है।

यहां व्यक्तित्व के विकास का तात्पर्य क्षुद्र लेश्याओं से ऊपर उठकर उच्च और उच्चतम (तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या) को प्राप्त कर लेना है। इससे व्यक्ति का बौद्धिक और मानसिक व्यक्तित्व दोनों संतुलित हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शांति चाहता है और शांत रहना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति सतत् सुख प्राप्त करना चाहता है और आनन्द चाहता है परन्तु इन सभी वस्तुओं की खोज वह भौतिक जगत में करता है और शांति की जगह उसको अशांति प्राप्त होती है, सुख की जगह दु:ख और आनन्द के स्थान पर उसे संघर्ष करना पड़ता है। इस तरह उसका व्यक्तित्व बिखर जाता है। उसके व्यक्तित्व की क्रियाओं और गुणों में सामंजस्य नही रहता है। इस स्थिति में व्यक्ति में निम्न कोटि की लेश्याओं (कृष्ण लेश्या, नील लेश्या एवं कापोत लेश्या) की प्रधानता हो जाती है। व्यक्तित्व के विकास के लिए अर्थात् सुख, शांति व आनन्द प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को इन निम्न कोटि की लेश्याओं से ऊपर उठना पड़ता। इसके लिए लेश्या ध्यान एक सशक्त तकनीक (Technology) है। नियमित लेश्या ध्यान से व्यक्ति अपनी निम्न लेश्याओं से ऊपर उठकर अर्थात ऊर्ध्वगामी होकर, अपना विकास कर उच्च से उच्चतम श्रेणी की लेश्याओं को या आभामंडल को प्राप्त कर सकता है। जैसा कि चित्र एक में दर्शाया गया है। व्यक्तियों मे लेश्याओं के विभिन्न स्तरों एवं भावधाराओं को निम्न दृष्टांत से समझा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

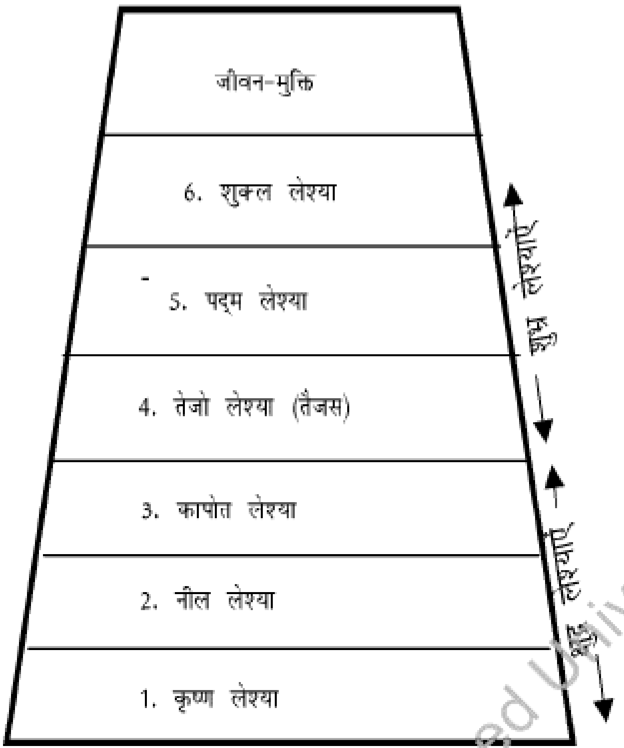

चित्र : 1 व्यक्तित्व विकास में लेश्याक्रम

छः मित्र एक जंगल से गुजर रहे थे। रास्ते में उन्होंने फलों से लदे एक वृक्ष को देखा और सभी मित्रों को फल खाने की इच्छा हुई। वे सभी वृक्ष के समीप पहुँचे और फल प्राप्त करने की युक्ति खोजने लगे। प्रथम मित्र ने अपना विचार प्रस्तुत किया कि हमें जड़ सहित सम्पूर्ण को काटना चाहिए, दूसरे ने कहा कि हमें सम्पूर्ण वृक्ष की टहनियाँ काटनी चाहिए। तीसरे मित्र का मत था कि वृक्ष की शाखाओं प्रशाखाओं को काटना चाहिए। चौथे मित्र ने कहा कि हमें फलों से लदी शाखाएं ही काटनी चाहिएं। पाँचवें ने कहा कि हमें वृक्ष पर चढ़कर केवल पके फलों को ही तोड़ना चाहिए। छठे मित्र ने अपना सुझाव दिया कि हम वृक्ष को किसी प्रकार की क्षति क्यों पहुंचाएं? खाने के लिए भूमि नर पर्याप्त फल गिरे हुए हैं, हम इनको ही खाकर आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

उपरोक्त दृष्टांत में पहले मित्र से छठे मित्र के मध्य उनकी मनोदशाओं का ज्ञान होता है। प्रथम मित्र में स्वार्थ के साथ क्रूरता, हिंसा एवं विनाश की भावना निहित है। परन्तु दूसरे मित्र में उससे कम, तीसरे में उससे भी कम। इसी तरह छठे व्यक्ति में क्रूरता एवं हिंसा की भावना का अभाव है।

उपरोक्त दृष्टांत में पहले व्यक्ति में कृष्ण लेश्या की प्रधानता, दूसरे में नील लेश्या की प्रधानता, तीसरे में कापोल लेश्या की प्रधानता, चौथे में तेजो लेश्या की प्रधानता, पाँचवें में पदम् लेश्या की प्रधानता तथा छठे में शुक्ल लेश्या की प्रधानता झलकती है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का व्यक्तित्व विकास या व्यक्तित्व रूपान्तरण का लेश्या सिद्धान्त सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मास्लो के मानवीय सिद्धान्त से पुष्ट होता है। मास्लो द्वारा प्रस्तुत आवश्यकताओं के सोपान सिद्धान्त में उन्होंने व्यक्ति की क्षुद्र आवश्यकताओं के सोपान से ऊपर उठकर व्यक्ति के उच्च स्तर के सोपान तक, जहाँ आत्मज्ञान, भावातीत एवं समाधिस्थ होने की स्थिति होती है, पहुँचने की बात कही है। उनके अनुसार व्यक्ति का लक्ष्य आत्मसात् करने का होना चाहिए। जब व्यक्ति आत्मसात या आत्मसिद्धि की ओर बढ़ता है तभी वह अपने व्यक्तित्व का विकास सही अर्थों में कर पाता है।

आचार्यश्री के सिद्धान्त के अनुसार भी जब व्यक्ति क्षुद्र लेश्याओं से ऊपर उठकर, उच्च लेश्याओं की ओर अपनी प्रगति करता है तब वह वास्तव में अपने व्यक्तित्व का विकास या रूपान्तरण करता है। आज के मनोवैज्ञानिक विधेयात्मक मनोविज्ञान की बात करते हैं और जनसाधारण में व्यक्तित्व परिवर्तन लाने के लिए प्रेक्षाध्यान को लेश्याध्यान जैसी तकनीकों पर आस लगाए बैठे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. लेश्या से आप क्या समझते हैं?
2. आभामंडल एवं भामंडल से आपका क्या तात्पर्य है?
3. 'रंगों का मनोविज्ञान' पर टिप्पणी लिखें।
4. क्षुद्र लेश्याओं से आप क्या समझते हैं?
5. लेश्याध्यान द्वारा व्यक्तित्व विकास किस तरह सम्भव है?
6. आचार्यश्री महाप्रज्ञ के व्यक्तित्व सिद्धान्त के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–2 : व्यक्तितत्व सिद्धांत

इकाई–5 : जी. डब्ल्यू आलपोर्ट का सिद्धान्त

संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 आलपोर्ट की व्यक्तित्व की परिभाषा
5.2.1 गत्यात्मक संगठन
5.2.2 मनौदैहिक व्यवस्थाएं
5.2.3 निर्धारण
5.2.4 चरित्र
5.2.5 व्यवहार और विचार
5.3 व्यक्तित्व की संरचना
5.3.1 शील गुण या विशेषक
5.3.2 शील गुणों के प्रकार
5.4 व्यक्तित्व का विकास
5.4.1 व्यक्तित्व और अभिप्रेरणा
5.4.2 प्रकार्यात्मक स्वायत्ता
5.5 परिपक्व या स्वस्थ व्यक्तित्व की विशेषताएं
5.5.1 स्व का विस्तारण
5.5.2 आत्म–वस्तुनिष्ठ
5.5.3 उत्तम सामाजिक समायोजन
5.5.4 संवेगात्मक रूप से परिपक्व
5.5.5 यथार्थवादि प्रत्यक्षीकरण
5.5.6 जीवन का दर्शन
5.6 मूल्य
5.6.1 सैद्धान्तिक
5.6.2 आर्थिक
5.6.3 सौन्दर्यप्रिय
5.6.4 सामाजिक
5.6.5 राजनैतिक
5.6.6 धार्मिक
5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.8 संदर्भ ग्रन्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्रो. गार्डन डब्ल्यू आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त के क्षेत्र में विशेष एवं महत्त्वपूर्ण योगदान है। आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को समझने के लिए ''व्यक्तित्व का शील गुण सिद्धान्त'' प्रतिपादित किया।

प्रो. आलपोर्ट का जन्म 11 नवम्बर सन् 1897 में संयुक्त राज्य अमेरिका के इंडियाना स्थित मान्तेजुआ नामक स्थान में हुआ। उन्होंने अमेरिका के प्रसिद्ध हार्वर्ड विश्वविद्यालय में दर्शन एवं अर्थशास्त्र का विशेष अध्ययन कर 1919 में स्नातक

उपाधि प्राप्त की। प्रो. आलपोर्ट ने 'व्यक्तित्व' पर कई लेख, शोधकार्यों एवं पुस्तकों का प्रकाशन किया। युंग की तरह आलपोर्ट भी भारतीय दर्शन और चिंतन से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने भारतीय दर्शन के प्रमुख ग्रंथों जैसे-वेद, उपनिषद् और पुराणों का गहन अध्ययन किया। सत्तर वर्ष की आयु में सन् 1967 में उनका निधन हुआ।

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व पर कई ग्रंथों की रचना की, इनमें से प्रमुख ग्रंथ निम्न हैं-

1. पर्सनेलिटी : साइकोलोजिकल इन्टर्प्रिटेशन (1936)
   (Personality : Psychological Interpretation)
2. दि साइकोलोजी आर्फ र्‌यूमर (1947)
   (The Psychology of Rumour)
3. दि इंडिविजुअल एंड हिज रिलीजन (1950)
   (The Individual and his Religion)
4. दि नेचर ऑफ पर्सनलिटी-सलेक्टेड पेपर्स (1950)
   (The Nature of Personality : Selected papers)
5. दि नेचर ऑफ प्रिजुडिस (1954)
   (The Nature of Prejudice)
6. बिकमिंग बेसिक कंसिडरेसन फॉर ए साइकालॉजी ऑफ पर्सनलिटी (1954)
   (Becoming Basic Consideration for a Psychology of Personality)
7. पर्सनालिटी एंड सोशल एनकाउन्टर (1960)
   (Personality and Social Encounter)
8. पैटर्न एंड ग्रोथ इन पर्सनलिटी
   (Pettern and Growth in Personality)

आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त मानव व्यवहार की व्याख्या हेतु मानवतावादी तथा व्यक्तित्ववादी उपागमों का सम्मिश्रण है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में अभिवृद्धि, क्षमता तथा धर्मदर्शन इत्यादि की व्याख्या करते हुए इनको सम्मिलित किया है।

5.1 उद्देश्य (Objectives)

1. आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धांत के बारे में जान सकेगें।
2. गत्यात्मक व्यक्तित्व के बारे में जान सकेगें।
3. व्यक्तित्व के शील गुणों को समझ सकेगें।
4. स्वस्थ व्यक्तितत्व की विशेषताओं के बारे में जान सकेगें।
5. व्यक्तित्व के मूल्यों को समझ सकेगें।

5.2 आलपोर्ट की व्यक्तित्व की परिभाषा (Allport's Definition of Personality)

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को सक्रिय माना है। सर्वप्रथम आलपोर्ट व्यक्तित्व की परिभाषा अपनी पुस्तक "Personality" (1937) में दी जो आज भी मान्य एवं व्यावहारिक है। इनकी इस परिभाषा के अनुसार "व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोशारीरिक पद्धतियों का वह आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है जो पर्यावरण में उसके अनन्य समायोजन को निर्धारित करता है।"[1]

इस परिभाषा में आलपोर्ट ने दो महत्त्वपूर्ण बातें प्रस्तुत की हैं—1. गत्यात्मक संगठन व 2. मनोशारीरिक पद्धति। उनके अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व में एक प्रकार का संगठन पाया जाता है जो उसकी क्रियाओं और व्यवहारों में एकत्व स्थापित करता है तथा निरन्तर उसे अपने 'स्व' के विकास एवं परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील रखता है। मनोशारीरिक पद्धतियों से उनका तात्पर्य मन और शरीर दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं। एक दूसरे के पूरक हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अनन्य समायोजन से आलपोर्ट का यह तात्पर्य है कि प्रत्येक समय और स्थल में एक प्रकार की नवीनता पाई जाती है और वैयक्तिक भिन्नताएं व्यक्ति में समायोजन के समय अनन्यता ला देती है। चूंकि व्यक्ति अपना समायोजन पर्यावरण में करता है और पर्यावरण में सभी स्थितियां समान नहीं होती। पर्यावरण में कभी सुविधाएं उपलब्ध रहती हैं तो कभी कठिनाई उपस्थित होती है। ऐसी परिस्थितियों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में भी व्यक्ति अपना संतुलन बनाने का प्रयत्न करता है। आलपोर्ट के अनुसार उसी व्यक्ति का व्यक्तित्व अच्छा माना जाएगा जो सभी परिस्थितियों में अपने संतुलन को बनाये रखता है। अर्थात् जिस व्यक्ति में अनन्य समायोजन करने की क्षमता होती है उसका ही व्यक्तित्व सुगठित एवं परिपक्व होता है।

अपनी उपरोक्त परिभाषा में 1960 में आलपोर्ट ने कुछ संशोधन किया। अपनी पुस्तक 'पेटर्न एंड ग्रोथ इन पर्सनलिटी' में नई परिभाषा को परिभाषित करते हुए लिखा ''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है जो उसके चरित्र, व्यवहार और विचार का निर्धारण करते हैं।

आलपोर्ट की इस परिभाषा को समझने के लिए उसके द्वारा उपयोग किये गए प्रत्ययों को समझना अत्यावश्यक है। तभी उसके सिद्धान्तों को समझा जा सकता है। अपनी परिभाषा में आलपोर्ट ने पांच प्रत्यय प्रस्तुत किए हैं।

इन पांचों प्रत्ययों का आलपोर्ट ने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया—

5.2.1 गत्यात्मक संगठन (Dynamic Organisation)

इसके अंतर्गत उन्होंने व्यक्ति में एक ऐसी मानसिक क्रिया का उल्लेख किया जो व्यक्ति के विभिन्न तत्त्वों को संगठित करती है परंतु फिर भी व्यक्ति एक स्थिर इकाई नहीं होता। इसी विशेषता के कारण मनुष्य निरंतर अपने स्व के विकास एवं विकासशील परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील रहता है।

5.2.2 मनोदैहिक व्यवस्थाएं (Psychophysical Systems)

इसके अंतर्गत उन्होंने मन और शरीर के संबंध को महत्त्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार व्यक्तित्व न तो पूर्णत: मानसिक व्यवस्था की देन है और न ही पूर्णत: शारीरिक गुणों की। अत: मन और शरीर दोनों की एकरूपता ही व्यक्ति में भावनाएं, आदतें, अभिवृत्तियां, विचार आदि क्रियाओं का निर्माण करती है।

5.2.3 निर्धारण (Determine)

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व कुछ निर्धारणात्मक प्रवृत्तियों से बना है अर्थात् व्यक्ति में कुछ विशेष प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं जो प्रासंगिक उद्दीपक के उत्पन्न होने पर व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करती है।

5.2.4 चरित्र (Character)

आलपोर्ट अपनी परिभाषा में चरित्र की मानवीय विशिष्टता के चरम महत्त्व को निरूपित करता है। अर्थात् व्यक्ति जो व्यवहार करता है वह उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का परिणाम है।

5.2.5 व्यवहार और विचार (Behaviour and Thought)

आलपोर्ट के अनुसार व्यवहार और विचार वह आवरण है जो व्यक्ति के कार्यों की व्याख्या करता है। व्यक्ति के कार्यकलापों द्वारा ही उसके व्यक्तित्व को समझा जा सकता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को शील गुणों, चरित्र तथा स्वभाव का संकलन माना है और व्यक्तित्व की व्याख्या में इनका उपयोग होता है। इन्होंने व्यक्तित्व में व्यक्ति के शीलगुणों, चरित्र, स्वभाव, मूल्यों, आदतों आदि प्रत्ययों का उपयोग किया है। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति के चरित्र से व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है और उसके व्यक्तित्व से चरित्र का, अत: दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति में उत्तम स्तर के नैतिक गुण होते हैं और वह समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है।

आलपोर्ट के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष प्रकार की विशिष्टताएं पाई जाती हैं जिन्हें शील गुण कहते हैं। उन्होंने शील गुण को एक मानसिक संरचना माना है। उनके अनुसार शील गुण मनोस्नायुवीय क्रियाओं से निर्मित होते हैं और इनकी क्रियाशीलता विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों की क्षमता एवं कार्य प्रणाली पर निर्भर करती है।

आलपोर्ट ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में शील गुणों के अतिरिक्त व्यक्तित्व का विकास, प्रकार्यात्मक स्वायत्ता, स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण तथा मूल्यों पर प्रकाश डाला है।

5.3 व्यक्तित्व संरचना (Personality Structure)

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व संरचना में शील गुणों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन शील गुणों के बारे में हम नीचे व्याख्या करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3.1 शील गुण या विशेषक

जैसा कि पूर्व में शील गुणों के बारे में हमने थोड़ा सा स्पष्ट किया कि शील गुण व्यक्ति में कुछ विशिष्ट मानसिक संरचनाएं हैं। आलपोर्ट ने शील गुणों को परिभाषित किया है जिनका अनुवाद प्रो. डॉ. सीताराम जायसवाल के शब्दों में इस प्रकार है—''शील गुण सामान्य तथा व्यक्ति विशेष की तंत्रिका मानसिक पद्धति में केन्द्रित होते हैं। उसमें यह क्षमता होती है कि वह विभिन्न उद्दीपनों से संबंधित कार्यों में समानता बनाये रखे और अनुकूलन तथा अभिव्यक्ति संबंधी व्यवहारों का आरम्भ तथा निरन्तरता एवं समरूपता के अनुरूप निर्देशन कर सके।''

शील गुणों के बारे में आलपोर्ट ने कुछ विशेष बातें बताई—

1. प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में शील गुणों का होना आवश्यक है।
2. शील गुण दिखने वाले नहीं हैं अपितु ये मनोदैहिक रचना है।
3. इनको प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता परन्तु व्यवहार की निरन्तरता से इनका अनुमान लगाया जा सकता है।
4. मनुष्य के व्यवहारों की शैली में जो निरन्तरता पाई जाती है वह शील गुणों पर ही आधारित होती है।
5. शील गुण पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं होते। व्यक्ति के व्यक्तित्व में जो भी शील गुण पाये जाते हैं उनका एक दूसरे से संबंध होता है।
6. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में शील गुणों की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है।

5.3.2 शील गुणों के प्रकार (Types of Traits)

आलपोर्ट ने तीन प्रकार के शील गुण माने हैं-

5.3.2.1 मूलभूत शील गुण (Cordinal Traits)- ये वे शील गुण हैं जो प्राय: सभी व्यक्तियों में पाये जाते हैं। इनका अर्थ ऐतिहासिक चरित्रों के आधार पर भी जाना जा सकता है। ये व्यक्ति के व्यक्तित्व के मूलभूत गुण होते हैं। इन शील गुणों से व्यक्ति अपना जीवन संगठित करता है। इस प्रकार के शील गुणों के उदाहरण हैं-शक्ति, उपलब्धियां तथा दूसरों के लिए त्याग आदि।

5.3.2.2 केन्द्रीय शील गुण (Central Traits)- केन्द्रीय शील गुण व्यक्ति की वे प्रवृत्तियां हैं जिन्हें लोग देखकर ही पहचान सकते हैं। जैसे व्यक्ति की बहिर्गामिता, बहिर्गामी मनोभाव, उसकी सामाजिकता, जीवन्तता, ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि।

5.3.2.3 गौण शील गुण (Secondary Traits)- इस प्रकार के शील गुणों में विशिष्ट आदतें, जीवन शैली, खान-पान का तरीका, अभिवृत्तियां, प्राथमिकताएं आदि आते हैं। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति प्राय: इन्हीं शील गुणों के आधार पर दूसरे व्यक्तियों से अलग पहचान बनाये रखता है।

उपरोक्त तीनों प्रकार के शील गुण व्यक्तित्व की संरचना करते हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करते हैं। आलपोर्ट ने व्यक्ति के व्यवहार के लिए पर्यावरण दशाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व संरचना को उत्तरदायी माना है। इसके लिए उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया कि एक ही आग जहां मक्खन को पिघला देती है वहीं अंडे को कठोर बना देती है। यहां पर आग एक ही प्रकार का उद्दीपक है परन्तु उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न है। इसी तरह एक ही वातावरण में रहते हुए लोग भिन्न-भिन्न व्यवहार करते हैं जिसका कारण उनकी व्यक्तित्व संरचना है।

उपरोक्त शील गुणों के अतिरिक्त आलपोर्ट ने दो और शील गुणों की चर्चा की है-वैयक्तिक एवं सामान्य शील गुण। एक समाज या एक संस्कृति के लोगों में ये गुण सामान्य होते हैं।

उदाहरण के लिए हम किसी समाज के किन्हीं व्यक्तियों को विनम्र या किन्हीं को आक्रामक कह सकते हैं। इस प्रकार के शील गुणों के अस्तित्व के पीछे यह अवधारणा है कि समाज की संस्कृति विशेष होती है तथा सामाजिक प्रभाव भी विशेष होता है। इनमें समायोजन स्थापित करने के लिए व्यक्ति सामान्य युक्तियों का आधार लेते हैं। इस प्रकार के शील गुणों के उदाहरणों में सामाजिक अभिवृत्तियां, चिंता, सामाजिक रीति-रिवाज, परम्पराएं, मूल्य आदि आते हैं।

5.4 व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व विकास की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम व्यक्ति के जन्म और बाल्यकाल की ओर ध्यान दिया जाए। उनके अनुसार व्यक्ति का जीवन शिशुकाल से ही आनुवांशिकता तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रतिवर्त आदि क्रियाओं से प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त उसके जीवन पर आदिम अन्तर्नोदों का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। बालक के प्रारंभिक काल में उसको शारीरिक स्वभाव संबंधी सम्भावनाएं प्राप्त होती हैं जिनकी पूर्ति वांछनीय पर्यावरण में होती है। ज्यों-ज्यों उसकी आयु बढ़ती है त्यों-त्यों उसके कार्यों में और व्यवहार में विकास होता है और परिवर्तन भी आता है। शिशुकाल में व्यक्ति कई क्रियाएं अस्पष्ट रूप में करता है जिसका उसको स्वयं को इतना ज्ञान नहीं होता, परन्तु इन क्रियाओं के साथ जुड़े सुख-दु:ख के अनुभवों से वह निश्चित व स्पष्ट क्रियाएं करना सीख जाता है। अपने शारीरिक सुख-दु:ख एवं तनावों का समायोजन करने के लिए ही वह अपने व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना सीख लेता है।

जब बालक कुछ बड़ा होता है तब माता-पिता उसका सामाजीकरण करने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास में पुरस्कार एवं दण्ड का प्रयोग भी करते हैं। इस क्रिया में अधिकतर पुरस्कार अथवा सुखदायक व्यवहार द्वारा ही बालक के व्यक्तित्व को वांछित दिशा में विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है। इन प्रयासों के उपरान्त भी यदि बालक के व्यक्तित्व का विकास वांछित दिशा में नहीं हो रहा है तो उसको दंडित किया जाता है।

आलपोर्ट का यह मानना है कि शैशव से बाल्यकाल की अवस्था में व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया में विभेदीकरण, एकीकरण, परिपक्वता, अनुकरण, अधिगम, प्रकार्यात्मक स्वायत्ता तथा 'स्व' का विस्तार आदि का विकास प्रारंभ हो जाता है। ये सारी क्रियाएं प्रौढ़ जीवन तक चलती रहती है। व्यक्तित्व विकास में आलपोर्ट ने अधिगम की भूमिका को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार अधिगम व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारक है जिसकी सहायता से व्यक्ति अपने प्रेरकों को विकसित करके अपने अभिप्रेरण को एक विशेष रूप प्रदान करता है। व्यक्ति अपने जीवन में सीखता रहता है और अनुभवों के आधार पर अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के विकास में संज्ञानात्मक एवं प्रत्यक्ष ज्ञान सम्बंधी प्रक्रियाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इसके लिए उन्होंने नई संकल्पना प्रस्तुत की जिसको उन्होंने 'प्रज्ञान्' अथवा 'प्रोसेप्ट' कहा। प्रोसेप्ट इन्द्रिय जन्य प्रक्रियाओं की ओर संकेत करता है जिसका संबंध भूत, वर्तमान और भविष्य के साथ होते हुए अन्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से भी है। जैसे कल्पना, चिन्तन, स्मरण आदि 'प्रोसेप्ट' की संकल्पना में आते हैं। आलपोर्ट के अनुसार प्रोसेप्ट अथवा प्रज्ञान संज्ञानात्मक एवं भावात्मक प्रक्रियाओं का एक समग्र रूप है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को एक विशेष प्रकार की अनन्यता प्रदान करता है।

5.4.1 व्यक्तित्व और अभिप्रेरणा (Personality and Motivation)

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व विकास में अभिप्रेरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार व्यक्तित्व और अभिप्रेरण में अटूट संबंध है। अभिप्रेरण संबंधी जो कारक है वे एक प्रकार से व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारक भी हैं। व्यक्तित्व की गत्यात्मकता या सक्रियता बनाए रखने के लिए भी अभिप्रेरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बिना अभिप्रेरण व्यक्तित्व में सक्रियता नहीं बन पाती। आलपोर्ट के अनुसार अभिप्रेरण सम्बंधी कुछ मुख्य प्रेरक पाए जाते हैं जो उसे विशेष कार्य के लिए अभिप्रेरित करते हैं। उनके अनुसार अभिप्रेरण को समझने के लिए व्यक्ति के सम-सामयिक प्रेरकों को समझना आवश्यक है। इन प्रेरकों में भिन्नता पाई जा सकती है। इन्हीं प्रेरकों के कारण भी वैयक्तिक भिन्नताएं पाई जाती हैं। अभिप्रेरण के बारे में आलपोर्ट ने एक महत्त्वपूर्ण बात यह कही कि अभिप्रेरण की सभी इकाईयां व्यक्तित्व की भी इकाईयां हैं परन्तु व्यक्तित्व की सभी इकाईयां समान रूप से अभिप्रेरण की इकाईयां नहीं होती। अत: इस बात से आलपोर्ट यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि व्यक्तित्व अभिप्रेरण से कहीं अधिक व्यापक है और दोनों का महत्त्व समान नहीं है। उन्होंने कहा कि अभिप्रेरक व्यक्ति का अभिन्न अंग है परन्तु इसका पर्याय नहीं।

आलपोर्ट के अनुसार प्रेरकों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। शिशु अवस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक प्रेरकों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। बच्चों के प्रेरक, प्रौढ़ों के प्रेरकों से भिन्न होते हैं, जैसे बच्चों के लिए खिलौना एक महत्त्वपूर्ण प्रेरक है जबकि प्रौढ़ व्यक्ति के लिए इस प्रेरक का महत्त्व नहीं है। प्रौढ़ व्यक्ति के लिए धन सम्पदा महत्त्वपूर्ण प्रेरक है जबकि बच्चे के लिए नहीं। आलपोर्ट ने कुछ प्रेरकों को सामान्य तो कुछ प्रेरकों को असामान्य बताया है। भावात्मक दृष्टि से असंतुलित लोगों के प्रेरक असामान्य होते हैं।

ज्यों-ज्यों व्यक्ति प्रौढ़ एवं परिपक्व होता है त्यों-त्यों उस्के अभिप्रेरकों में परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों के मूल में व्यक्ति की यह प्रबल इच्छा होती है कि अपनी वर्तमान स्थिति में पर्याप्त सुधार कर सके और अपनी स्थिति को उत्तम बना सके। व्यक्ति की प्रबल इच्छा सम्भवन (Becoming) की भी होती है। व्यक्ति कुछ बनना चाहता है। वह अपनी स्थिति को और अपने को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनाना चाहता है। परन्तु जो व्यक्ति असामान्य होते हैं उनमें इस प्रकार के अभिप्रेरण नहीं पाये जाते हैं और वे ऐसे कार्य करते हैं जो उनके व्यक्तित्व के समायोजन में बाधक होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.4.2 प्रकार्यात्मक स्वायत्तता (Functional Autonomy)

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को गत्यात्मक एवं अभिप्रेरित व्यवस्था माना है और इसमें अभिप्रेरकों की विशेष भूमिका भी मानी है। इसी के आधार पर व्यक्तित्व और अभिप्रेरण के सदर्भ में प्रकार्यात्मक स्वायत्ता का सिद्धान्त दिया। ये सिद्धान्त अभिप्रेरकों के प्रकार्यों में पायी जाने वाली स्वायत्ता पर बल देता है। प्रकार्यात्मक स्वायत्ता के कारण ही व्यक्तित्व के व्यक्ति में अनन्यता होती है। जो उसके व्यवहार और समायोजन को निर्धारित करती है। आलपोर्ट का मानना था कि व्यक्ति का व्यक्तित्व अभिप्रेरणाओं से प्रेरित होता है। अभिप्रेरणाओं के अन्तर्नोद की युक्तियां प्रारम्भिक रूप में साधन या यंत्र के समान रहती हैं और कालान्तर में इनका विकास होता है और इनमें एक प्रकार की पूर्णता आ जाती है। जब इनका रूप भली-भांति विकसित हो जाता है तो ये स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगती है। परन्तु जब इनका रूप परिवर्तित होता है, अन्तर्नोद बनता है, तो उनके मूल में स्नायु तंत्र का परिवर्तन भी पाया जाता है। आलपोर्ट के अनुसार भूख, प्यास और यौन संबंधी क्रियाओं के मूल में जैविक अन्तर्नोद पाये जाते हैं। आलपोर्ट ने अपने प्रकार्यात्मक स्वायत्ता के सिद्धान्त के सम्बंध में कुछ निम्न बातों पर विशेष रूप से बल दिया है-

1. अभिप्रेरक समकालीन होते हैं। अभिप्रेरकों में निहित क्रिया शक्ति का सम्बंध अतीत के अनुभवों तथा लक्ष्यों के साथ होना अनिवार्य नहीं है। अभिप्रेरकों के वर्तमान लक्ष्य भी महत्त्वपूर्ण है। हालांकि व्यक्ति का पूर्व काल उसके वर्तमान को समझने के लिए आवश्यक है।

2. व्यक्ति की अभिप्रेरणा को समझने के लिए उसकी अभिप्रेरणा का बहुआयामी अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

3. किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परिपक्वता इस बात पर निर्भर है कि किस सीमा तक उसके अभिप्रेरकों ने प्रकार्यात्मक स्वायत्ता प्राप्त कर ली है।

4. परिपक्व व्यक्तित्व मूल प्रवृत्तियों से सम्बंधित कार्यों के स्थान पर उपयुक्त अभिप्रेरकों से उत्पन्न क्रिया और व्यवहार करता है और इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में एक अनन्यता पाई जाती है।

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति में कुछ ऐसी प्रक्रियाएं भी होती हैं जो प्रकार्यात्मक स्वायत्ता का रूप धारण नहीं करती। जैसे-जैविक अन्तर्नोद से होने वाली क्रियाएं-निद्रा, भूख, प्यास, श्वसन के लिए वायु, शौचक्रिया आदि। इसी तरह अन्य प्रक्रियाएं जैसे-आंखों की पलकों का झपकना जैसी प्रतिवर्त क्रिया, शारीरिक विकास, बुद्धि और स्वभाव सम्बंधी साधन।

5.5 परिपक्व या स्वस्थ व्यक्तित्व की विशेषताएं (Characteristics of a Matured or Healthy Personality)

आलपोर्ट के अनुसार परिपक्व या स्वस्थ व्यक्ति के मुख्य रूप से छः लक्षण होते हैं। उनके अनुसार स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा, व्यक्ति की संस्कृति के आधार पर परिवर्तित होती रहती है। व्यक्ति में जैसे-जैसे उत्तरदायित्व का बोध होता है वैसे-वैसे उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। आलपोर्ट द्वारा परिपक्व या स्वस्थ व्यक्ति के निम्नांकित लक्षण बताये गये हैं—

1. स्व का विस्तारण (Extension of Self),
2. आत्म-वस्तुनिष्ठ (Self-objectification),
3. उत्तम सामाजिक समायोजन (Better Social Adjustment),
4. संवेगात्मक रूप से परिपक्व (Emotionally Matured),
5. यथार्थवादी प्रत्यक्षीकरण (Realistic Perception),
6. जीवन का दर्शन (Philosophy of life)।

5.5.1 स्व का विस्तारण (Extension of self)

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ व्यक्ति के स्व का भी विकास होता है। स्वस्थ या परिपक्व व्यक्तित्व वाला व्यक्ति स्वयं तक ही सीमित नहीं रहता। उसके कार्यों के उद्देश्य केवल अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित नहीं रहते अपितु वे सभी के लिए कार्य करते हैं। अपने परिवार के अन्य सदस्यों, समाज के सदस्यों एवं देश के हितार्थ कार्य करते हैं। सबके प्रति उनमें आत्म-प्रेम होता है।

5.5.2 आत्म-वस्तुनिष्ठ (Self-objectification)

आलपोर्ट के अनुसार स्वस्थ व्यक्तित्व वाला व्यक्ति अन्तर्दृष्टि युक्त होकर अपने आपको अर्थात् स्वयं को जानना चाहता है। वह यह विचार करता है कि वह क्या है? और उसे क्या होना चाहिए?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5.3 उत्तम सामाजिक समायोजन (Better social adjustment)

स्वस्थ या परिपक्व व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का समाज के लोगों के साथ तथा अपने परिवार के सदस्यों के साथ ऐसा प्रेम होता है, जो अधिकार तथा ईर्ष्या की भावना से मुक्त होता है, उसमें करूणा की भावना होती है वह मानव मूल्यों का आदर करता है तथा मानवता से प्रेम।

5.5.4 संवेगात्मक रूप से परिपक्व (Emotionally Matured)

आलपोर्ट के अनुसार परिपक्व या स्वस्थ व्यक्तित्व वाला व्यक्ति स्वयं के या दूसरों के संवेगात्मक तनावों से विचलित नहीं होता। विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में बिना आक्रामक हुए अपना काम सहजता से कर लेता है।

5.5.5 यथार्थवादी प्रत्यक्षीकरण (Realistic perception)

परिपक्व व्यक्तित्व वाला व्यक्ति घटनाओं तथा वस्तुओं का यथार्थ प्रत्यक्षीकरण करता है। ऐसे व्यक्ति कल्पनाओं में न रहकर यथार्थ चिंतन करते हैं। समस्या समाधान के लिए उचित तरीकों को प्रयोग में लाते हैं। उनके जीवन के लक्ष्य भी काल्पनिक न होकर यथार्थवादी होते हैं।

5.5.6 जीवन का दर्शन (Philosophy of life)

आलपोर्ट के अनुसार परिपक्व व्यक्तित्व का जीवनदर्शन विशेष महत्त्व वाला होता है। उसके जीवन दर्शन में एकत्वता पाई जाती है। उसका जीवन दर्शन स्पष्ट चिंतन युक्त तथा व्यवस्थित होता है। क्योंकि उसके जीवन मूल्य, धर्म, सत्य व समाज कल्याण पर आधारित होते हैं।

5.6 मूल्य (Values)

आलपोर्ट ने व्यक्तियों में छ: प्रकार के मूल्यों का अध्ययन किया। ये छ: प्रकार के मूल्य आदर्श मूल्यों के अंतर्गत आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में ये मूल्य विद्यमान रहते हैं, परन्तु इनकी मात्राएं भिन्न-भिन्न हो सकती है। आलपोर्ट के अनुसार ये मूल्य हैं—

1. सैद्धान्तिक (Theoretical), 2. आर्थिक (Economic), 3. सौन्दर्यप्रिय (Esthetic),
4. सामाजिक (Social), 5. राजनैतिक (Political), 6. धार्मिक (Religious)।

5.6.1 सैद्धान्तिक (Thoretical)

सैद्धान्तिक मूल्यों की प्रधानता वाला व्यक्ति, बौद्धिक, दार्शनिक या वैज्ञानिक होता है। वह वस्तुनिष्ठ व तार्किक होता है तथा उसकी अभिवृत्ति संज्ञानात्मक होती है। वह ज्ञान को व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करता है।

5.6.2 आर्थिक (Economic)

इस प्रकार के मूल्यों वाला व्यक्ति पूर्णत: व्यवहारिक होता है तथा उपादेयता पर केन्द्रित होता है। उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य धन कमाना, सम्पत्ति एकत्र करना होता है। इस मूल्य के व्यक्ति केवल प्रारंभिक शिक्षा को ही प्रधानता देते हैं। दूसरों से उनके सम्बन्ध राजनीति या सामाजिक सिद्धान्त पर आधारित न होकर केवल धन पर आधारित होते हैं। वे विलासिता एवं सौन्दर्यता में कम रूचि लेते हैं।

5.6.3 सौन्दर्यप्रिय (Esthetic)

इस प्रकार के मूल्य के व्यक्ति प्रकृति से प्रेम करने वाले सौन्दर्यप्रिय और संतुलन का महत्त्व देने वाले होते हैं। वे जीवन के कलात्मक पहलुओं में अधिक रूचि लेते हैं। ऐसे लोग व्यक्तिवाद पर अधिक विश्वास करते हैं। विलासिता एवं सौन्दर्य के प्रति इनका विशेष आकर्षण रहता है।

5.6.4 सामाजिक (Social)

इस प्रकार के मूल्य प्रधानता वाले व्यक्ति बहुत ही सामाजिक होते हैं। समाज के प्रति अपना दायित्व नि:स्वार्थ भाव से निभाते हैं। इस मूल्य के व्यक्ति नि:स्वार्थ, दयालु, परोपकारी होते हैं। समाज के लोगों की सेवा करने में ये अग्रणी रहते हैं। सामाजिक मूल्यों वाले व्यक्तियों में धार्मिक मूल्य भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

5.6.5 राजनैतिक (Political)

इस प्रकार के मूल्यों वाले व्यक्ति अपनी वैयक्तिक शक्ति के प्रभाव का उपयोग करने वाले होते हैं। इनके जीवन का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मूल उद्देश्य स्पर्धा और संघर्ष होता है और अपने अभिप्रेरकों को अन्य लोगों पर आरोपित करना चाहते हैं। अपनी वैयक्तिक शक्ति का प्रभाव अपने समुदाय तथा समाज पर डालने का प्रयत्न करते हैं।

5.6.6 धार्मिक (Religious)

आल्पोर्ट के अनुसार धार्मिक मूल्यों वाले व्यक्ति रहस्यवादी होते हैं तथा ये एकत्वता को महत्त्व देते हैं, मानव मात्र के लिए कल्याणकरी कार्य करना, मानवता में एकता बनाए रखना तथा विश्व में भी एकात्मकता बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। मानवता के लिए कल्याणकरी अभिवृत्तियां प्रस्तुत करना इनका मुख्य उद्देश्य होता है। व्यक्तियों के मूल्यों का मापन करने के लिए आलपोर्ट ने 45 प्रश्नों का एक मूल्य परीक्षण का निर्माण किया। इस मूल्य परीक्षण के द्वारा व्यक्ति के मूल्य स्तरों को मापा जाता है।

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

I. निबन्धात्मक प्रश्न–

1. आलपोर्ट द्वारा दी गई व्यक्तित्व की परिभाषा को विस्तार से समझाइये।
2. शील गुण या विशेषक क्या होते हैं? विस्तार से समझाइये।
3. आल्पोर्ट द्वारा प्रस्तुत 'व्यक्तित्व और अभिप्रेरणा' में सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
4. प्रकार्यात्मक स्वायत्ता क्या है? समझाइये।
5. एक परिपक्व एवं स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताओं के लिखिए।
6. आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति में पाए जाने वाले मूल्यों का वर्णन कीजिए।

5.8 संदर्भ पुस्तकें –

1. डॉ. सीताराम जायसवाल : व्यक्तित्व मनोविज्ञान
2. डॉ. राजकुमार ओझा : व्यावहारिक मनोविज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 6 मरे का सिद्धान्त

संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 व्यक्तित्व की संरचना
6.2.1 मरे की व्यक्तित्व की परिभाषा
6.2.2 व्यक्तित्व के प्रकार्य
6.3 मरे का आवश्कता सिद्धान्त
6.3.1 आवश्कताओं के प्रकार
6.4 मरे की दबाव सूची
6.4.1 अल्फा दबाव
6.4.2 बीटा दबाव
6.5 मूल्य
6.5.1 शारीरिक मूल्य
6.5.2 सम्पत्ति मूल्य
6.5.3 सत्ता मूल्य
6.5.4 संवर्द्धन मूल्य
6.5.5 ज्ञान मूल्य
6.5.6 सौन्दर्य बोध मूल्य
6.5.7 वैचारिक मूल्य
6.6 व्यक्तित्व का विकास
6.6.1 मनोग्रन्थियों का प्रभाव
6.6.2 सांस्कृतिक प्रभाव
6.6.3 सामाजीकरण
6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.8 संदर्भ ग्रंथ

6.0 प्रस्तावना (Introduction)

हैनरी ए. मरे का जन्म 13 मई 1893 में न्यूयार्क सिटी में हुआ। उन्होंने 1915 में हार्वर्ड कॉलेज से स्नातक उपाधि प्राप्त की। प्रारम्भ में उनकी रुचि इतिहास में थी, इसलिए उन्होंने इतिहास का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् मरे ने चिकित्सा शास्त्र में भी गहन अध्ययन किया। उन्होंने चिकित्सा शास्त्र एवं जीव विज्ञान से सम्बंधित विषयों का बारह वर्षों तक गहन अध्ययन किया। इसी काल में उनकी रुचि मनोविज्ञान में हुई। उनको इस क्षेत्र में अध्ययन करने की प्रेरणा युंग से प्राप्त हुई। युंग से प्रेरित होकर मरे ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में अवचेतन मनोविज्ञान (Depth Psychology) का गहन अध्ययन किया। उन्होंने व्यक्ति विज्ञान (Personalogy) नाम से व्यक्ति के व्यक्तित्व की संकल्पना की। कालान्तर में व्यक्ति विज्ञान को आधुनिक मनोविज्ञान की एक शाखा मान लिया गया और व्यक्तित्व विकास से संबंधित मनोवैज्ञानिक तथ्यों का गहन अध्ययन इसी शाखा के अन्तर्गत किया जाने लगा।

6.1 उद्देश्य (Objectives)

1. मरे के व्यक्तित्व सिद्धांत को समझ सकेगें ।
2. मरे का आवश्कता सिद्धान्त के बारे में जान सकेगें ।
3. मरे की दबाव सूची को समझ सकेगें ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. व्यक्तित्व के विकास में मनोग्रन्थियों के प्रभाव को जान सकेगें ।
5. व्यक्तित्व के विकास में सामाजीकरण को जान सकेगें ।

6.2 व्यक्तित्व की संरचना

मरे के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल आधार यह है कि व्यक्ति अभिप्रेरित पशु है। मरे ने व्यक्तित्व की अवधारणा में जैविक निर्धारकों पर बल दिया है। नवफ्रायडवादियों ने जैविक पक्ष की कदाचित् अवहेलना की थी परन्तु मरे के अनुसार व्यक्तित्व की कल्पना बिना मस्तिष्क के असंभव है।

6.2.1 मरे की व्यक्तित्व की परिभाषा

मरे के अनुसार-"व्यक्तितत्व उन प्रकार्यात्मक रूपों और शक्तियों की निरन्तरता है जो संगठित प्रबल प्रक्रियाओं और व्यस्त व्यवहारों के माध्यम से जीवन और मृत्युपर्यन्त अभिव्यक्त होता रहता है।"

इस परिभाषा में व्यक्तित्व को निरन्तर गतिशील माना गया है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के कुछ प्रकार्यों का उल्लेख भी परिभाषा में किया गया है। मरे ने व्यक्तित्व के निम्न प्रकार्य माने हैं-

1. ऊर्जाओं के कालिक पुनरुत्पादन की व्यवस्था निद्रा के माध्यम से करना।
2. विभिन्न प्रक्रियाओं का संचालन करना।
3. विभिन्न प्रकार की भावनाओं एवं मूल्यांकनों का प्रकटीकरण।
4. आवश्यकता संबंधी तनावों की निरन्तरता को कम करना।
5. लक्ष्य प्राप्ति हेतु आवश्यक कार्यक्रम बनाना।
6. समरस जीवन शैली को प्राप्त करने हेतु विभिन्न आवश्यकताओं के मध्य द्वन्द्वों को कम करने के लिए कार्यक्रम बनाना।
7. तनावों की सततता को कम करना या लक्ष्यों का स्तर कम करना।
8. व्यक्तिगत रूझानों और समाज के द्वारा मान्य कार्यों के बीच द्वन्द्व का न्यूनीकरण।
9. असामाजिक आवेगों और परमाहम् के बीच द्वन्द्व का न्यूनीकरण।

6.2.2 व्यक्तितत्व के प्रकार्य

हेनरी मरे ने व्यक्तित्व के इन प्रकार्यों के लिए कुछ विशेष संकल्पनात्मक शब्दों का प्रयोग किया और इनकी व्याख्या भी की। जो इस प्रकार है-

1. आवश्यकता संबंधी तनाव को कम करना।
2. तनावों की उत्पत्ति
3. लक्ष्यों के क्रम का निर्धारण
4. आत्माभिव्यक्ति
5. लक्ष्यों का क्रम सूचन
6. आकांक्षा स्तर का समायोजन करना
7. सामाजिक अपेक्षाएं

6.2.2.1 आवश्यकता संबंधी तनाव को कम करना-मरे का यह मानना है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व आवश्यकताओं से उत्पन्न तनावों से प्रभावित होता है। ये आवश्यकताएं जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक होती हैं। अत: व्यक्ति का यह प्रयास रहता है कि उसके इस प्रकार से उत्पन्न हुए तनाव में कमी हो। इन आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति व्यक्ति व्यक्तिगत सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर करता है। क्योंकि इस प्रकार की इच्छाओं में कुंठाएं और अभिप्साएं निहित होती है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके लिए यह संभव नहीं कि वह समाज से अलग रहकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

6.2.2.2 तनावों की उत्पत्ति- इस संबंध में हेनरी मरे का मत है कि तनाव का अभाव उतना सन्तोषप्रद नहीं होता जितना कि उत्पन्न हुए तनाव में कमी करने की प्रक्रिया से होता है। वे फ्रायड की इस बात से सहमत नहीं थे कि तनाव का अभाव व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करता है बल्कि उनके अनुसार तनाव में कमी के कारण जो सन्तोष मिलता है वह तनाव के अभाव में नहीं। अत: मरे के अनुसार आवश्यकतानुसार तनाव की उत्पत्ति और फिर उसमें कमी व्यक्तित्व के प्रकार्यों में समाहित है।

6.2.2.3 लक्ष्यों के क्रम का निर्धारण- मरे के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना में उन उपायों का भी बहुत महत्त्व है जो विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं एवं लक्ष्यों को क्रम में निर्धारित करते हैं। इन उपायों से व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं में

Jain (Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्रम निर्धारण करता है। अर्थात् जो आवश्यकता जितनी महत्त्वपूर्ण होगी, उसे उतने ही महत्त्वपूर्ण क्रम निर्धारण में रखा जाएगा। व्यक्तित्व की संरचना में लक्ष्यों का क्रम निर्धारण की यह प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। हेनरी मरे का यह मानना है कि आवश्यकताओं का क्रम निर्धारण करके व्यक्ति कम समय में अधिक कार्य कर पाता है। व्यक्ति अपनी उन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जो अत्यन्त आवश्यक है और इसी प्रकार उन लक्ष्यों के प्राप्ति की ओर पहले ध्यान देता है जो देश और काल की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मरे के अनुसार जिस व्यक्ति में क्रम निर्धारण की क्षमता जितनी अधिक होगी, वह व्यक्ति उतनी ही अधिक सीमा तक द्वन्द्वों एवं तनावों से मुक्त रहेगा।

6.2.2.4 आत्माभिव्यक्ति– मरे के अनुसार आवश्यकताओं से संबन्धित तनावों में कमी के अतिरिक्त व्यक्तित्व के लिए आत्माभिव्यक्ति भी बहुत जरूरी है। जैसे कोई व्यक्ति संगीत द्वारा आत्माभिव्यक्ति की इच्छा करे तो उसे इस बात का ध्यान रखना होता है कि वह ऐसे स्थान, समय और गाने का चुनाव करे जो दूसरों के लिए दु:खकर न हो। इस संबंध में मरे ने प्रक्रिया-कार्य (process-activity) शब्द का प्रयोग किया। प्रक्रिया कार्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए मरे यह मानते हैं कि मन कभी-कभी ऐसी क्रियाओं में लीन हो जाता है जो थोड़े समय की होती है परन्तु इनके माध्यम से मन को आनन्द मिलता है। इसी संदर्भ में मरे का यह मानना है कि शरीर और मन सबन्धी जितनी क्रियाएं हैं वे ऐसी कल्पनाओं से संबन्धित हो जाती हैं जो व्यक्ति को आनन्द प्रदान करती हैं और वे आत्म-अभिव्यक्ति का एक माध्यम बन जाती हैं। कालान्तर में कुछ क्रियाएं एक निश्चित रूप ले लेती हैं। जैसे—नाटक, नृत्य, संगीत आदि सम्बंधी क्रियाएं व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति में सहायक होती है।

6.2.2.5 लक्ष्यों का क्रम-सूचन– मरे के अनुसार क्रम-सूचन में व्यक्ति मानसिक शक्ति की सहायता से कुछ योजनाएं बनाता है और वह यह देखता है कि उसकी पूर्ति किस प्रकार की जा सकती है और उसके परिणाम का स्वरूप क्या होगा। व्यक्ति अपनी योजनाओं या लक्ष्यों का निर्माण करता है, फिर उनकी पूर्ति या उनको मूर्त्त रूप देने के लिए उनका क्रम-सूचन करता है। जिस लक्ष्य को पहले प्राप्त करना है उसे प्राथमिकता देकर प्रथम क्रम में रखेगा। इस तरह व्यक्ति लक्ष्यों की वरीयता एवं उनकी आवश्यकताओं के अनुसार उनका क्रम-सूचन करता है।

6.2.2.6 आकांक्षा स्तर का समायोजन करना– इस अवधारणा में मरे यह मानते हैं कि व्यक्तियों में योग्यता, क्षमता, शैक्षणिक उपलब्धि और आकांक्षा की दृष्टि से समरूपता नहीं पायी जाती है। जैसे=आकांक्षा का स्तर तो बहुत ऊंचा है परन्तु योग्यता में कमी होती है। कभी आकांक्षा का स्तर नीचा है तो कभी चरित्र दोष होता है। अत: व्यक्ति में आकांक्षा की पूर्ति उस समय ही हो पाती है जब व्यक्ति उसका निर्धारण अपनी क्षमता, योग्यता तथा बौद्धिक आवश्यकता को ध्यान में रखकर करता है। व्यक्ति को अपनी मानसिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिक एवं शारीरिक क्षमताओं को ध्यान में रखकर अपने आकांक्षा स्तर का निर्धारण करना चाहिए।

6.2.2.7 सामाजिक अपेक्षाएं– इस संकल्पना के अनुसार व्यक्तित्व के विकास में समाज, आनुवांशिकता तथा पर्यावरण को महत्त्वपूर्ण माना है। इनके विचार में व्यक्ति का अतीत तथा उसका इतिहास दोनों उसके व्यक्तित्व में महत्त्वपूर्ण होते हैं। व्यक्ति से समाज क्या अपेक्षा रखता है और व्यक्ति समाज से क्या अपेक्षा रखता है, इसका ज्ञान, फिर उसके अनुसार कार्य करना सरल नहीं होता। व्यक्ति के व्यक्तित्व का सामाजिक पक्ष प्रबल होता है। सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार जो लोग कार्य करते हैं, उन्हें समाज की प्रशंसा प्राप्त होती है। परन्तु कभी-कभी ऐसी स्थितियां भी बनती हैं कि व्यक्ति अपने समाज की मान्यताओं के अनुसार कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। उसके कई कारण हो सकते हैं और समाज का रूढ़िबद्ध हो जाना भी एक कारण हो सकता है। सामान्यत: व्यक्ति के व्यक्तित्व में जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्धारण हैं, वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि व्यक्ति को कौन सा व्यवहार करना चाहिए और कौन सा नहीं, कौन से कार्य नैतिक हैं और किन कार्यों को समाज में अनैतिक माना है। व्यक्ति को सामाजिक अपेक्षाओं का अनुसरण करते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार चलना होता है और ऐसा करने से उसे सन्तोष मिलता है।

6.3 मरे का आवश्यकता सिद्धान्त

हेनरी मरे ने व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में आवश्यकताओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनके अनुसार व्यक्ति की जैविक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं अनेक प्रकार की होती हैं, अपनी पुस्तक "एक्सप्लोरेशन इन पर्सनलिटी" में मरे ने जैविक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की एक सूची भी दी है। आवश्यकताओं की यह सूची बड़ी व्यापक है। फिर भी उसका संक्षिप्त विवरण निम्न है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. उपलब्धि-इस प्रकार की आवश्यकताओं में उच्च स्तरीय कार्य करना, बाधाओं को पार करना, उपलब्धि प्राप्त करना, कठिन कार्यों को पूरा करना और अपनी योग्यताओं और गुणों का समुचित प्रयोग कर आत्म सम्मान में वृद्धि करना।

2. आक्रामकता -विरोध प्रकट करना, विरोधी का डटकर मुकाबला करना, विरोधी पर विजय पाना, बदला लेना तथा दंड देना जैसी आक्रामक क्रियाओं की आवश्यकता होती है।

3. स्वायत्तता-इस प्रकार की आवश्यकता में व्यक्ति अपने सभी प्रकार के बंधनों को तोड़ने की क्षमता रखता है। वह स्वतंत्र रहना चाहता है और अपनी इच्छानुसार कार्य करना चाहता है। सामाजिक बंधनों को भी वह तोड़ना चाहता है। सामाजिक रीतियों का पालन न करना और उत्तरदायित्वहीन होना चाहता है।

4. अवनयन-इसमें व्यक्ति अपने को हीन समझता है। वह बाहरी दबावों के सामने झुक जाता है, अपनी आलोचना निन्दा और दण्ड को चुपचाप स्वीकार कर लेता है। हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना, किसी भी परिस्थिति में अपने को ही गलत मानना, दु:ख, दर्द, रोग और दुर्भाग्य को आमंत्रित करना फिर इनसे सुख पाना ये अवनयन आवश्यकताओं की विशेषताएं हैं।

5. संवर्द्धन-इस प्रकार की इच्छाओं में व्यक्ति अपनी पसंद के लोगों के साथ रहना चाहता है। अपने प्रिय साथी के निकट रहना और उसका प्रेम पाना, उसे प्रेम देना, सहयोग करना इत्यादि शामिल है।

6. प्रभाव-मरे के अनुसार इस प्रकार की इच्छाओं में दूसरों पर प्रभाव डालना और अपने आदेश द्वारा प्रभावित करना, दूसरों को काम न करने देना और अपने पर्यावरण के मानवीय परिवेश पर नियंत्रण करना आदि शामिल हैं।

7. अवलंबिता-इस प्रकार की इच्छाओं में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति किसी सहयोगी की सहायता से पूरी करने की इच्छा रखता है। व्यक्ति अपनी स्वयं की देखभाल, रक्षा एवं अन्य सभी प्रकार की आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है।

8. काम-इसमें व्यक्ति काम जनित संबंध स्थापित करने और उसे प्रगाढ़ बनाने की इच्छा करता है, काम बढ़ाने की तथा काम क्रीड़ा में भाग लेने की इच्छा रखता है।

9. विनोद-मरे के अनुसार इस प्रकार की इच्छा में मनोरंजन के लिए कार्यक्रमों में भाग लेना, हास-परिहास करना, खेलकूद, नृत्य, संगीत, नाटक आदि आयोजनों में भाग लेना आदि शामिल हैं।

10. प्रदर्शन-इस इच्छा में व्यक्ति यह प्रयत्न करता है कि लोग उसे देखें और सुनें। अपना प्रदर्शन, अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयत्न, दूसरों को आश्चर्यचकित करना और कभी-कभी मानसिक आघात पहुंचाना इत्यादि इस इच्छा के अन्तर्गत आते हैं।

11. अनुवर्तन-इस प्रकार की आवश्यकता में अपने से उच्च अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति की प्रशंसा करना, उसका समर्थन करना, सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार चलना, अपने सहयोगियों के सुझावों को सहर्ष स्वीकार करना शामिल है।

12. व्यवस्था इसमें वस्तुओं को व्यवस्थित करना, स्वच्छता बनाए रखना, व्यवस्थीकरण तथा कार्यों को संतुलित और सही-सही ढंग से करना आदि आते हैं।

13. प्रतिकर्म-असफल होने पर सफलता के लिए पुन: प्रयास करना, अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाना और भय को निकालना, आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करना, अपमानित होने पर पुन: अच्छा कार्य करके सम्मान प्राप्त करना।

14. प्रतिरक्षण- इसमें व्यक्ति अपने अहम् की रक्षा करते हुए उसके अनुसार कार्य करता है। अपने कर्मों को उचित बताना तथा अपनी असफलताएं और अपमान को छिपाना, निन्दा, आलोचना और आक्रमण आदि से स्वयं की रक्षा करना आदि सम्मिलित हैं।

15. परिपोषण-ऐसी आवश्यकताओं में व्यक्ति दूसरों की सेवा व सुरक्षा करने में रूचि लेता है। वह दीनहीन एवं दुर्बल व्यक्तियों एवं जीवों के प्रति सहानुभूति रखता है और उनकी सहायता करता है। यदि वे संकट में हों तो उन्हें संकट से उबारने के लिए भी सहायता करता है।

16. क्षति परिवर्जन- घातक बीमारी, खतरनाक स्थिति, शारीरिक आघात, पीड़ा आदि स्थितियों में अपना बचाव करना या अपेक्षित सावधानी बरतना।

17. अपकीर्ति परिवर्जन- अपमान एवं अवमानना से अपने आप को बचाना, ऐसी स्थितियों या परिस्थितियों से दूर हो जाना जो दु:खदायी हों, उन परिस्थितियों से अपने आप को बचाना, ये हीनता की भावना उत्पन्न करती हैं। जहां सम्मान, आदर न मिले और लोग छोटा समझें या ध्यान न दें वहां न जाना, असफलता के भय से काम न करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.3.1 आवश्कताओं के प्रकार

उपरोक्त आवश्यकताओं की सूची जो हेनरी मरे ने दी है उनके अतिरिक्त उन्होंने आवश्यकताओं के प्रकारों पर भी व्याख्याएं की हैं। आवश्यकताओं के प्रकार-प्रो. जायसवाल के अनुसार हेनरी मरे ने आवश्यकताओं के कुछ प्रकार बताए जो इस प्रकार है-

1. (क) आन्तरिक आवश्यकताएं (Viscerogenic needs)
   (ख) मनोजन्य आवश्यकताएं (Psychogenic needs)
2. (क) प्रकट आवश्यकताएं (Overt needs)
   (ख) अप्रकट आवश्यकताएं (Covert needs)
3. (क) केंद्रिक आवश्यकताएं (Focal needs)
   (ख) विकीर्ण आवश्यकताएं (Diffused needs)
4. (क) अग्रलक्षी आवश्यकताएं (Proactive needs)
   (ख) प्रतिक्रियात्मक आवश्यकताएं (Deactivate needs)
5. (क) प्रक्रम क्रिया आवश्यकताएं (Process needs)
   (ख) निश्चयात्मक आवश्यकताएं (Model needs)

1. (क) आंतरिक आवश्यकताएं– ये आवश्यकताएं मूलत: शरीर सम्बंधी होती है। भूख, प्यास, श्वास, मलमूत्र त्याग आदि आन्तरिक आवश्यकताएं मानी गई हैं। हेनरी मरे के अनुसार ये आवश्यकताएं प्राथमिक हैं।

(ख) मनोज्य आवश्यकताएं-ये द्वितीयक आवश्यकताएं है। ये आवश्यकताएं आन्तरिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है तथा मनोजन्य रूप धारण कर लेती हैं। जैसे—वस्तुओं के एकत्रीकरण की इच्छा, समाज में मान्यता तथा प्रभुत्व प्राप्ति की इच्छा आदि।

2. (क) प्रकट आवश्यकताएं– हेनरी मरे के अनुसार कुछ आवश्यकताएं ऐसी हैं जो शारीरिक क्रियाओं अथवा गति सम्बंधी व्यवहारों द्वारा प्रकट होती हैं, ये आवश्यकताएं प्रकट हैं।

(ख) अप्रकट आवश्यकताएं-इन आवश्यकताओं की कोटि में दिवास्वप्न अथवा कल्पना जैसी मानसिक क्रियाएं होती है। हेनरी मरे के अनुसार इन आवश्यकताओं का सम्बंध व्यक्ति के पराहम् से होता है। जब व्यक्ति आदर्शों, मूल्यों आदि को जीवन का अंग बनाता है तो अप्रकट आवश्यकताएं सक्रिय होती हैं क्योंकि इसमें व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं को प्रकट नहीं कर पाता है।

3. (क) केंद्रिक आवश्यकताएं– कुछ आवश्यकताएं सीमित होती है, ये केंद्रिक आवश्यकताएं है। कुछ आवश्यकताएं सभी वस्तुओं से सम्बंधित हैं। जब व्यक्ति या वस्तु से ये आवश्यकताएं अधिक सम्बंधित होती हैं तो ये बाद में मनोविकास का रूप ले लेती हैं।

(ख) विकीर्ण आवश्यकताएं–यदि आवश्यकताएं विकीर्ण रहती है या व्यक्ति या वस्तु से सम्बंध नहीं रखती है तो इससे भी मनोविकार उत्पन्न होता है।

4. (क) अग्रलक्षी आवश्यकताएं-हेनरी मरे के अनुसार जो आवश्यकताएं व्यक्ति की आन्तरिक वृत्तियों से है या जो बिना किसी उद्दीपन के सहज रूप में होती है, वे अग्रलक्षी आवश्यकताएं है। सामाजिक संदर्भ में इन आवश्यकताओं का महत्व माना गया है। जब व्यक्ति अपने साथी से आगे बढ़कर वार्ता करता है या अनुक्रिया के लिए प्रेरित करता है तो वे आवश्यकताएं अग्रलक्षी हैं।

(ख) प्रतिक्रियात्मक आवश्यकताएं–हेनरी मरे के अनुसार एक व्यक्ति जब अपने साथी को अनुक्रिया के लिए प्रेरित करता है तब साथी की अनुक्रिया ही प्रतिक्रियात्मक आवश्यकताएं हैं।

5. (क) प्रक्रम क्रिया आवश्यकताएं–कुछ क्रियाएं अनिश्चित रूप से बिना किसी लक्ष्य की होती हैं, जैसे कोई व्यक्ति बिना लक्ष्य की मानसिक क्रिया में लीन रहता है और काल्पनिक जगत् में विचरण करता है, हेनरी मरे के अनुसार ये क्रियाएं प्रक्रम क्रिया की देन हैं।

(ख) निश्चयात्मक आवश्यकताएं–जब व्यक्ति सृजनशील कार्य में लगता है तब निश्चयात्मक आवश्यकता की पूर्ति होती है। इसमें काल्पनिक जगत् में विचरण करने की विपरीत क्रिया होती है। व्यक्ति ऐसे कार्य करता है जिनसे किसी क्षेत्र में उसकी श्रेष्ठता सिद्ध हो। हेनरी मरे ने आवश्यकताओं के विभिन्न प्रकार निर्धारित किये है फिर भी उनका विचार है कि सभी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आवश्यकताएं एक दूसरे से सम्बंध रखती हैं। कुछ आवश्यकताएं तीव्र होती हैं तथा उनकी तुष्टि तुरन्त करना आवश्यक होता है। आवश्यकताओं की तीव्रता और महत्व के आधार पर व्यक्ति उनका क्रम निर्धारित करता है तथा उसके समाधान के लिए प्रयत्न करता है। कुछ आवश्यकताओं की तुष्टि अनेक प्रयास करने पर होती है। कुछ आवश्यकताएं पर्यावरण से सम्बंधित होती है। कुछ आवश्यकताएं आन्तरिक तथा बाह्य जीवन से प्रेरित होती है। आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने के लिए व्यक्ति और उसके पर्यावरण में एक सम्बंध होता है। इसके लिए हेनरी मरे ने दबाव या प्रेस की संकल्पना प्रस्तुत की। जिस प्रकार आवश्यकताएं व्यवहार से प्रभावित होती हैं उसी प्रकार पर्यावरण के प्रभावों द्वारा भी व्यवहार प्रभावित होते हैं। व्यक्ति को अपनी आवश्यकता के अनुसार कार्य एवं व्यवहार करने के लिए सामाजिक नियमों का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। ये सामाजिक नियम ही एक प्रकार के दबाव हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को पूरी छूट नहीं देते हैं। समाज में व्यक्ति को दूसरों का ध्यान भी रखना पड़ता है। इस प्रकार सामाजिक संदर्भ में ही उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति होनी होती है।

6.4 मरे की दबाव सूची

हेनरी मरे ने विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की तरह ही दबाव सूची भी बनाई। इन दबावों को दो वर्गों में बांटा गया है-

6.4.1 अल्फा दबाव

मरे के अनुसार व्यक्ति अथवा वस्तु के स्वरूप एवं प्रकृति में पाए जाने वाले दबाव अल्फा दबाव है।

6.4.2 बीटा दबाव

मरे के अनुसार व्यक्ति का अपने पर्यावरण की वस्तुओं एवं समाज विषयक दबाव की धारणा बीटा दबाव है। हेनरी मरे द्वारा प्रस्तुत दबाबों की सूची में परिवार, स्वास्थ्य, समाज के सम्बंधों पर आधारित हैं। इन दबावों का विवरण निम्न प्रकार से है-

1. **पारिवारिक सहायता का अभाव**-व्यक्ति में इस दबाव के कारण सांस्कृतिक तथा पारिवारिक विसंगतियां पायी जाती हैं। जिनके माता-पिता का सम्बंध विच्छेद हो, चंचल अनुशासन हो, माता-पिता में एक की बीमारी अथवा मृत्यु, गरीबी तथा घर में अव्यवस्था के कारण दबाव की स्थिति पायी जाती है।
2. **खतरा या दुर्भाग्य**-व्यक्ति में भौतिक या शारीरिक संरक्षण का अभाव पाया जाता है या व्यक्ति को ऊंचाई से गिरने का डर, पानी में डूबने का भय, अकेलेपन, अंधेरे तथा खराब मौसम का भय, बिजली, आग का भय या अन्य भयों के कारण व्यक्ति में दबाव की स्थिति पायी जाती है।
3. **अभाव अथवा हानि**-व्यक्ति में पोषण की कमी, वस्तुओं का अभाव, संगी साथी तथा विभिन्नता के अभाव के कारण दबाव पाया जाता है।
4. **अस्वीकरण, उपेक्षा और तिरस्कार**-जब व्यक्ति को किसी तरह का अस्वीकरण, उपेक्षा और तिरस्कार मिलता है तो उस कारण से दबाव की स्थिति बन जाती है।
5. **प्रतिद्वन्द्वी, प्रतियोगी सहकर्मी**-व्यक्ति को प्रतिद्वन्द्विता या प्रतियोगी सहकर्मी के कारण भी दबाव की स्थिति बनती है।
6. **सहोदर भाई या बहन का जन्म** -परिवार में सहोदर भाई या बहन के जन्म के बाद बच्चे को यह लगता है कि उसे कम प्यार मिल रहा है या उसकी उपेक्षा हो रही है या अन्य कई ऐसे कारण हैं जो उसकी मानसिकता को प्रभावति करते हैं। इससे उसकी स्थिति दबाव की बनती है।
7. **आक्रामकता** -जब व्यक्ति को किसी वरिष्ठ पुरुष अथवा स्त्री का दुर्व्यवहार सहना पड़ता है या उसके साथियों का बुरा बर्ताव या झगड़ालू संगी-साथी हों तो व्यक्ति में दबाव की स्थिति पैदा होती है।
8. **प्रभुत्व परिपोषण**-यदि बच्चे के माता-पिता में एक का अहम् ज्यादा हो और बच्चे पर उसका ही प्रभुत्व बना रहे या इस वातावरण में उसका पोषण हो, जाति, बुद्धि व्यवसाय आदि सम्बंधी प्रभुत्व हो तो दबाव की स्थिति उत्पन्न होती है। माता-पिता में एक का आवश्यकता से अधिक उदार होना या बच्चे के परिपोषण में किसी प्रकार के भय, दुर्घटना, बीमारी आदि के प्रभावों की अधिकता होती है तो बच्चे के लिए ये परिस्थितियां दबाव उत्पन्न कर देती हैं।

हेनरी मरे के अनुसार विभिन्न दबावों और आवश्यकताओं के बीच अन्त:क्रिया होती है तथा इसी के आधार पर व्यक्ति का व्यवहार निर्भर करता है। व्यवहार का जब व्यापक रूप बनता है तो मरे ने इसे प्रसंग या सीमा कहा है। यह सीमा आवश्यकताओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और दबावों की अन्त:क्रिया के फलस्वरूप होती है। जब व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति के समय प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण के दबावों को अनुभव करता है तो इसी बीच प्रसंगों की उत्पत्ति होती है। इन प्रसंगों का व्यक्तित्व के अध्ययन में बहुत योगदान है। इन प्रसंगों के विश्लेषण के आधार पर मरे ने प्रपेक्षी परीक्षण (Projective Tests) तैयार किया जो व्यक्तित्व अध्ययन के लिए विख्यात है। मरे के अनुसार प्रसंग अथवा सीमा एक प्रकार की विश्लेषण की यूनिट है या इकाई है जो व्यक्ति के परस्पर सम्बंधों को समझने में सहायक होती है। इसके साथ ही मरे ने परस्पर सम्बंधों में व्यवहार का विश्लेषण करते हुए द्वितीय इकाई का भी उल्लेख किया। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के व्यवहार का विश्लेषण करते समय उस व्यक्ति पर पूरा ध्यान देना होता है जिसके व्यवहार का हम अध्ययन कर रहे हैं और दूसरी ओर उस व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव को भी ध्यान में रखना पड़ता है जो पहले व्यक्ति से परस्पर व्यवहार और विचारों का आदान-प्रदान करता है। अर्थात् इस प्रकार के अध्ययन में विषयी और विषय पर समान रूप से ध्यान दिया जाता है।

6.5 मूल्य

हेनरी मरे ने व्यक्ति के मूल्यों पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने सात प्रकार के मूल्य निर्धारित किये हैं। ये मूल्य हैं- 1. शारीरिक मूल्य, 2. सम्पत्ति मूल्य, 3. सत्ता मूल्य, 4. संवर्द्धन मूल्य, 5. ज्ञान मूल्य, 6. सौन्दर्य बोधीय मूल्य, 7. वैचारिक मूल्य

6.5.1 शारीरिक मूल्य

हेनरी मरे के अनुसार शारीरिक मूल्य जैविक मूल्य हैं और ये मूल्य शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक देखभाल और संरक्षण से सम्बंधित है।

6.5.2 सम्पत्ति मूल्य

इन मूल्यों में मरे ने व्यक्ति की सम्पत्ति, धन, भवन आदि को सम्पत्ति मूल्य माना है। व्यक्ति के पास में उपलब्ध वस्तु को कितना मूल्यवान या उपयोगी मानता है।

6.5.3 सत्ता मूल्य

इसमें सत्ता और अधिकार मूल्यों को महत्व दिया जाता है। अपनी सत्ता और अधिकार को उपयोग में लेते हुए व्यक्ति क्या निर्णय लेता है या उसके निर्णय की शकित कितनी है, ये सत्ता मूल्य के अन्तर्गत आते हैं।

6.5.4 संवर्द्धन मूल्य

पारिवारिक सम्बंधों एवं परस्पर सामाजिक सम्बंधों तथा सांस्कृतिक सम्बंधों पर आधारित मूल्यों को ही हेनरी मरे ने संवर्द्धन मूल्य कहा है।

6.5.5 ज्ञान मूल्य

ज्ञान-विज्ञान से सम्बंधित सम्बंधों, तथ्यों और संकल्पनाओं के ज्ञान को ज्ञान मूल्य माना है।

6.5.6 सौन्दर्य बोधीय मूल्य

इसके अन्तर्गत हेनरी मरे ने संगीत, नाटक एवं कलाओं से सम्बंधित मूल्यों को लिया है।

6.5.7 वैचारिक मूल्य

इसके अन्तर्गत धर्म, दर्शन जीवन दर्शन पर आधारित व्यक्ति के विचारों के मूल्यों को वैचारिक मूल्य माना है।

6.6 व्यक्तित्व का विकास

हेनरी मरे का व्यक्तित्व विकास के बारे में यह मानना है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त व्यक्ति के व्यक्तित्व का जो इतिहास है वही वास्तव में व्यक्तित्व है। उन्होंने व्यक्तित्व विकास पर तीन बातों का मुख्य रूप से उल्लेख किया- 1. मनोग्रंथियों का प्रभाव, 2. सांस्कृतिक प्रभाव, 3. सामाजीकरण।

6.6.1 मनोग्रंथियों का प्रभाव

हेनरी मरे ने व्यक्तित्व विकास में मनोग्रंथियों का विशेष प्रभाव माना है। इन मनोग्रंथियों को शैशविक मनोवृत्तियों के रूप में माना है। ये पांच प्रकार की हैं- (i) संवृत्त मनोग्रंथियां, (ii) मुख मनोग्रंथियां, (iii) गुदा मनोग्रंथियां, (iv) मूत्रमार्गी मनोग्रंथियां, (v) बधियाकरण मनोग्रंथियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(i) **संवृत्त मनोग्रंथियां**– इस ग्रंथि के बारे में मरे की यह धारणा है कि मां के गर्भ में रहते हुए बच्चा अधिक सुरक्षित अनुभव करता है। जब उसका जन्म होता है तो गर्भ से बाहर आते ही उसको बाह्य वातावरण से भय लगता है और अचानक उसमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है। फलस्वरूप नवजात शिशु पुन: गर्भ में जाना चाहता है और यहीं पर संवृत्त मनोग्रंथि का विकास होता है। हेनरी मरे के अनुसार संवृत्त मनोग्रंथि के मूल में गर्भ में पहले की स्थिति में जाने की इच्छा निहित होती है तथा दूसरी बात यह है कि उसमें असुरक्षा एवं असहायता से सम्बंधित दुश्चिन्ता हो जाती है। तीसरी बात यह है कि नवजात शिशु संवृत्ति मनोग्रंथि के द्वारा घुटन से मुक्त होना चाहता है।

हेनरी मरे ने जन्म से पूर्व की अवस्था में जाने वाली स्थिति को सरल संवृत्त मनोग्रंथि माना है। इसका उल्लेख करते हुए मरे ने बताया कि नवजात शिशु की यह इच्छा होती है कि वह पुन: गर्भ जैसे स्थान में जाकर अपने को सुरक्षित कर ले। क्योंकि गर्भ के भीतर उसकी सारी आवश्यकताएं अपने आप पूरी होती रहती हैं तथा वह अन्य वस्तु पर निर्भर नहीं रहता है।

मरे के अनुसार-संवृत्त मनोग्रंथि का दूसरा रूप भय पर आधारित है। नवजात शिशु जब जन्म लेता है तब खुली जगह चाहता है या गिरने के भय से त्रस्त रहता है और यह मनोग्रंथि भय मनोग्रंथि के रूप में विकसित होती है।

मरे ने संवृत्त मनोग्रंथि का तीसरा रूप मुक्ति माना है। इसमें शिशु स्वतंत्र होना चाहता है, बाहर निकलना चाहता है तथा खुली जगह में रहना चाहता है। मरे ने इस ग्रंथि का नाम निर्गमन मनोग्रंथि रखा।

(ii) **मुख मनोग्रंथियां**– फ्रायड की तरह हेनरी मरे ने भी शिशु के खाने-पीने और चूसने की क्रियाओं में जो सुख मिलता है उसे मुख मनोग्रंथि के अन्तर्गत रखा, हालांकि हेनरी मरे ने इसके काम वासना के पक्ष पर उतना जोर नहीं दिया जितना कि फ्रायड ने। हेनरी मरे ने मुख मनोग्रंथियों के तीन प्रकार माने हैं–

1. मुख अवलंबिता मनोग्रंथि,
2. मुख आक्रामकता,
3. मुख अस्वीकरण मनोग्रंथि।

मुख अवलंबिता मनोग्रंथि के फलस्वरूप बच्चा मुख सम्बंधी क्रियाओं जैसे—खाने-पीने और चूसने में लगा रहता है। जब वह मां का स्तनपान करता है अथवा अंगूठा चूसता है तो उसे अवलंबिता मनोग्रंथि की संतुष्टि मिलती रहती है।

आक्रामकता मनोग्रंथि में बच्चा किसी वस्तु को मुंह से काटकर सुख की अनुभूति करता है। मां का स्तन काटना या अन्य किसी को काटना आक्रामकता मनोग्रंथि की संतुष्टि है। यही क्रिया कालान्तर में आक्रामकता को जन्म देती है। बड़े होने पर भी मुंह से किसी चीज का काटना अथवा हकलाना इस बात का संकेत देती है कि व्यक्ति में मुख आक्रामकता मनोग्रंथि प्रबल है। मुख अस्वीकरण मनोग्रंथि में बच्चा अपनी असहमति व अप्रसन्नता व्यक्त करने के लिए थूकता है और मुख सम्बंधी क्रियाओं और दोस्तों के प्रति अपनी अप्रसन्नता या दुर्भावनाओं को प्रकट करता है। जैसे बच्चे का दूध पीने से इंकार करना या कोई विशेष प्रकार के भोजन को न करना।

(iii) **गुदा मनोग्रंथियां**– हेनरी मरे के अनुसार जब बच्चा बार-बार मल त्यागता है तो उसे एक प्रकार की सुखानुभूति होती है। इसको मरे ने गुदा अस्वीकरण मनोग्रंथि कहा है। जब बच्चा मल त्याग को रोकता है और शीघ्र मल त्याग नहीं करता तो इस प्रवृत्ति को गुदा अवरोध मनोग्रंथि माना।

(iv) **मूत्रमार्गीय मनोग्रंथि**– इस मनोग्रंथि में बालक य व्यक्ति को मूत्र त्याग करते समय एक विशेष प्रकार के सुख की अनुभूति होती है। कुछ बच्चे बिस्तर पर ही मूत्र त्याग करते है। ऐसा करने से उसे सुख मिलता है। यह भी मूत्रमार्गीय मनोग्रंथि का एक रूप है।

(v) **बधियाकरण मनोग्रंथि**– हेनरी मरे ने फ्रायडवादियों की तरह बधियाकरण मनोग्रंथि को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। उनका कहना है कि बधियाकरण मनोग्रंथि की व्याख्या उसके शाब्दिक अर्थों तक ही सीमित रखनी चाहिए। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चे की कल्पना में यह बात आती है कि उसका लिंग काट दिया जा सकता है तो उसके फलस्वरूप उसके मन में एक चिंता उत्पन्न होती है। परन्तु इस दुश्चिन्ता को सभी प्रकार के मनस्तंत्रिका तापी मनोविकार का कारण ही मान सकते है।

6.6.2 संस्कृति का प्रभाव

व्यक्तित्व के विकास पर हेनरी मरे ने इस बात को स्पष्ट किया कि इस पर जैविक निर्धारण के साथ-साथ सांस्कृतिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्धारकों का भी प्रभाव पड़ता है। डॉ. जायसवाल के अनुसार हेनरी मरे ने स्पष्ट किया कि प्रत्येक व्यक्ति—

1. सभी व्यक्तियों के समान है।,
2. कुछ-कुछ व्यक्तियों के समान है।,
3. कुछ व्यक्तियों के समान है।,
4. किसी के समान नहीं है।

जब व्यक्ति में विभिन्न जैविक और सांस्कृतिक निर्धारकों में समानताएं पाई जाती है तो वह सभी व्यक्तियों के समान होता है। कई समाजों व संस्कृतियों में कुछ ऐसे तत्व अवश्य होते है जो सभी संस्कृतियों में उभयनिष्ट (Common) होते हैं। इसी प्रकार जीवन विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य में मनोशरीरीय रचना में अनेक तत्व समान पाए जाते हैं। मरे ने अपनी दूसरी बात में यह माना कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ व्यक्तियों के समान है, इस तथ्य में उन्होंने व्यक्ति में पाए जाने वाले उन गुणों का जिक्र किया है जिनका सम्बंध एक संस्कृति से होता है। एक संस्कृति में रहने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में कुछ समान गुण पाए जाते हैं। जैसे कि एक भारतीय के व्यक्तित्व में भारतीयता के कुछ उभयनिष्ठ गुण पाए जाएंगे जो भारतीय संस्कृति की देन है। इसी तरह दूसरे देशवासियों जैसे जर्मनी के लोगों में कुछ ऐसे उभयनिष्ठ लक्षण पाए जाएंगे जो जर्मन संस्कृति की देन है। अपनी तीसरी बात में मरे ये कहते है कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के समान नहीं होता। इसका तात्पर्य व्यक्तित्व की अनन्यता (uniqueness) से है। व्यक्तित्व की अनन्यता जैविक व सांस्कृतिक दोनों कारणों से, लिंग और आयु, शरीर की बनावट, वर्ण आदि के कारण से होती है। इसके अतिरिक्त शारीरिक शक्ति की सीमा अधिगम की क्षमता, निराशा और कुंठाओं को बर्दाश्त करने की सीमा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है। ये कारण भी व्यक्ति की अनन्यता निर्धारित करने में सहायक होते है।

6.6.3 समाजीकरण

हेनरी मरे के अनुसार मनुष्य की समाजीकरण की प्रक्रिया अपने परिवार में शैशव काल से ही प्रारम्भ हो जाती है। नवजात शिशु को परिवार के सदस्य सिखाना प्रारम्भ कर देते हैं। अत: समाजीकरण में परिवार और उसके सदस्यों की एक अहम भूमिका होती है। इस स्तर पर व्यक्ति अपने पर नियंत्रण, अपने व्यवहार में संशोधन, बांछनीय व अवांछनीय आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण, अवांछनीय वस्तुओं अथवा व्यक्ति से संबंध न रखना, सभी काम समय पर करना सीख जाता है। इनके अतिरिक्त समाज के प्रचलित नियमों, विधियों एवं रिवाजों के अनुसार भी चलना सीख जाता हैं।

बच्चा जब बड़ा होता है तब परिवार से निकलकर पास-पड़ोस तथा विद्यालय में जाता है, वहां पर भी उसका समाजीकरण होता रहता है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति का शारीरिक विकास एवं आयु वृद्धि होती है, त्यों-त्यों वह अपनी जैविक एवं सांस्कृतिक निर्धारकों से समाजीकरण सीखता रहता है।

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हेनरी मरे की व्यक्तित्व परिभाषा देते हुए उनके द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व संरचना की संकल्पनाओं की व्याख्या करें।
2. हेनरी मरे द्वारा प्रस्तुत आवश्यकता सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व मनोविज्ञान : डॉ. सीताराम जायसवाल
2. व्यवहारिक मनोविज्ञान : डॉ. आर. के ओझा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7 : मास्लो का मानवीय सिद्धान्त

संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 मास्लो का प्रेरणा का पदानुक्रम सिद्धान्त

7.2.1 जैविक या दैहिक आवश्कताएं

7.2.2 सुरक्षा की आवश्कताएं

7.2.3 सन्बन्धता एवं प्रेम की आवश्कता

7.2.4 आत्म समान एवं प्रतिष्ठा की आवश्कता

7.2.5 ज्ञानात्मक आवश्कताएं

7.2.6 सौन्दर्यपरक आवश्कताएं

7.2.7 स्व-वास्तवीकरण या आत्म-सिद्धि की आवश्कता

7.2.8 भावातीत होने या आध्यात्मिकता की आवश्कता

7.3 दोषपूर्ण अभिप्रेरणा तथा अभिवृद्धि अभिप्रेरणा

7.4 मानवीय प्रकृति से सम्बन्धित मास्लो की प्राथमिक अवधारणाएं

7.4.1 स्वतंत्रवाद–निश्चयवाद

7.4.2 युक्तियुक्तता–अयुक्तियुक्तता

7.4.3 पूर्णवाद–तत्त्ववाद

7.4.4 संरचनावाद–परिवेशवाद

7.4.5 परिवर्तनशीलता–अपरिवर्तनशीलता

7.4.6 आत्मनिष्ठता–वस्तुनिष्ठता

7.4.7 अग्रोन्मुखता–पृष्ठोन्मुखता

7.4.8 समस्थिति–विषमस्थिति

7.4.9 ज्ञातव्यता–अज्ञातव्यता

7.5 स्व-वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि

7.5.1 क्या स्ववास्तवीकरण सत्य है?

7.5.2 आत्मसिद्धि या वास्तवीकरण का मापन

7.5.3 स्व-वास्तवीकरणात्मक या आत्मसिद्धि व्यक्तियों की विशेषताएं

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.0 प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्तित्व अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। बीसवीं शताब्दी में व्यक्तित्व अध्ययन सम्बन्धी विचार, तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के रूप में सामने आये। पहला फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त से मूल प्रवृत्तियों एवं द्वंद्वों के आधार पर मानव प्रकृति की व्याख्या की जाती है। दूसरा व्यवहारवाद का सिद्धान्त है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या बाह्य उद्दीपकों के सम्बन्ध में की जाती है। तीसरा विचार या सिद्धान्त मानवतावाद का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मनोविज्ञान जगत् में व्यक्तित्व सिद्धान्तों की तीसरी शक्ति भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त की व्याख्या अन्य सिद्धान्तों से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार से की गई है। इस सिद्धान्त में विशेष रूप से यह माना जाता है कि व्यक्ति मूल रूप में अच्छा एवं आदरणीय होता है और यदि उसकी परिवेशीय दशाएं अनुकूल हों तो वह अपने शीलगुणों का सकारात्मक विकास करता है। यह सिद्धान्त वैयक्तिक विकास, स्व का परिमार्जन, अभिवृद्धि, व्यक्ति के मूल्यों एवं अर्थों की व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक अब्राहम मास्लो थे। मास्लो का जन्म रूढ़िवादी जैविस परिवार में न्यूयार्क में हुआ। उन्होंने कोलम्बिया

विश्वविद्यालय से सन् 1934 में मनोविज्ञान विषय में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। मानवतावादी नामक इस सिद्धान्त के विकास में अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का भी योगदान है। अस्तित्ववाद एवं मानवतावाद दोनों व्यक्ति की मानवीय चेतना, आत्मगत अनुभूतियां एवं उमंग तथा व्यक्तिगत अनुभवों की व्याख्या करते हैं और उसे विश्व से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। मास्लो के इस सिद्धान्त में यह धारणा है कि अभिप्रेरणाएं समग्र रूप से मनुष्य को प्रभावित करती है। इसी धारणा के आधार पर मास्लो ने प्रेरणा के पदानुक्रम सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

मानवतावादी सिद्धान्त के मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार एवं पशु व्यवहार में सापेक्ष अंतर माना है। ये व्यवहारवाद का इसलिए खण्डन करते हैं कि व्यवहारवाद का प्रारम्भ ही पशु व्यवहार से होता है। मास्लो एवं उनके साथियों ने मानव व्यवहार को सभी प्रकार के पशु व्यवहारों से भिन्न माना। इसलिए उन्होंने पशु व्यवहार की मानव व्यवहार के साथ की समानता को अस्वीकार किया। उन्होंने मानव व्यवहार को समझने के लिए पशुओं पर किये जाने वाले शोध कार्यों का खण्डन किया क्योंकि पशुओं में मानवोचित गुण जैसे आदर्श, मूल्य, प्रेम, लज्जा, कला, उत्साह, रोना, हंसना, ईर्ष्या, सम्मान तथा समानता नहीं पाये जाते। इन गुणों का विकास पशुओं में नहीं होता और विशेष मस्तिष्कीय कार्य जैसे कविता, गीत, कला, गणित आदि कार्य नहीं कर सकते।

मानवतावादियों ने मानवीय व्यवहार की व्याख्या में मानव के अंतरंग स्वरूप पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार व्यक्ति का एक अंतरंग रूप है जो कुछ मात्रा में उसके लिए स्वाभाविक, स्थाई तथा अपरिवर्तनशील है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मानव की सृजनात्मक क्रियाओं को विशिष्ट क्रियाएं माना है। मास्लो तथा अन्य मानवतावादियों का यह विचार है कि अन्य सिद्धान्तों में मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करने में किसी ऐसे पक्ष का वर्णन नहीं किया, जो पूर्ण स्वस्थ मानव के प्रकार्य, जीवन पद्धति और लक्ष्यों का वर्णन कर सके। मास्लो का यह विश्वास था कि मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन किए बिना व्यक्ति की मानसिक दुर्बलताओं का अध्ययन करना बेकार है। मास्लो (1970) ने कहा कि केवल असामान्य, अविकसितों, विकलांगों तथा अस्वस्थों का अध्ययन करना केवल 'विकलांग' मनोविज्ञान को जन्म देना है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ एवं स्व-वास्तवीकृत व्यक्तियों के अध्ययन पर अधिक बल दिया। अत: मानवतावादी मनोविज्ञान में 'आत्मपरिपूर्ण (Self-fulfillment) को मानव जीवन का मूल्य माना है।

7.1 उद्देश्य (Objectives)

1. मास्लो के प्रेरणा का पदानुक्रम सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
2. भावातीत होने या आध्यात्मिकता के संप्रत्यय को समझ सकेंगे।
3. दोषपूर्ण अभिप्रेरणा तथा अभिवृद्धि अभिप्रेरणा को समझ सकेंगे।
4. स्व-वास्तवीकरणात्मक या आत्मसिद्धि व्यक्तियों की विशेषताओं को जान सकेंगे।

7.2 मास्लो का प्रेरणा का पदानुक्रम सिद्धान्त (Maslow's Hierarchical Theory of Motivation)

मास्लो के प्रेरणा के पदानुक्रम सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए उसकी प्रवृत्तियों को समझना आवश्यक है। मास्लो ने सन् 1954 में अपनी पुस्तक 'अभिप्रेरणा एवं व्यक्तित्व' (Motivation and Personality) में अभिप्रेरणा की व्याख्या करते हुए व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार अभिप्रेरणा का कोई न कोई मूल्य होता है जिससे मानव व्यवहार लक्ष्योन्मुख होता है। मनुष्य को अपने जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति करने एवं व्यक्तित्व का समायोजन बनाने के लिए उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। जिम्बार्डो (1989) के अनुसार मास्लो ने मनुष्य की मूलभूत जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं तथा लक्ष्य-प्राप्ति की आवश्यकताओं को 8 सोपानों में रखा है। जब व्यक्ति अपनी मूलभूत जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति सुचारू रूप से नहीं कर पाता तब उसको मानसिक संताप, तनाव, दु:श्चिन्ता, कुण्ठा आदि से ग्रसित होने की संभावना बढ़ जाती है जो उसके व्यक्तित्व विकास में बाधक होती हैं। मास्लो द्वारा उद्धृत इन सोपानों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है:

1. शारीरिक या दैहिक आवश्यकताएं (Biological or Physiological Needs)
2. सुरक्षा आवश्यकताएं (Safety Needs)
3. सम्बद्धता एवं प्रेम की आवश्यकता (Belongingness and Love or Attachement Needs)
4. प्रतिष्ठा आवश्यकताएं (Esteem Needs)
5. ज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive Needs)
6. सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं (Esthetic Needs)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7. आत्मसात या आत्मसिद्ध आवश्यकता (Self-actualization Needs)

8. भावातीत होने की आवश्यकता (Transcendence Needs)

7.2.1 जैविक या दैहिक आवश्यकताएं (Biological or Physiological needs)

मनुष्य की आवश्यकताओं में प्रमुख आवश्यकताएं देह स्तर की या जैविक स्तर की हैं। इन आवश्यकताओं में मुख्य रूप से भूख, प्यास, नींद, प्राणवायु, यौन, विश्राम, तनावमुक्ति एवं तीव्र तापमान से बचाव की आवश्यकताएं प्रमुख हैं। व्यक्ति इन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभिप्रेरित होता है। ये आवश्यकताएं दैहिक निरन्तरता को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक हैं। उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पहले इन आवश्यकताओं की पूर्ति या संतुष्टि होना आवश्यक है। यदि ये आवश्यकताएं पूर्ण नहीं हो पाती तो उच्च स्तरीय आवश्यकताओं पर हावी होकर उन्हें भी पूरा नहीं होने देतीं। दैहिक आवश्यकताएं मानव व्यवहार को समझने के लिए आवश्यक हैं और निःसंदेह ये मानवीय इच्छाओं पर अधिपत्य करती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए व्यक्ति आवश्यकताओं के अनुकूल व्यवहार करता है। मास्लो के अनुसार ये आवश्यकताएं जन्मजात हैं न कि सिखी हुई। इन इच्छाओं की पूर्ति और संतुष्टि होने पर व्यक्ति दूसरी आरोही क्रम की आवश्यकता में प्रवेश करता है।

7.2.2 सुरक्षा की आवश्यकताएं (Safety Needs)

व्यक्ति की जब जैविक आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं तब वह सुरक्षा की आवश्यकताओं के बारे में सोचने लगता है। वह अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील होता है। ये प्राथमिक आवश्यकता परिवेश में निश्चयात्मक क्रम, संरचना एवं भविष्य कथनात्मक की भावना का निर्धारण करती है। इस प्रकार की आवश्यकता सर्वाधिक बच्चों में देखी जाती है। क्योंकि वे असहाय होते हैं तथा वयस्कों पर आश्रित रहते हैं। यदि उन्हें पूर्ण रूप से सुरक्षा न मिले तो उनमें भय और अनिश्चितता पैदा हो जाती हैं। सुरक्षा की आवश्यकता का क्रम बाल्यकाल के उपरान्त भी सक्रिय रहता है परन्तु उसकी दिशा में परिवर्तन हो जाता

मास्लो द्वारा प्रस्तुत आवश्यकताओं के सोपान

TRANSCENDENCE/ भावातीत आवश्यकताएं Spiritual needs for 8 cosmic identification/ आध्यात्मिक होने की आवश्यकता	8
SELF-ACTUALIZATION/ आत्मसात आवश्यकताएं Needs to fulfil potential have meaningful goal / महत्त्वपूर्ण या अर्थपूर्ण उद्देश्य के प्राप्त करने की आवश्यकता	7
ESTHETIC NEEDS / सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं Needs for order, beauty / न्याय, सत्य, अच्छाई और सौन्दर्य के आकांक्षी	6
COGNTIVE NEEDS / ज्ञानात्मक आवश्यकताएं Needs for knowledge, under standing, novelty / ज्ञान प्राप्ति की, समझ बढ़ाने की आवश्यकता	5
ESTEEM NEEDS / आत्मसम्मान या प्रतिष्ठा की आवश्यकता Needs for confidence, sense of worth and competence, self esteem and respect of others आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, दूसरों से सम्मान	4
ATTACHMENT NEEDS / सम्बर्द्धन आवश्यकताएं Needs to belong, to affiliate, to love and be loved/ सम्बर्द्धन एवं प्रेम की आवश्यकताएं	3
SAFETY NEEDS/ सुरक्षा आवश्यकताएं Needs for security, comfort, tranquility freedom from fear / सुरक्षा, आराम, शांति, भय से मुक्ति	2
BIOLOGICAL NEEDS / दैहिक आवश्यकताएं Needs for food, water, oxygen, rest sexual expression release from tension भोजन, पानी, हवा, विश्राम, यौन, तनाव मुक्ति	1

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। सुरक्षा की आवश्यकता का संकेत बालक द्वारा परिवेश में किए जाने वाले विभिन्न व्यवहारों से मिलता है। ऐसे परिवेश में जहां वे अपने आपको असुरक्षित महसूस करते हैं तब वे दूसरे परिवेश या वातावरण की खोज करते हैं जिनमें अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते हैं। जिन परिवारों में संतानों के प्रति अनुज्ञात्मक या बंधात्मक व्यवहार होता है उनकी संतानों में सुरक्षा की आवश्यकता की कभी पूर्ति नहीं हो पाती, परिवार में माता-पिता के परस्पर कलहपूर्ण व्यवहार, दैहिक आक्षेप, तलाक या माता-पिता में से किसी एक की मृत्यु से भी बालक की सुरक्षा आवश्यकता पर प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त कारक बालक के परिवेश को असुरक्षित व अस्थिर बनाते हैं। बाल्यकाल के उपरान्त व्यक्ति जो सुरक्षा चाहता है वे हैं—आर्थिक सुरक्षा, बचत, सही भवन का निर्माण, चोरी-डकैती से सुरक्षा एवं भयमुक्त आदि। सुरक्षा की आवश्यकता की अनुभूति व्यक्ति को युद्ध, अपराध, बाढ़, भूकंप और दंगों आदि में स्पष्ट रूप से होती है। इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यक्ति को वस्त्र, भवन और अन्य साथियों की आवश्यकता रहती है। मास्लो ने इस प्रकार की आवश्यकता को मनोस्नायु विकृत एवं मनोग्रस्तता बाध्यता के रोगियों में भी पाया।

7.2.3 सम्बन्धता एवं प्रेम की आवश्यकता (Needs of Love and Belongingness or Attachment)

आवश्यकताओं के तीसरे सोपान पर मास्लो ने सम्बन्धता तथा प्रेम की आवश्यकता को रखा है। जब व्यक्ति की शारीरिक एवं भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगती है तब इसी के साथ वह प्रेम, स्नेह और सम्बन्धों की आवश्यकताओं को अनुभव करने लगता है। वह दूसरों से स्नेह और प्रेम पाना चाहता है एवं दूसरों को स्नेह और प्रेम देना भी चाहता है। व्यक्ति का लक्ष्य समूह की सदस्यता को प्राप्त करने का हो जाता है। वह समाज से जुड़कर प्रेम और स्नेह प्राप्त करना और देना चाहता है। इस आवश्यकता की पूर्ति न होने पर व्यक्ति में अकेलेपन की कसक, सामाजिक निर्वासन एवं तिरस्कार की अनुभूति होती है। विशेष रूप से उस समय जब व्यक्ति के पास मित्रों, परिजनों तथा संतानों का अभाव रहता हो। मास्लो ने इस आवश्यकता की कमी का प्रभाव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव को सह-सम्बन्धित किया और पाया कि सामाजिक गतिशीलता और औद्योगीकरण के फलस्वरूप इस आवश्यकता की कमी अनुभव होती जा रही है। पारिवारिक विघटन भी इस आवश्यकता का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। मास्लो फ्रायड के इस विचार से सहमत नहीं थे कि प्रेम व स्नेह का जन्म लैंगिक मूल प्रवृत्तियों द्वारा होता है। उनके अनुसार स्नेह और प्रेम में परस्पर आदर, प्रशंसा तथा विश्वास के भाव निहित होते हैं।

7.2.4 आत्म-सम्मान या प्रतिष्ठा की आवश्यकता (Self-Esteem Needs)

व्यक्ति में दैहिक, सुरक्षात्मक तथा सम्बन्धनशीलता और प्रेम की आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर आत्म सम्मान एवं प्रतिष्ठा की आवश्यकता का जन्म होता है। इस सोपान पर व्यक्ति आदर और सम्मान की आवश्यकता का अनुभव करता है। इस आवश्यकता को मास्लो ने दो शक्तियों के रूप में व्यक्त किया है—1. आत्म सम्मान (Self-respect), 2. अन्य लोगों से प्राप्त सम्मान (Respect from others)

प्रथम रूप की इच्छा में व्यक्ति में स्पर्धा की इच्छा, विश्वास, वैयक्तिक शक्ति की उपयुक्तता, निष्पत्ति तथा स्वतंत्रता जैसे मूल्य होते हैं। इसमें व्यक्ति यह अनुभव करना चाहता है कि उसकी क्षमता कैसी है, वह कैसे कार्यों को कर सकता है तथा जीवन की चुनौतियों को कैसे स्वीकार कर सकता है जिससे कि उसका आत्मसम्मान बढ़ सके।

दूसरे रूप की आवश्यकता में दूसरों से प्राप्त प्रतिष्ठा, दूसरों से अनुमोदन, अवधान, अपना पद और प्रसिद्धि आदि शामिल हैं। अच्छा कार्य करने के उपरान्त व्यक्ति प्रतिष्ठा पाने की इच्छा करता है। अर्थात् वह यह इच्छा करता है कि उसने जो अच्छा कार्य किया है उसकी प्रशंसा होनी चाहिए। मास्लो के अनुसार प्रतिष्ठा एवं आत्म-सम्मान की आवश्यकता, सम्बन्ध व प्रेम आवश्यकताओं के उपरान्त उपस्थित होती है। अर्थात् तृतीय सोपान की आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद चतुर्थ सोपान की आवश्यकताएं पैदा होती हैं परन्तु यदि तृतीय स्तर या सोपान (सम्बन्धता व प्रेम) की संतुष्टि की सीमा खतरे में पड़ जाती है तो व्यक्ति चौथा स्तर या सोपान छोड़कर तीसरे स्तर की आवश्यकताओं (प्रेम और सम्बन्धता) की संतुष्टि करने लगता है।

आत्म प्रतिष्ठा या आत्म संतुष्टि व्यक्ति को आत्म-योग्यता, आत्म-विश्वास, शक्ति-योग्यता और प्रशंसा में अपनी उपयोगिता की अनुभूति व अभिवृत्ति प्रदान करती है जो उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है। इसके विपरीत यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति न हो तो व्यक्ति में हीनता, दुर्बलता, असहायता तथा विसंगति जैसी अभिवृत्तियों का विकास हो जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व विकास में निषेधात्मक स्व-प्रत्यक्षीकरण, निरुत्साह, असहाय तथा स्वयं और समाज को हीन समझने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.2.5 ज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive Needs)

जिम्बार्डो (1985) के अनुसार मास्लो ने आवश्यकताओं की पदानुक्रम संख्या पांच पर इस आवश्यकता को रखा। जब व्यक्ति में उपरोक्त चारों पदों की आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती है तब व्यक्ति ज्ञानात्मक आवश्यकताओं की ओर बढ़ता है। इसमें ज्ञान प्राप्त करने की, दूसरों को समझने की और नयापन प्राप्त करने की इच्छा बढ़ जाती है। वह दूसरों को समझने की कोशिश करता है, ज्ञान के उच्च स्तर पर वह अपना और दूसरी घटनाओं का विश्लेषण करना चाहता है।

7.2.6 सौन्दर्यपरक आवश्यकताएं (Esthetic Needs)

इस पदानुक्रम की आवश्यकता में व्यक्ति में प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्यता के प्रति समर्पित होने की इच्छा होती है। वह समाज के विकास और अच्छाई के लिए समर्पित होता है। वे आर्थिक सुरक्षा, प्रशंसा-स्तर, प्रतिष्ठा एवं पौरुष की अपेक्षा न्याय, सत्य, अच्छाई व सौन्दर्य आदि के आकांक्षी होते हैं। ये आवश्यकताएं परा-अभिप्रेरित या परा-आवश्यकताओं या संभवन की प्रेरणा (Meta Needs or B' Needs) में आती हैं।

7.2.7 स्व-वास्तवीकरण या आत्म-सिद्धि की आवश्यकता (Self-actualization Needs)

जब व्यक्ति की उपरोक्त छः सोपानों की आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं तब उसमें आत्म-सिद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता पैदा हो जाती है। इस प्रकार की आवश्यकता को परिभाषित करते हुए मास्लो ने कहा कि स्व-वास्तवीकरण या आत्म-सिद्धि की विशेषता व्यक्ति की सर्वोत्तम इच्छा को अभिव्यक्त करती है। यह आवश्यकता उसके द्वारा अर्जित विशिष्ट गुणों तथा विशेषताओं से होती है। यह इच्छा व्यक्ति को वह बनाती है जो वह बनना चहता है। इस इच्छा से व्यक्ति अपना सुधार करने का प्रयत्न करता है। इस आवश्यकता में व्यक्ति अपना अर्थपूर्ण उद्देश्य बनाता है और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, अपनी क्षमताओं को आंकता है।

7.2.8 भावातीत होने या आध्यात्मिकता की आवश्यकता (Transcendence Needs)

मास्लो के अनुसार जब व्यक्ति की आत्म-सिद्धि की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है तब उसमें आध्यात्मिक आवश्यकता उत्पन्न होती है। वह प्रकृति के बहुत निकट होना चाहता है। वह परमात्मा से साक्षीभूत होना चाहता है, प्रकृति के रहस्यों को समझना चाहता है। वह समाधिस्थ होना चाहता है। वह परम शांति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस आवश्यकता प्राप्ति में पूर्वलिखित सभी आवश्यकता गौण हो जाती हैं। इस स्थिति में व्यक्ति अपने चेतना स्तर को विस्तृत करना चाहता है, विश्व या ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझना चाहता है। इस तरह व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए मास्लो ने आवश्यकताओं की उक्त आठ सीढ़ियां बताई हैं। क्रमशः प्रत्येक सीढ़ी या सोपान की आवश्यकता को पूर्ण करता हुआ व्यक्ति अगली सीढ़ी की आवश्यकता को प्राप्त करता है। यह उसके व्यक्तित्व विकास का क्रम भी है। मास्लो के अनुसार प्रत्येक सीढ़ी-क्रम या सोपान की आवश्यकताएं जन्मजात हैं न कि सीखी हुई। इनका प्राकट्यकरण व्यक्ति के परिवार और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार होता है। इन आवश्यकताओं का दमन होना, इनकी पूर्ति न होना या इनका कुंठित हो जाना व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के लिए प्रेम की आवश्यकताओं के कुंठित हो जाने पर व्यक्ति में आक्रामक एवं यौन विकृति का व्यवहार पैदा हो जाता है।

7.3 दोषपूर्ण अभिप्रेरणा तथा अभिवृद्धि अभिप्रेरणा (Deficient Motivation and Growth Motivation)

मास्लो ने अभिप्रेरणा के क्रमबद्ध सोपानों को प्रस्तुत करने के साथ ही उन्हें मुख्य दो भागों में बांट दिया। ये दो भाग हैं: दोषपूर्ण अभिप्रेरणायें (Deficient Motives or D' Motives) तथा अभिवृद्धि प्रेरणायें (Growth motives)। अभिवृद्धि प्रेरणाओं को मास्लो ने परा-आवश्यकताएं या संभव की प्रेरणा (Meta Needs or Being or B. Needs) के रूप में परिभाषित किया है।

दोषपूर्ण अभिप्रेरणाओं में मास्लो ने सोपान अनुक्रम की निचली सतह का वर्णन किया है जैसे शारीरिक या जैविक आवश्यकता जिसमें भूख, प्यास और यौन की मुख्य आवश्यकता रहती हैं। इसी तरह सुरक्षा आवश्यकता तथा सम्बन्धन एवं प्रेम आवश्यकताओं का वर्णन किया है। मास्लो ने दोषयुक्त अभिप्रेरणा के पांच आधारों का उल्लेख किया है, ये आधार हैं—

1. इन अभिप्रेरणाओं की अनुपस्थिति में व्यक्ति अस्वस्थ होता है। यदि किसी को भूख-प्यास न लगे तो वह अस्वस्थ हो जाता है।
2. इनकी उपस्थिति व्यक्ति का अस्वस्थता से बचाव करती है। यदि किसी को ठीक से भूख-प्यास लगे तो उसके अस्वस्थ होने की कम संभावना रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. इन अभिप्रेरणाओं के अस्वस्थताओं की आपसी चिकित्सा है, जैसे भुखमरी की सर्वोत्तम चिकित्सा भोजन करना है।
4. स्वस्थ व्यक्ति में ये अभिप्रेरणाएं निष्क्रिय या प्रकार्यात्मक रूप से अनुपस्थित रहती हैं। (जैसे स्वस्थ व्यक्ति को हर समय भूख का अनुभव नहीं होता।)
5. व्यक्ति प्राथमिक आवश्यकताओं की वरीयता में कुछ वैकल्पिक दशाओं में फेरबदल या बदलाव कर सकते हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति प्यासा है तो भोजन की अपेक्षा पानी को अधिक महत्त्व देगा और फिर भोजन करेगा। इसी तरह यदि कोई भूखा है तो लैंगिकता की अपेक्षा भोजन को महत्त्व देगा और भोजन कर चुकने के बाद लैंगिकता की ओर उन्मुख होगा।

अभिवृद्धि प्रेरणाओं (Growth motive), जिनको मास्लो ने परा-आवश्यकताएं या संभवन की प्रेरणा (Meta Needs or Being or `B' Needs) के रूप में परिभाषित किया है, का उद्देश्य व्यक्ति में उसके अनुभवों की वृद्धि करना ताकि उसे जीवन में आनन्द मिल सके। यद्यपि ये प्रेरणायें दोषयुक्त अभिप्रेरणाओं का परिमार्जन नहीं करती तथापि ये वास्तविक आनन्द से परिचित कराती हैं। मास्लो ने अभिवृद्धि प्रेरणाओं को दोषयुक्त अभिप्रेरणाओं के समान ही व्यक्ति में पाया। परा-अभिप्रेरित लोग सत्य, न्यायप्रिय, सौन्दर्य, परिपूर्णता, प्रकृति के निकट, अच्छाई के लिए समर्पित रहते हैं। वे प्रशंसा, प्रतिष्ठा, आर्थिक सुरक्षा, प्रभुत्व व पौरुष की अपेक्षा न्याय, सत्य, अच्छाई आदि के आकांक्षी होते हैं। वे व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त, सत्यप्रिय तथा गुणान्वेषी होते हैं।

7.4 मानवीय प्रकृति से सम्बन्धित मास्लो की प्राथमिक अवधारणाएं (Maslow's basic assumptions of human nature)

मास्लो ने मानव प्रकृति का अध्ययन करने सम्बन्धी नौ अवधारणाओं का निर्माण किया। ये हैं—

1. स्वतंत्रवाद-निश्चयवाद (Freedom- Determinism)
2. युक्तियुक्तता-अयुक्तियुक्तता (Rationality-Irrationality)
3. पूर्णवाद-तत्त्ववाद (Holism-Elementalism)
4. संरचनावाद-परिवेशवाद (Constitutionlism-Environmentalism)
5. परिवर्तनशीलता-अपरिवर्तनशीलता (Changeability-Unchangeability)
6. आत्मनिष्ठता-वस्तुनिष्ठता (Subjectivity-Objectivity)
7. अग्रोन्मुखता-पृष्ठोन्मुखता (Proactivity-Reactivity)
8. समस्थिति-विषमस्थिति (Homeostasis-Heterostasis)
9. ज्ञातव्यता-अज्ञातव्यता (Knowability-Unknowability)

7.4.1 स्वतंत्रतावाद-निश्चयवाद (Freedom-determinism)

मास्लो की इस अवधारणा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होता है तथा अपने कार्य हेतु स्वयं जिम्मेदार होता है। वह स्वयं यह निश्चित करता है कि उसके गुण क्या हैं तथा उनका प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। इस तरह वह अपने कार्य के लिए स्वतंत्र और गुणों के प्रति निश्चित रहता है। मास्लो के अनुसार व्यक्ति की आयु में वृद्धि के अनुसार ही आवश्यकता स्तर की मात्रा में भी वृद्धि हो जाती है। व्यक्ति आयु की वृद्धि के साथ ही दोषपूर्ण आवश्यकताओं का दमन सीख जाता है तथा अपनी नियति का निर्माण करता है। यह गुण स्व-आत्मीकरण या आत्मसिद्धि के विकास हेतु भी आवश्यक है।

7.4.2 युक्तियुक्तता-अयुक्तियुक्तता (Rationality-Irrationality)

जैसा कि पूर्व में लिखा गया है कि मास्लो ने पशुओं पर किये जाने वाले शोध कार्यों को मानव व्यवहार से जोड़ने को असंगत माना है। इसका मुख्य कारण यह था कि पशु न तो तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार कर सकते हैं और न ही पुन: स्मरण। पशु संज्ञानात्मक रूप से कार्यक्रम निर्धारित नहीं कर सकते जबकि मानव में दिनचर्या का कार्यक्रम उसका प्रमुख भाग है। मास्लो का उद्देश्य एक तर्कशील मानव का अध्ययन करना है जो अपने निर्णय स्वयं लेता है तथा अपने गुणों का प्रयोग मौलिक रूप से करता है।

7.4.3 पूर्णवाद-तत्त्ववाद (Holism-Elementalism)

इस अवधारणा में मास्लो एक ऐसे व्यक्ति की व्याख्या करते हैं जो दैहिक सुरक्षा तथा आत्म-सम्मान सम्बन्धी गुणों का विकास करता है और इससे ही ऊपर उठकर आत्मसिद्धि के गुणों का विकास करता है। मास्लो के इस मतानुसार व्यक्ति को पूर्ण मानकर ही अध्ययन किया जा सकता है, तत्त्व रूप में नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.4.4 संरचनावाद–परिवेशवाद (Constitutionlism-Environmentalism)

इस अवधारणा में मास्लो ने दैहिक आवश्यकताओं को संरचनावाद का मौलिक अंग मानते हुए उसे अधिक महत्त्व दिया है क्योंकि यह सम्पूर्ण आवश्यकताओं के सोपानों के अनुक्रम का प्राथमिक अंग है। आत्मसिद्धि की व्याख्या भी उन्होंने प्रणोदन के रूप में तथा जन्मजात भी माना।

7.4.5 परिवर्तनशीलता–अपरिवर्तनशीलता (Changeability-Unchangeability)

इस अभिकल्पना के अनुसार मास्लो के सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु यह है कि व्यक्ति अपनी अभिवृद्धि हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। आवश्यकताओं के अनुक्रम में उन्होंने आत्मसिद्धि या आत्मसात तथा भावातीत होने की आवश्यकता को शीर्षस्थ स्थान दिया। उनके अनुसार मानव जीवन में स्वतंत्रता तथा अभिवृद्धि एक साथ अंतर्क्रिया करते हैं तथा मानव जीवन में आने वाले परिवर्तन के समय के साथ सुधार होता रहता है अर्थात् जैसे-जैसे व्यक्ति आवश्यकता के सोपानों में प्रगति करता रहता है वैसे-वैसे वह अपनी विशिष्टताओं की दिशा का निर्धारण करने में स्वतंत्र हो जाता है। दिशाओं के निर्माण और अनुसरण के साथ ही व्यक्ति में परिवर्तन हो जाता है। मास्लो के अनुसार व्यक्ति को यह स्वतंत्रता है कि वह जैसा चाहे अपना निर्माण कर सकता है। अपनी आकांक्षा के अनुसार ही वह अपनी कार्य की दिशा का निर्धारण कर सकता है। उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन भी दिशा–निर्धारण के आधार पर ही होगा। ये परिवर्तन विशिष्टताओं एवं आत्मसिद्धि के उपरान्त ही होता है जो जन्मजात भी हो सकती है। व्यक्ति अपने दोषपूर्ण अभिप्रेरणाओं (D-Motive) से अभिवृद्धि प्रेरणाओं (B-Motives) के बीच भ्रमण करते हुए निरन्तर अपने विकल्पों में परिवर्तन करता रहता है तथा प्रक्रियाओं में भी परिवर्तन करता रहता है। अभिवृद्धि प्रेरणाओं की प्राप्ति होने पर भी वह दोषपूर्ण प्रेरणाओं की आवश्यकताएं पूर्ण कर सकता है।

7.4.6 आत्मनिष्ठता–वस्तुनिष्ठता (Subjectivity-Objectivity)

इस अवधारणा के अनुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए उसके वैयक्तिक विषयों को समझना आवश्यक है। इसमें उन्होंने प्रेक्षित व्यवहार की अपेक्षा आत्मगत व्यवहार को अधिक महत्त्व दिया है। मास्लो ने 'स्व–वास्तवीकरण' के माध्यम से स्व के आत्मगत पक्ष का निरूपण किया है। मानवतावादी मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति एक विशिष्ट स्व को वास्तवीकृत करने का कार्य करता है, जिसको केवल वही प्रत्यक्षीकृत व मूल्यांकित करता है।

7.4.7 अग्रोन्मुखता–पृष्ठोन्मुखता (Proactivity-Reactivity)

मास्लो (1970) ने अपनी इस अवधारणा में व्यक्ति के अग्रगामी विचारों को स्वीकार किया है। उनके अनुसार व्यक्ति बाह्य उद्दीपक के लिए प्रतिक्रिया नहीं करता बल्कि अपनी आवश्यकताओं की दशाओं की संतुष्टि के लिए कार्य करता है। यह आवश्यकता ही उसके व्यवहार को उत्पन्न करती है। अपनी इस अवधारणा में अग्रगामिता को आत्मसिद्धि के प्रत्यय में स्वीकार किया है। क्योंकि आत्मसिद्धि वास्तव में एक अग्रोन्मुख प्रत्यय है। इसके लिए किसी बाहरी उद्दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती। व्यक्ति, भविष्योन्मुखता के लिए अपने गुणों से परिचय तथा उनके क्रियान्वयन हेतु निरन्तर संघर्ष करता है। वह अपने अग्रोन्मुख व आत्मगत गुणों के द्वारा ही स्वयं को वास्तवीकृत कर सकता है।

7.4.8 समस्थिति–विषमस्थिति (Homeostasis-Heterostasis)

इस अवधारणा में मास्लो ने समस्थिति तथा विषमस्थिति की कल्पना की है। मास्लो के सिद्धान्त का मूलाधार प्रेरणा की ओर प्रोत्साहित करता है। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि मास्लो ने दो प्रकार के प्रेरकों का प्रतिपादन किया—डी. दोषयुक्त अभिप्रेरणाएं तथा बी. अभिवृद्धि अभिप्रेरणाएं। मास्लो के अनुसार डी. अभिप्रेरणाएं समस्थिति पर आधारित होती है जबकि बी. अभिप्रेरणाएं पूर्णरूप से विषमस्थिति पर आधारित होती है। उनके अनुसार मानव जीवन का एक बड़ा भाग तनाव अवगमन में ही बीत जाता है। अत: मास्लो ने व्यक्ति विकास हेतु उसको डी. अभिप्रेरणाओं से ऊपर उठना अनिवार्य बताया है। अपने सम्पूर्ण सिद्धान्त में मास्लो ने मानव को प्रारम्भिक अभिप्रेरणाओं से ऊपर उठकर व्यक्तिगत अभिवृद्धि तथा विकास के लिए प्रयास करना बताया। ऐसा व्यक्तित्व विषमस्थिति के प्रकार्यों द्वारा ही संभव है।

7.4.9 ज्ञातव्यता–अज्ञातव्यता (Knowability-Unknowability)-

इस अवधारणा में मानवतावादी मनोविज्ञान दो तथ्यों के आधार पर व्यक्ति की व्याख्या करता है। पहला वस्तुनिष्ठ जिसमें सतर्कता एवं सीमाबद्धता है तथा दूसरा प्रज्ञात्मक, तात्कालिक तथा कल्पनात्मक। मास्लो ने आत्मनिष्ठता को बनाए रखते हुए व्यक्तित्व की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.5 स्व-वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि (Self-actualization)

जब मास्लो ने मानवतावादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तब मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में एक हलचल सी मच गई। मास्लो के इस सिद्धान्त ने व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आत्म-सम्मान, आत्मसिद्धि, आवश्यकताओं का होना अनिवार्य माना। स्व-वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि सत्य होता है अथवा नहीं इसके लिए कई अनुसंधान किये गए।

7.5.1 क्या स्ववास्तवीकरण सत्य है? (Is Self actualization real?)

मास्लो तथा अन्य अनेक मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों ने मानव स्वभाव और विकास के लिए सकारात्मक (Positive) विचार प्रस्तुत किये। जहां वे व्यक्ति की सृजनात्मक एवं वैयक्तिक अभिवृद्धि की विशिष्टता का उल्लेख करते हैं, वहीं अनुकूल परिस्थितियों में मानव गुणों के क्रियान्वित होने हेतु भी आशान्वित हैं। व्यक्ति प्राय: कुछ परिस्थितियों से घिरा रहता है जो उसके विकास में बाधा उत्पन्न करती है, ऐसी स्थिति में यदि व्यक्ति अपने स्व-वास्तवीकरण का विकास करना चाहता है तो उसको कई बंधनों को तोड़ना होता है और अपना विकास करने का उत्तरदायित्व स्वयं को उठाना पड़ता है। मास्लो (1950) ने कुछ ऐसे प्रयोग किये, जिसमें उसने यह जानना चाहा कि प्रायोज्यों को आत्मसिद्धि या स्व-वास्तवीकरण होता है या नहीं। इसमें मास्लो को अच्छे परिणाम मिले, परन्तु मास्लो के उक्त प्रयोग में प्रायोगिक चयन की कटु आलोचना हुई। स्मिथ (1973) ने कहा कि प्रयोग में काम लिये गये प्रायोज्य मास्लो के वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिच्छति थे या वास्तव में वास्तवीकरणात्मक थे क्योंकि मास्लो ने जिन प्रयोज्यों को इस शोध के लिए लिया वे प्रयोज्य अच्छे कार्य में अनुरत थे तथा मास्लो के परिचितों में से थे। अत: अन्य मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग को प्रयोगकर्त्ता के एकाधार माना। परन्तु मास्लो ने इन प्रयोज्यों को अपनी अनुभूतियों के आधार पर मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ माना। कालान्तर में आत्मसिद्ध या स्व-वास्तवीकरण को मापने के लिए कई परीक्षण हुए।

7.5.2 आत्मसिद्धि या वास्तवीकरण का मापन (Measurment of Self-actualization)

आत्मसिद्धि या स्व-वास्तवीकरण को मापने के लिए इसेस्ट्रोम (1950, 1966) ने वैयक्तिक उन्मुखता मापनी (Personal Orientation Inventory) का निर्माण किया। इस मापनी को स्व-वास्तवीकरण के मापने हेतु वैध एवं विश्वसनीय माना जाता है। इस परीक्षण द्वारा स्व-वास्तवीकरण मापन के सफल प्रयोग किये गये। (फॉक्स, नैप व मिशेल 1968; शोर्स्ट्रक 1966; रैनन 1973) ने भी अपने प्रयोगों में स्व-वास्तवीकरण का मापन किया। अत: स्पष्टहै कि वैयक्तिक उन्मुखता परीक्षण स्व-वास्तवीकरण के मापन हेतु सर्वथा उपयोगी सिद्ध हुए तथा इससे मास्लो के सिद्धान्त एवं विचारों की भी पुष्टि हुई। कैटल के 16 व्यक्तित्व कारक मापनी में भी कुछ कारकों का समूह वास्तवीकरण का मापन करता है। गौड़ (1994) ने भी स्व-वास्तवीकरण का मापन कैटल के 10 व्यक्तित्व कारकों से किया।

7.5.3 स्व-वास्तवीकरणात्मक या आत्मसिद्धि व्यक्तियों की विशेषताएं (Characterstics of Self-actualizing Persons)

मास्लो ने आत्मसिद्ध व्यक्तियों की 14 विशेषताओं का वर्णन किया, जो निम्नलिखित हैं—

1. यथार्थ का प्रत्यक्षीकरण (Perception of Reality)
2. स्वयं, अन्य तथा प्रकृति की स्वीकृति (Acceptance of Self, Others and nature)
3. सहजता (Spontaneity)
4. समस्या केन्द्रित (Problem Centring)
5. निष्पक्ष एवं एकान्तप्रिय (Unbias and Privacy)
6. स्वायत्तता (Autonomy)
7. निरन्तर नवीनता (Continued freshness)
8. रहस्यवादी अनुभव (Mystic experience)
9. सामाजिक रूचि (Social interest)
10. अंतर्वैयक्तिक सम्बन्ध (Inter-personal Relation)
11. प्रजातांत्रिक चरित्र संरचना (Democratic character structure)
12. साध्य-साधन में समान (Similarity in enabless and means)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13. दार्शनिक हास्य बोध (Sense of Philosophical humaure)

14. सृजनात्मकता (Creativity)

7.5.3.1 यथार्थ का प्रत्यक्षीकरण (Perception of Reality)- आत्मसिद्ध व्यक्ति की प्रमुख विशेषता यह है कि वह यथार्थ को सही ढंग से देखता है और समझता है। वह घटनाओं को अपनी इच्छानुसार नहीं बल्कि उनका यथावत प्रत्यक्षीकरण करता है। अपनी इस क्षमता के कारण आत्मसिद्ध व्यक्ति अन्य लोगों की अपेक्षा शीघ्र कर लेता है। वह जब अपने जीवन के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब सभी प्रकार की अनिर्णयताओं, क्षमताओं और अनिश्चितता से मुक्त हो जाता है। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है। मास्लो ने स्व-वास्तवीकरण या आत्मसिद्धि के प्रत्यक्षीकरण को ब-संज्ञान (B-Cognition) कहा है।

7.5.3.2 स्वयं, अन्य तथा प्रकृति की स्वीकृति (Acceptance of Self, Others and nature)- मास्लो के अनुसार आत्मसिद्ध व्यक्ति स्वयं को, अन्य लोगों को तथा प्रकृति को पूर्णत: स्वीकार करता है व किसी से किसी प्रकार की दूरी नहीं रखता। वह स्वभाव से मिलनसार व मधुर सम्बन्ध रखने वला होता है। वह अपने वातावरण की अच्छाइयों तथा बुराइयों से परिचित होता है और पददलित अपराध, असफलता तथा दुर्बल दुश्चिन्ता से मुक्त रहता है। इनमें आत्मोस्वीकृति की अभिव्यक्ति दैहिक स्तर पर भी होती है। इनमें हार्दिक क्षुधा, गहरी निद्रा तथा लैंगिक क्रियाओं के प्रति बिना किसी अवरोध के आनन्द देखने को मिलता है।

7.5.3.3 सहजता (Spontaneity)- आत्मसिद्ध व्यक्ति के व्यवहार में स्वाभाविकता सादगी और सहजता पाई जाती है। वह व्यर्थ के आडम्बर से दूर रहता है। उनके व्यवहार में किसी प्रकार की बनावट नहीं होती।

7.5.3.4 समस्या केन्द्रित (Problem Centring)- आत्मसिद्ध व्यक्ति स्व या अहं केन्द्रित न होकर समस्या केन्द्रित होता है। वह अपने कार्य तथा व्यवसाय के प्रति अनुरत होता है। अपने को अलग रखते हुए वह समस्या पर ही ध्यान देता है, फलस्वरूप वह निष्पक्ष होकर समस्या का समाधान ढूंढ लेता है। इसके कार्य का उद्देश्य व्यक्तिगत न होकर सार्वभौमिक होता है। ऐसे व्यक्ति की समस्याएं व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती हैं, क्योंकि वह अपने स्व को समाज में विलीन कर देता है।

7.5.3.5 निष्पक्ष एवं एकान्तप्रिय (Unbias and Privacy)- मास्लो के अनुसार आत्मसिद्ध व्यक्ति निष्पक्ष एवं एकान्तप्रिय होते हैं। यद्यपि उनमें लोक कल्याण की भावना प्रबल होती है फिर भी वह एकान्त की आवश्यकता महसूस करता है। समाज में उसको प्राय: विगल तथा गंभीर आत्मसिद्ध व्यक्ति, स्व या अहं केन्द्रित न होकर समस्या केन्द्रित होता है। वह अपने कार्य तथा व्यवसाय के प्रति अनुरत होता है। अपने को अलग रखते हुए वह समस्या पर ही ध्यान देता है, फलस्वरूप वह निष्पक्ष होकर समस्या का समाधान ढूंढ लेता है। इसके कार्य का उद्देश्य व्यक्तिगत न होकर सार्वभौमिक होता है। इस व्यक्ति की समस्याएं व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती हैं, क्योंकि वह अपने स्व को समाज में विलीन कर देता है।

7.5.3.5 निष्पक्ष एवं एकान्तप्रिय (Unbias and Privacy)- मास्लो के अनुसार आत्मसिद्ध व्यक्ति निष्पक्ष एवं एकान्तप्रिय होते हैं। यद्यपि उनमें लोक कल्याण की भावना प्रबल होती है फिर भी वह एकान्त की आवश्यकता महसूस करता है। समाज में उसको प्राय: विगल तथा गंभीर माना जाता है। वह अपने अंतरंग स्वरूप से अपने आंतरिक स्रोतों पर ही विश्वास करता है। आत्म-केन्द्रित होने के कारण ये समाज से दूर रहना ही पसंद करते हैं। अपने व्यक्तिगत कष्टों में भी ये शांत और अविचलित रहता है तथा स्थिति विश्लेषण में मौलिकता से काम लेता है न कि दूसरों का सहारा।

7.5.3.6 स्वायत्तता (Autonomy)- आत्मसिद्धि वाले व्यक्ति में स्वायत्तता पाई जाती है। सांस्कृतिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी स्वायत्तता भी इनमें पाई जाती है। अपने अंतरंग स्वरूप की आंतरिक शक्ति के आधार पर यह सांस्कृतिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावों से मुक्त रहते हैं और अपनी आत्मा में ही रस लेते हैं। वह अपने को आत्म-संचालित, सक्रिय, आत्मानुशासित तथा अपने भाग्य का निर्माता मानता है। वह प्रतिष्ठा, लोकप्रियता तथा सम्मान आदि आवश्यकताओं में कम रूचि रखता है।

7.5.3.7 निरन्तर नवीनता (Continued freshness)- आत्मसिद्ध व्यक्ति के जीवन में नवीनता, प्रसन्नता व रोमांस रहता है। वह ऊबन से ग्रस्त नहीं होता। इनको थकान भी नहीं आती और ये चुस्त रहते हैं। अनुभव रसास्वादन की प्रवृत्ति के कारण वह नित्य नये-नये अनुभव प्राप्त करके आनंदित होता है। यद्यपि उसकी आयु बढ़ जाती है फिर भी मन और शरीर से चुस्त रहता है।

7.5.3.8 रहस्यवादी अनुभव (Mystic experiences)- आत्मसिद्ध या स्व-वास्तवीकरण वाले व्यक्तियों के अनुभव रहस्यवादी होते हैं। प्राय: इनके अनुभव दार्शनिक होते हैं। इनकी अनुभूतियां समुद्र की भांति होती हैं। ये एक ओर तो तनाव व उत्तेजना व्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर गहन शांति एवं स्थिरता का अनुभव करते हैं। जिस तरह समुद्र की लहरों का उफान ऊपरी सतह पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होता है परन्तु गहराई में वह शांत रहता है ठीक उसी प्रकार इस व्यक्ति का स्वभाव होता है। अपने जीवन के सर्वाधिक आनन्ददायक अनुभूतियों का अनुभव करते हैं। प्राय: इनमें प्रेम व लैंगिक पराकाष्ठा व उच्चस्तरीय सृजनात्मक अंतर्दृष्टि होती है। इनके अनुभव प्राय: संगीत, कला, बौद्धिक प्रयासों, पुस्तकों, सृजनात्मक प्रयासों, मानव कल्याण सम्बन्धों आदि से पाये जाते हैं।

7.5.3.9 सामाजिक रूचि (Social interest)- यद्यपि आत्मसिद्धि प्राप्त व्यक्ति एकान्तप्रिय एवं विरक्त होते हैं तथापि समाज के कल्याण हेतु चिन्तित रहते हैं। अपने सहयोगियों एवं निकट मित्रों के हितों के प्रति भी चिन्तित रहते हैं। ये सम्पूर्ण मानवता के प्रति भी चिन्तित रहते हैं। ये सम्पूर्ण मानवता के प्रति भी स्नेह रखने वाले एवं दयावान होते हैं। समाज के उत्थान के लिए अपना योगदान देने में भी ये तत्पर रहते हैं।

7.5.3.10 अंतर्वैयक्तिक सम्बन्ध (Inter-personal Relations)- इस प्रकार के व्यक्तियों के अंतर्वैयक्तिक सम्बन्ध सामान्य व्यक्तियों की तुलना में गहरे एवं सुदृढ़ होते हैं। यद्यपि इनका सम्बन्ध अपने स्तर के गुणों वाले व्यक्तियों से ही होता है। ये बच्चों के प्रति बड़े कोमल एवं सहृदय भावना रखने वाले होते हैं और अपने मित्रों पर गहरा विश्वास रखते हैं। इनके हृदय में सभी के लिए सहानुभूति होती है इसी कारण लोगों से इनके सम्बन्ध अत्यन्त मधुर होते हैं।

7.5.3.11 प्रजातांत्रिक चरित्र संरचना (Democratic character structure)- आत्मसिद्धि प्राप्त व्यक्ति प्राय: पूर्वाग्रहों से मुक्त रहते हैं। ये सर्वोत्कृष्ट गुणों वाले होते हैं। इनकी मित्रता इन लोगों के सर्वोत्कृष्ट गुणों एवं चरित्र के आधार पर होती है। ये मित्रता में चरित्र एवं गुणों को विशेष महत्त्व देते हैं न कि आयु, लिंग, जाति, समाज और शक्ति को। यदि सचरित्र एवं सर्वोत्कृष्ट गुणों का व्यक्ति निम्न समाज का हो या निर्धन हो तो उससे इनकी मित्रता प्रगाढ़ रहती है।

7.5.3.12 साध्य-साधन में विभेदन (Discrimination between means and enals)- आत्मसिद्ध व्यक्ति अपने दैनिक जीवन कार्यों में संशयों एवं द्वंद्वों से मुक्त रहते हैं। उनका जीवन एक निश्चित नैतिक एवं न्यायिक चरित्र का होता है। ये साध्य एवं साधन को समान महत्त्व देते हैं। ये अपने कार्य की सफलता सिद्धान्तों के आधार पर चाहते हैं न कि सिद्धान्तहीन आधारों पर।

7.5.3.13 दार्शनिक हास्य बोध (Sense of Philosophical humor)- आत्मसिद्ध व्यक्ति प्राय: दार्शनिक एवं हंसमुख होते हैं। उनकी हंसी दार्शनिक होती है। इनकी हंसी मानवता की दुर्बलता को इंगित करती है। सामान्य व्यक्ति हंसी के माध्यम से दूसरों को आहत कर सकता है परन्तु इनकी हंसी लोगों के गलत कार्यों को देखकर दार्शनिक हंसी होती है। कबीरदास जी ने जो आत्मसिद्ध व्यक्ति थे अपनी एक पंक्ति में दार्शनिक हंसी को व्यक्त किया है—जल बीच मीन प्यासी रे। यह देख मोहि आवे हंसी रे।

7.5.3.14 सृजनात्मकता (Creativity)- मास्लो के अनुसार आत्मसिद्ध व्यक्ति का सृजनात्मक गुण एक विशेष गुण के रूप में रहता है। इनकी सृजनशीलता एवं मौलिकता ही इनका विशिष्ट गुण है। मास्लो के अनुसार कोई भी व्यक्ति आत्मसिद्ध नहीं हो सकता। यदि उसमें सृजनशीलता, मौलिकता, नवीन वस्तु एवं नवीन विचारों एवं आविष्कार करने की क्षमता न हो।

इस प्रकार मास्लो ने आत्मसिद्ध व्यक्ति के जो लक्षण बताए ये सामान्य नियम न होकर अपवाद ही हैं। ये गुण परिपक्व व्यक्तियों में मिल सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है फिर भी इन लक्षणों का व्यक्तित्व विकास में बहुत महत्त्व है।

जब मास्लो ने उपरोक्त सिद्धान्त एवं अवधारणाओं का प्रतिपादन किया तब मनोवैज्ञानिक जगत् में एक हलचल सी मच गई। कई मनोवैज्ञानिकों ने मास्लो के इस सिद्धान्त की आलोचना की। कई मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान में आध्यात्मिकता को जोड़ने का मास्लो का असफल प्रयास बताया। कुछ बिन्दुओं को लेकर कई मनोवैज्ञानिकों ने मास्लो के सिद्धान्त की आलोचना की, जैसे—

1. इनके सिद्धान्तों की पुष्टि करने हेतु पर्याप्त संख्या में प्रयोग नहीं हैं।
2. मास्लो की अवधारणाएं अस्पष्ट हैं।
3. जहां विश्व में हिंसा, बुराइयां तथा विध्वंसात्मक व्यवहार व्यक्तियों में विद्यमान हैं, वहां आदर्श एवं अच्छे व्यक्ति की कल्पना अर्थात् आत्म-सिद्ध पुरुष की कल्पना किस सीमा तक उपयुक्त है।
4. पर्यावरणीय कारक व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं, वहां व्यक्ति आत्मसिद्धि को प्रेरणाओं द्वारा कैसे प्राप्त कर सकता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर मास्लो के सिद्धान्त एवं अवधारणाओं की आलोचना नहीं की जा सकती। पश्चिमी देशों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में उपरोक्त बिन्दुओं की स्थिति बनती है परन्तु सर्वत्र नहीं। भारत जैसे देशों में आत्म सिद्धि की बात हजारों वर्षों से कही जाती है। मास्लो का व्यक्तित्व सिद्धान्त अत्यधिक आशावादी एवं सर्वांगपूर्ण है। उन्होंने व्यक्तित्व के स्वरूप तथा व्यक्ति की पूर्णता के लिए आत्मसिद्धि को आवश्यक माना है। इतना ही नहीं, एक सोपान आगे बढ़ते हुए मास्लो ने व्यक्ति की पूर्णता के लिए भावातीत स्थिति को भी महत्त्वपूर्ण माना है। मास्लो के ये सिद्धान्त तथा अवधारणाएं बहुत कुछ औपनिषदिक मनोविज्ञान के निकट हैं। अमेरिका में हुए एक मनोवैज्ञानिक सम्मेलन में विधायक मनोविज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया गया है। जो मास्लो के उन सिद्धान्त और अवधारणाओं के निकट है जिनका कई वर्षों पूर्व उन्होंने प्रतिपादन किया।

7.6 प्रश्नावली

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. आवश्यकताऐं क्या हैं? व्यक्तित्व विकास में आवश्यकताओं की भूमिका को स्पष्ट करें।
2. अब्राहम मास्लो द्वारा प्रस्तुत आवश्यकताओं के सोपानों की व्याख्या कीजिए।
3. मानवीय प्रकृति से सम्बन्धित मास्लो की प्राथमिक अवधारणाओं को समझाइये।
4. मास्लो द्वारा प्रस्तुत आत्मसिद्धि व्यक्तियों की विशेषताओं को स्पष्ट करें।

7.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान—डॉ. सीताराम जायसवाल
2. व्यक्तित्व : संप्रत्यय, निर्धारक एवं सिद्धान्त—डॉ आराधना शुक्ला
3. व्यावहारिक मनोविज्ञान—डॉ. आर.के. ओझा
4. Personality and Transcendental Meditation: Dr. B.P. Gaur.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई: 8 मनोगत्यात्मक सिद्धान्त: फ्रायड, ऐडलर, युंग

संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 सिग्मण्ड फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त
8.3 व्यक्तित्व की संरचना
8.3.1 चेतना के स्तरों का प्रत्यय
8.3.2 इदम्, अहम् एवं पराहम् का प्रत्यय
8.3.3 मूल प्रवृत्तियों का प्रत्यय
8.3.4 लिबिडो का प्रत्यय
8.3.5 स्वप्नों का प्रत्यय
8.4 व्यक्तित्व का विकास
8.4.1 व्यक्तित्व विकास की चार अवस्थाएं
8.4.2 मनौलैगिक विकास
8.5 अल्फ्रेड ऐडलर एवं वैयक्तिक मनोविज्ञान
8.5.1 श्रेष्ठता के लिए प्रयास
8.5.2 हीनता की भावना और प्रति पूर्ति
8.5.3 जीवन की शैली
8.5.4 सृजनात्मक स्व
8.5.5 चेतन स्व
8.5.6 कथात्मक लक्ष्य
8.5.7 सामाजिक अभिरूचि
8.6 अल्फ्रेड ऐडलर एवं व्यक्तित्व का विकास
8.6.1 जन्म से प्रथम छ: (6) वर्ष
8.6.2 जन्म क्रम
8.6.3 अनन्यता
8.6.4 व्यक्ति और पर्यावरण
8.7 युंग एवं विश्लेषण मनोविज्ञान
8.7.1 अहम्
8.7.2 व्यक्तिगत एवं सामूहिक अचेतन
8.7.3 मुखौटा
8.7.4 एनीमा या अन्त:नरी तथा एनीमस या अन्त:नर
8.7.5 छाया
8.8 लिबिडो या काम वासना पर युंग के विचार
8.9 व्यक्ति के विकास की अवस्थाएं
8.9.1 बाल्यावस्था
8.9.2 युवावस्था
8.9.3 प्रौढावस्था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.9.4 वृद्धावस्था
8.10 व्यक्तित्व की गतिशीलता
8.11 व्यक्तित्व सम्बंधी प्रत्यय
8.11.1 अन्तर्मुखी प्रकार का व्यक्तित्व
8.11.2 बहिर्मुखी प्रकार का व्यक्तित्व
8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.13 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

मनोविश्लेषण सिद्धान्त के जन्मदाता सिग्मण्ड फ्रायड हैं इस सिद्धान्त का विकास तंत्रिकतापी रोगों के उपचार से प्रारम्भ हुआ तथा आगे चलकर इसके अन्तर्गत विभिन्न मानसिक विकृतियों की उत्पत्ति के कारण और उनके उपचार की प्रभावी प्रविधियां विकसित हुईं। मनोविश्लेषणवाद के तीन प्रमुख मनोवैज्ञानिक थे–सिग्मण्ड फ्रायड, अल्फ्रेड ऐडलर तथा कार्ल जी. युंग। मनोविश्लेषणवाद के तीन मुख्य अर्थ हैं—

1. इस सिद्धान्त के माध्यम से व्यक्ति के चेतन, अवचेतन व अचेतन मन तथा व्यक्ति के जीवन का विश्लेषण किया जाता है तथा उसकी व्यवहार की गति का अध्ययन उसके उपचार की दृष्टि से किया जाता है।
2. मनोविश्लेषण सिद्धान्त का उपयोग मनोचिकित्सा के रूप में किया जाता है।
3. यह मनोविज्ञान क्षेत्र में व्यक्तित्व के अध्ययन का एक सिद्धान्त या सम्प्रदाय है।

इस सिद्धान्त में व्यक्ति के जीवन की दो मूल प्रवृत्तियां मुख्य मानी जाती है। जो व्यक्ति के जीवन में उसके व्यवहार के लिए उत्तरदायी है। ये प्रवृत्तियां हैं- 1. जीवन मूल प्रवृत्ति (Eros Instinct) 2. मरण मूल प्रवृत्ति (Thanatos Instinct) इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त में व्यक्ति के व्यक्तित्व अध्ययन के लिए उसके चेतन, अवचेतन और अचेतन मन तथा इदम्, अहम् और पराहम् पर विशेष बल दिया जाता है।

8.1 उद्देश्य

1. सिग्मण्ड फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
2. इदम्, अहम् एवं पराहम् को जान सकेंगे।
3. अल्फ्रेड ऐडलर के वैयक्तिक मनोविज्ञान को जान सकेंगे।
4. युंग का विश्लेषण मनोविज्ञान का ज्ञान होगा।
5. अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी प्रकार के व्यक्तित्व के बारे में जान सकेंगे।

8.2 सिग्मण्ड फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त

मनोविश्लेषण सिद्धान्त के जन्मदाता सिग्मण्ड फ्रायड का जन्म मोराविया प्रदेश के एक नगर फ्राईबर्ग में 6 मई सन् 1856 को एक साधारण यहूदी परिवार में हुआ। सन् 1860 में फ्रायड के पिता अपने पूरे परिवार सहित वियना चले गए। फ्रायड ने अपनी संपूर्ण शिक्षा यहीं प्राप्त की। सन् 1881 में इन्होंने चिकित्साशास्त्र में उपाधि प्राप्त की, परन्तु कालान्तर में वे मनोचिकित्सक बन गए। उन्होंने उन्माद (हिस्टीरिया) के रोगों का विशेष अध्ययन किया तथा प्रो. शारको के साथ नाड़ी शास्त्र का भी अध्ययन किया। सन् 1893 में फ्रायड ने प्रो. बूअर के साथ उन्माद (हिस्टीरिया) के रोगियों पर कार्य किया तथा 'Psychic Machenism of Hysterical Phenomen' नामक लेख-प्रकाशित किया। सन् 1890 से सन् 1895 तक फ्रायड ने उन्माद के रोगियों का उपचार किया। इसके पश्चात् फ्रायड ने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धातों का सपनों के सन्दर्भ में अध्ययन किया तथा सन् 1900 में उनकी 'The Interpretation of Dream' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। सन् 1904 में उनकी 'Psychopathology of Every day Life' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त सन् 1905 उनकी एक अन्य पुस्तक 'The Contributions to the theory of Sex' का प्रकाशन हुआ। सन् 1915 में 'The Unconscious' सन् 1918 में 'Introduction to Psycho Analysis' सन् 1920 में 'Beyond the Pleasure Principle' तथा 1923 में 'The Ego and The Id' का प्रकाशन हुआ। इस तरह फ्रायड ने चिकित्साशास्त्र तथा मनोविश्लेषण के सम्बंध में अनेक ग्रन्थों की रचना की।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सन् 1938 में हिटलर के गेस्टापु के कुछ सैनिक फ्रायड के घर आऐ और उनका पासपोर्ट एवं कुछ अन्य आवश्यक पत्रों को अपने साथ ले गए तथा उनकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। फ्रायड के एक प्रसिद्ध अनुयायी डॉ. अर्नेस्ट जोन्स ने फ्रायड को संकट में देखकर उनको वियना से लंदन आने का आग्रह किया। अत: फ्रायड अपने परिवार सहित 4 जून सन् 1939 को लदंन जाकर रहने लगे। 26 सितम्बर सन् 1939 को केन्सर से उनकी मृत्यु हुई। इस प्रकार फ्रायड 83 वर्ष की आयु तक जीवित रहे। अपने जीवन काल में मनोविश्लेषण संबंधी जो कार्य उन्होंने किए उनको मनोविज्ञान के इतिहास में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण सिद्धान्त में व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो प्रमुख पक्षों पर ध्यान दिया है ये पक्ष हैं-

1. व्यक्तित्व की संरचना (Structure of Personality)
2. व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)

8.3 व्यक्तित्व की संरचना (Structure of Personality)

फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना में निम्न प्रत्ययों को मुख्य माना है -

1. चेतना के स्तरों का प्रत्यय (Concept of Conscious Levels)
2. इदम्, अहम् एवं पराहम् का प्रत्यय (Concept of Id, Ego and Super-ego)
3. मूल प्रवृत्तियों का प्रत्यय (Concept of Instincts)
4. लिबिडो का प्रत्यय (Concept of Libido)
5. स्वप्नों का प्रत्यय (Concept of Dreams)

फ्रायड का यह मानना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की संरचना में इन तत्वों की अहम् भूमिका रहती है। फ्रायड द्वारा बताये गये इन तत्वों एवं प्रत्ययों का वर्णन हम आगे कर रहे हैं।

फ्रायड द्वारा प्रस्तुत चेतना के स्तर (चित्र सं.1)

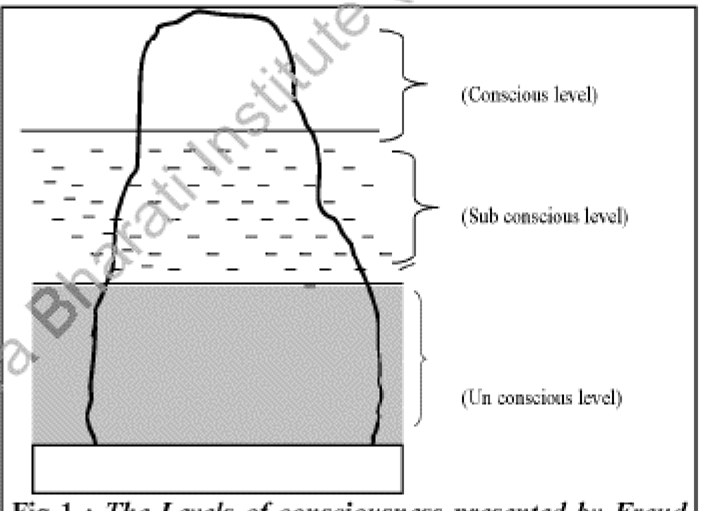

Fig 1 : *The Levels of consciousness presented by Freud*

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.3.1 चेतना के स्तर (Levels of Consciousness)

मनोविश्लेषण सिद्धान्त को विकसित करते हुए फ्रायड ने मन या चेतना को तीन स्तरों में विभक्त किया और उन्होनें इसकी तुलना पानी में तैरते हुए हिम खण्ड से की। पानी में हिम खण्ड तैरता है तो उसका 1/10 वाँ भाग पानी के बाहर होता है तथा 9/10 वाँ भाग पानी के भीतर। जो भाग (1/10 भाग) पानी के बाहर होता है और प्रकाश में रहता है उस भाग को फ्रायड ने मन का चेतन स्तर (Conscious Level) माना और जो भाग (9/10 भाग) पानी के भीतर रहता है और दिखाई नहीं देता उसे मन या चेतना का अचेतन स्तर (Unconscious Level) माना हैं। हिम खण्ड का कुछ भाग जो पानी के भीतर है परन्तु कुछ-कुछ दिखाई देता है उस भाग को फ्रायड ने चेतना का अवचेतन स्तर (Sub- Conscious level) माना है (जैसा कि चित्र. सं. 1 में)

8.3.1.1 चेतन स्तर (Conscious Level)– मन के चेतन स्तर का सम्पर्क बाह्य जगत से रहता है; यह उन सारे अनुभवों (सुख-दु:ख) एवं चेतन क्रियाओं को समाहित करता है जिसको व्यक्ति किसी भी क्षण जान सकता है। फ्रायड ने इसकी परिधि में व्यक्ति के मानसिक जीवन के विचार, प्रत्यक्षीकरण, अनुभव एवं स्मृतियों को वर्णित किया है। चेतन स्तर सम्पूर्ण चेतनास्तर का 1/10 वाँ भाग ही होता है अर्थात् यह चेतना का छोटा एवं सीमित पहलू है।

8.3.1.2 अवचेतन स्तर (Sub-conscious Level)– यह चेतनास्तर का वह भाग है जो चेतनास्तर के चेतन स्तर एवं अचेतन स्तर के बीच सेतु का काम करता है। इस मंद प्रदीप्त भाग (चित्र सं. 1) को प्राय: प्राप्य स्मृति (**available memory**) कहा जाता है। यह चेतना के केन्द्र के समीप रहने वाला स्तर है। परन्तु अवचेतन के अनुभव चेतना केन्द्र से परे होते हैं। अवचेतन के अनुभवों को सरलता से चेतना स्तर पर लाया जा सकता है। इसके अनुभव सदैव चैतनावस्था में आने का प्रयत्न करते रहे हैं।

8.3.1.3 अचेतन स्तर (Unconscious Level)– फ्रायड के अनुसार मानव मस्तिष्क का गहनतम् एवं मुख्य भाग अचेतन स्तर है। यह मन का सबसे गहरा स्तर है, और अवचेतन के नीचे का स्तर है। हमारे सभी कार्य चेतन तथा अवचेतन के स्तर से ही नहीं होते परन्तु बहुत से कार्य अचेतन के आधार पर भी होते हैं। मन का अचेतन भाग उन कार्यों को भी करता है जिन्हें चेतन मस्तिष्क नहीं कर पाता। अचेतन मन का सबसे बड़ा भाग अर्थात् 9/10 वाँ भाग है। अचेतन एक तरह से मन का वो भंडार है जिसमें हमारे भाव, विचार, कामनाएं तथा इच्छाएं, जिनकी संतुष्टि चेतन मन से नहीं हो पाती है, दमित होकर एकत्रित रहते है। ये अचेतन स्तर में ही रहकर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते रहते हैं। ये दमित भाव, विचार, कामनाएं तथा इच्छायें आदि व्यक्ति के व्यवहार से अन्य रूपों से प्रकट होती है। मन व्यक्ति के असामान्य व्यवहार या स्वप्नावस्था में इन दमित इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है।

अचेतन मन की कुछ विशेषताएं

1. इसकी प्रकृति परिवर्तनशील और गत्यात्मक होती है।
2. यह मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करता है।
3. अचेतन मन की अभिव्यक्तिशब्दों के स्थान पर व्यक्ति के हाव-भाव से प्रकट होती है।
4. इसकी क्रियाएं किसी भी समय हो सकती है।
5. अचेतन मन की क्रियाएं विशेष रूप से असामान्य व्यवहार या स्वप्न के माध्यम से व्यक्त होती है।
6. अचेतन मन का स्वरूप शिशु के समान होता है।

फ्रायड ने अचेतन के अस्तित्व के संबंध में कई प्रमाण प्रस्तुत किए है। जैसे—जटिल समस्याओं का समाधान, निश्चित समय पर निद्रा से जागना और निद्रावस्था में ही कई समस्याओं का हल कर लेना। ये सब अचेतन मन के कारण ही होता है। फ्रायड ने अपनी एक पुस्तक 'Psycho Pathology of Every day Life' में व्यक्ति के दैनिक जीवन की त्रुटियों की व्याख्या की है जैसे व्यक्ति बोलना कुछ चाहता है परन्तु बोल कुछ और जाता है। इसी प्रकार लिखना कुछ चाहता है किन्तु लिख कुछ और देता है। इस प्रकार के व्यवहार को क्रमश: जीभ का फिसलना (Slip of Tongue) तथा कलम का फिसलना (Slip of Pen) कहा गया है। जिसका मुख्य कारण अचेतन मन में दमित हुए विचारों, भावनाओं तथा इच्छाओं का होना है। इसी तरह सांकेतिक क्रियाएं जिनको करने का व्यक्ति को कोई ध्यान नहीं रहता जैसे टाँगों को हिलाना, दाँतों से नाखून काटना, बैठे-बैठे किसी कागज के टुकड़े-टुकड़े कर देना, गरदन हिलाना, मुँह को बिचकाना, शरीर की एक विशेष आकृति बनाना, बोलते समय कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करना जिनकी आवश्यकता नहीं है आदि। ये सभी क्रियाएं अचेतन मन से होती है। अचेतन मन में दबी अतृप्त वासनाओं और कामनाओं की तृप्ति के लिए ही ये क्रियाएं अचेतन मन से शरीर के द्वारा होती हैं। इसी तरह अचेतन मन की अतृप्त इच्छाएं, भावनाएं, विचार तथा कामनाओं की संतुष्टि स्वप्न के द्वारा होती है। निद्रा में चेतन मन के सुप्त हो जाने पर, अचेतन मन में दमित इच्छाएं क्रियाशील हो जाती हैं तथा वे सपनों के माध्यम से अपना नया संसार रचती हैं और अपनी संतुष्टि करती है।

8.3.2 इदम्, अहम् एवं पराहम् (Id, Ego and Super-ego)

फ्रायड ने व्यक्तित्व संरचना में तीन तत्वों को प्रमुख मानकर इनका वर्णन किया है। ये तत्व है इदम् (Id), अहम् (Ego) तथा पराहम् या नैतिक मन (Super-ego)। इन तीनों तत्वों का चेतना के स्तरों से बड़ा संबंध है। इदम् अहम् तथा पराहम् एक दूसरे से मिले हुऐ है और इनको अलग करके देखा और समझा नहीं जा सकता है। नाम की दृष्टि से ये भिन्न है परन्तु वास्तविकता में व्यक्ति इन तीनों के कार्यों से प्रभावित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.3.2.1 इदम् (Id)—इदम् व्यक्ति के जैविक एवं अनुवांशिक पक्ष को प्रकट करता है। फ्रायड ने इदम् को मानव मन का अचेतन भाग माना है। उसके अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व में जितने भी जन्मजात तथा शरीर से संबधित गुण है इन सबका स्रोत इदम् है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की सभी मनोवृत्तियों जिनका संबंध शरीर की रचना से है वे सभी इदम् से प्रेरित होती है। फ्रायड का यह मानना था कि ऐसे अनुभव जो पीढ़ी दर पीढ़ी व्यक्तियों में घटते रहते है वे इदम् में संगृहित हो जाते है। अर्थात् इदम् मानव जीवन की प्रारम्भ से अन्त तक रहने वाली प्रवृत्ति है। फ्रायड ने इसको व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं का सेतु माना है। उन्होंने इदम् का सम्बन्ध कामशक्ति से भी माना है। इदम्, सुख के सिद्धांत पर कार्य करने वाला होता है। वह येन-केन प्रकारेण सुख की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। जिस दिशा या कार्य में सुख की प्राप्ति होती है इदम् उसी की ओर आकर्षित होता है। सुख पाने के लिए इदम् दो प्रक्रियाओं को काम में लाता है। ये प्रक्रियाएं हैं—(1) प्रतिवर्ती और (2) प्राथमिक। इन दोनों प्रक्रियाओं का उद्देश्य मनोशारीरिक तनावों को कम करना ही होता है जिससे इदम् को संतुष्टि मिल सके। प्रतिवर्ती प्रक्रिया में आंखों की पलकों का गिरना या अनायास संकट आने पर शरीर के किसी अंग को पीछे हटा लेना होता है। अर्थात् शरीर की रक्षा के लिए प्रतिवर्ती क्रियाएं होती हैं। प्राथमिक प्रक्रियाओं में व्यक्ति शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को अपनी कल्पना के सहारे पूर्ण करता है। उस आवश्यकता की पूर्ति के बारे में वह दिवास्वप्न लेता है या कल्पना करता है ताकि उसे सुख की प्राप्ति हो। इस प्राथमिक प्रक्रिया मे इदम् सक्रिय रहता है और वह अपनी इच्छाओं को काल्पनिक वस्तुओं या दिवास्वप्न के माध्यम से पूर्ण करता है। परन्तु यह इच्छा की वास्तविक पूर्ति नहीं है फिर भी व्यक्ति थोड़े समय के लिए आवश्यकता के तनाव से मुक्त हो जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इदम् का संबंध व्यक्ति की कामशक्ति से भी है इस कामशक्ति को फ्रायड ने लीबिडो (Libido) नाम प्रदान किया है।

8.3.2.2 अहम् (Ego)—अहम् का विकास इदम् से ही होता है। इदम् का वह भाग जो बाह्य जगत के सम्पर्क में आने से कुछ अनुभव प्राप्त कर लेता है। यह अनुभव ही अहम् के स्वरूप का निर्माण करते है। डा. जायसवाल ने इदम् के बारे में फ्रायड के कथन को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—''वास्तविक बाह्य जगत जिससे कि हम घिरे हैं, प्रभाव में आकर इदम् का एक अंश विशेष रूप से विकसित होता है। जो आरम्भ में ऊपरी-परत थी और जिसमें ऐसे अंग बने थे जिनके द्वारा संवेदन प्राप्त होते थे और ऐसी भी व्यवस्था थी जो अत्यधिक उद्दीपन से रक्षा करती थी। वही बाद में आकर एक विशेष प्रकार से विकसित होकर इदम् और बाह्य जगत के बीच में मध्यस्थ बन गई। हमारे मानसिक जीवन के इस भाग का नाम अहम् है।''[1]

वस्तुत: अहम् मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व संरचना का वह भाग है जो इदम् की अवांछनीय मार्गों को नियंत्रित करता है तथा वास्तविकता के सिद्धांतों का पालन करता है। यह परमाहम् की कठोर नैतिक धारणा और अनुशासन को भी संशोधित करता है। फ्रायड ने अहम् की कुछ विशेषताएं बतलाई है। अहम् की पहली विशेषता यह है कि वह शरीर की सहज गतियों पर नियंत्रण रखने का प्रयास करता है। दूसरी विशेषता यह है कि अहम् बाह्य जगत में होने वाली घटनाओं की हानिकारक उत्तेजनाओं से जीवन को बचाता है। अत: वह अपने पूर्व अनुभवों को काम में लेते हुए अपनी स्मृति की सहायता से हानिकारक बाह्य प्रभावों से जीवन को बचाने का प्रयास करता है। अहम् की तीसरी विशेषता यह है कि इदम् के कारण उत्पन्न आन्तरिक प्रेरणाओं को संतुष्ट करता है परन्तु केवल उन्हीं प्रेरणाओं को जो उचित हैं। आन्तरिक आवश्यकताओं के फलस्वरूप यदि अत्यधिक दबाव उत्पन्न हो जाता है तो अहम् यह प्रयत्न करता है कि यह दबाव या तनाव कम हो जाए क्योंकि इससे व्यक्ति का दु:ख कम हो जाता है। व्यक्ति के संन्दर्भ में अहम् का जो विकास होता है उसमें अनुभव, प्रशिक्षण तथा शिक्षा का प्रमुख स्थान होता है।

8.3.2.3 पराहम् या नैतिक मन (Super-ego)—व्यक्तित्व का तीसरा प्रमुख अंग पराहम् या नैतिक मन (Super-ego) है। पराहम् के कारण ही व्यक्ति आदर्श जीवन व्यतीत करने की इच्छा करता है। पराहम् व्यक्ति को नैतिक एवं आदर्शवान बनाता है। पराहम् आदर्श से प्रेरित होता है। पराहम् का विकास बाल्यावस्था से ही होना प्रारम्भ हो जाता है तथा समाजीकरण के माध्यम से बालक अपने पारिवारिक मूल्यों, समाज के नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों को अपनाते हुए अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेता है तथा कालान्तर में इन आदर्शों को अपनाते हुए व्यक्ति व्यवहार करता है। फ्रायड के अनुसार पराहम् का व्यक्ति के जीवन में वही स्थान है जो समाज में व्यक्ति के लिए माता-पिता और शिक्षक का होता है। जब बाल्यावस्था में व्यक्ति को इतना ज्ञान नहीं होता कि वह सही कार्य कर सके तब उसके माता-पिता और शिक्षक समय-समय पर उसे दिशा-निर्देश देते रहते हैं। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की आयु बढ़ती है उसके अनुसार उसमें अनुभव एवं शिक्षा भी बढ़ती है और उसमें परिपक्वता आ जाती है तब उसके पराहम् का सम्यक् विकास हो जाता है इस समय व्यक्ति अपने अच्छे-बुरे विषयों और कार्यों के बारे में सोचने लग जाता है।

फ्रायड के अनुसार अच्छे मानसिक स्वास्थ की दृष्टि से यह आवश्यक है कि पराहम् का विकास सुचारू एवं सामान्य रूप से हो। जब पराहम् सम्यक् रूप से विकसित हो जाता है तब वह स्वयं अपनी सीमाओं को जानने लगता है और अहं से तालमेल बैठाये रखता है। अर्थात् पराहम् ऐसा कोई कार्य नहीं करता जिससे की अहं को चोट लगे। जब पराहम् का विकास अत्यधिक हो जाता है तब व्यक्ति अत्याधिक नैतिक तथा आदर्शवान बनने लगता है। इससे समाज की वास्तविक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के जीवन में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। अहं जहां एक ओर इदम् के असामाजिक एवं मूल प्रवृतियों से प्रेरित मांगों को नियंत्रित करता है तो दूसरी ओर पराहम् की अत्यधिक आदर्शवादिता को भी जीवन के यथार्थ पहलुओं को ध्यान रखकर आवश्यक संशोधन भी करता है।

8.3.3 मूल प्रवृत्तियों का प्रत्यय (Concept of Instincts)

फ्रायड के अनुसार जिस प्रकार शरीर की गतिशीलता शारीरिक ऊर्जा के कारण होती है उसी प्रकार व्यक्तित्व की गतिशीलता मन: ऊर्जा के कारण होती है। मन: ऊर्जा और शारीरिक ऊर्जा के मध्य में सम्बन्ध स्थापित करने वाले इदम् और इससे संबंधित मूल प्रवृत्तियां हैं। फ्रायड ने मन: ऊर्जा का स्रोत मूल प्रवृत्तियों को माना है। फ्रायड ने मूल प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि इदम् की आवश्यकताओं के फलस्वरूप जो तनाव उत्पन्न होते हैं उनके मूल में पाए जाने वाली शक्तियाँ मूल प्रवृत्तियां कहलाती है। मूल प्रवृत्तियों का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक परिस्थिति में संतोष प्राप्त करना है। इनका एक लक्ष्य होता है तथा आवश्यकताओं के दबाव के अनुभवों में उनकी क्रियाओं में एक वेग भी पाया जाता है। व्यक्ति मूल प्रवृत्तियों की सहायता से ही अपने शरीर का संरक्षण करता है। मूल प्रवृत्तियां मानसिक स्तर पर सुख प्रप्ति के लिए प्रयत्नशील होती हैं तथा शारीरिक तनावों को भी कम करती हैं।

फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृत्तियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(1) जीवन मूल प्रवृत्ति या जिजीविषा मूलप्रवृत्ति (Life Instinct or Eros),

(2) मृत्यु मूल प्रवृत्ति या मुमूर्षा मूल प्रवृत्ति (Death Instinct or Thanatos)।

8.3.3.1 जीवन की मूल प्रवृत्ति या जिजीविषा मूलप्रवृत्ति (Life Instinct or Eros)—फ्रायड ने इस प्रवृत्ति को प्रेम की मूल प्रवृत्ति भी कहा है। इरोस (Eros) युनानी शब्द है जिसका अर्थ है प्रेम। फ्रायड ने अपने प्रारम्भिक लेखों में काम (Sex) पर अत्यधिक जोर दिया। उन्होंने प्रत्येक व्यवहार का कारण काम से संबंधित प्रवृत्ति को माना है तथा इसका स्रोत जीवन की मूल प्रवृत्ति में निहित माना है। फ्रायड के अनुसार जब तक मनुष्य में प्रेम करने की शक्ति या इच्छा होती है तब तक वह जीवनोन्मुखी होता है और उसमें आशा की प्रधानता होती है। जब काम की संतुष्टि के लिए शारीरिक संबंध स्थापित किया जाता है तो यह स्थिति भी एक प्रकार की काम-शक्ति से प्रेरित होती है जिसे फ्रायड ने लिबिडो (Libido) कहा है। फ्रायड के काम वासना का अर्थ केवल कामभोग या यौन संबंध तक ही सीमित नहीं है बल्कि उन समस्त व्यवहारों से भी है जिनमें व्यक्ति एक दूसरे के शारीरिक या मौलिक सम्पर्क में आते हैं। फ्रायड के अनुसार जीवन की मूल प्रवृत्ति को जीवन की ऐसी भौतिक प्रवृत्ति माना जा सकता है जो मनुष्य के शारीरिक पदार्थों में संतुलन बनाए रखने और निर्माणकारी कार्यों को करने के लिए उसे प्रेरित करती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीवन मूल प्रवृत्ति काममयी आवेगों को जन्म देती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने खाने-पीने रहने तथा कपड़ों का प्रबन्ध करता है इस मूल प्रवृत्ति से बौद्धिक स्तर का भी विकास होता है।

8.3.3.2 मृत्यु या मुमूर्षा मूल प्रवृत्ति (Death Instinct or Thanatos)—यह मूल प्रवृत्ति व्यक्ति को अपने प्रति या समाज के प्रति हानिकारक कार्यो की ओर प्रेरित करती है। फ्रायड ने अपने प्रसिद्ध कथन में यह कहा है कि ''सभी के जीवन का लक्ष्य मृत्यु है।'' फ्रायड के अनुसार जब व्यक्ति अचेतन स्तर पर मृत्यु की कामना करता है तब वह धीरे-धीरे अपनी मृत्यु की ओर अग्रसर होता है। मनुष्य द्वारा किए जाने वाले विनाशकारी कार्य जैसे तोड़फोड़ करना, क्रोध में अपना सिर फोड़ लेना, आगजनी करना, आत्महत्या का प्रयास करना ये सभी इस मूल प्रवृत्ति के कारण है। मनुष्य में द्वेषता की भावना भी इसी मूल प्रवृत्ति का कारण है।

8.3.4 लिबिडो का प्रत्यय (Concept of Libido)

फ्रायड ने मनुष्य में व्याप्त कामशक्ति को लिबिडो कहा है। उनके अनुसार इसका सम्बन्ध मूल रूप से व्यक्ति की कामुकता (Sexuality) से होता है। फ्रायड के अनुसार लिबिडो व्यक्ति के कामवासना की गत्यात्मक प्रवृत्ति है। इसका काम सम्बन्धी मूल प्रवृत्तियों से बहुत गहरा सम्बंध है। फ्रायड के अनुसार मूलप्रवृत्तियाँ जब-जब क्रियाशील होती है तब-तब लिबिडो भी उसके साथ अवश्य रहता है। परन्तु सभी मूल प्रवृत्तियां लिबिडो की अभिव्यक्तियां नहीं हैं। आनन्द और प्रेम की प्राप्ति की खोज में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिबिडो मूल रूप से रहता है। लिबिडो से सम्बन्धित मूल प्रवृत्तियाँ ऐसे कार्यो की ओर अग्रसर होती हैं जो जीवन को आगे बढ़ाती है। इंग्लिश एण्ड इंग्लिश का यह मत है कि लिबिडो एक मन: ऊर्जा है जिसके मूल में कामवासना है अर्थात् व्यक्ति की कामुकता से लिबिडो का सम्बन्ध है। फ्रायड ने उन सभी व्यवहारों व कार्यो को जिन्हें लोग स्नेह, प्रेम, सुख आदि से व्यक्त करते है काम सम्बन्धी या लिबिडो से सम्बन्धित माना है। लिबिडो की गतिशीलता व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है तथा उसके व्यक्तित्व विकास में उसकी अहम् भूमिका होती है।

लिबिडो की गतिशीलता दो प्रकार की दिशाओं में प्रवाहित होती है। जब इस शक्ति का प्रवाह व्यक्ति की ओर स्वयं ही होता है तब व्यक्ति अपने को प्रेम करने लगता है। इस प्रवृत्ति को फ्रायड ने आत्मरत्ति या स्वकाम (Narcissism) कहा है। इसमें व्यक्ति अपनी सुन्दरता पर मोहित होने लगता है। परन्तु जब व्यन्ति अपने पर्यावरण में अन्य व्यक्तियों के या वस्तुओं के सम्पर्क में आता है तब लिबिडो का प्रवाह स्वयं की ओर न होकर अन्य की ओर होने लगता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति से अपना प्रेम प्रदर्शन करने लगता है। फ्रायड ने इस क्रिया को विषय-प्रेम या काम्य-विषय (Love object) कहा है। कई व्यक्तियों में लिबिडों का प्रभाव कुछ काल्पनिक वस्तुओं की ओर होता है, ऐसी स्थिति में व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है।

8.3.5 स्वप्नों का प्रत्यय (Concept of dreams)

सभी मनुष्यों को नींद में स्वप्न आते हैं। कई लोग यह भी कहते हैं कि स्वप्न आने से नींद में बाधा पड़ती है, गहरी नींद नहीं आ पाती। परन्तु फ्रायड ने स्वप्नों को निद्रा में बाधक नहीं माना बल्कि उनको स्वास्थ्य के लिए सहायक माना। स्वप्नों के द्वारा मनुष्य अपनी दमित इच्छाओं को पूर्ण करता है। स्वप्न मानसिक प्रक्रियाएं है और उनका सम्बन्ध अचेतन मन से होता है। फ्रायड के अनुसार समस्त स्वप्न इच्छा पूर्ति के होते हैं। फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'The Interpretition of dreams' में स्वप्नों की विस्तार से व्याख्या की है। उन्होंने स्वप्नों की कुछ विशेषताएं बतलाई हैं उनमें से कुछ विशेषता इस प्रकार है–

(i) स्वप्न दमित इच्छाओं की पूर्ति के साधन है–जब मनुष्य अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति जाग्रत अवस्था में इस जगत में नहीं कर पाते तब ये इच्छायें, आवश्यकताएं स्वप्नों के रूप में पूर्ण होती हैं। भिन्न-भिन्न स्तर के व्यक्तियों के लिए इच्छायें, आवश्यकताएं और आकाक्षायें भिन्न-भिन्न होती हैं और इसी आधार पर उनको भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वप्न आते हैं। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति चेतन अवस्था में नहीं कर पाता अथवा किसी कारण उसका दमन कर देता है तो वह समाप्त नहीं होती बल्कि अचेतन में चली जाती है और वहां से वे (इच्छाएं) अवसर मिलने पर विभिन्न प्रकार से प्रकट होने की चेष्टा करती हैं। स्वप्न इन इच्छाओं की अभिव्यक्ति का एक साधन हैं।

(ii) स्वप्नों का अर्थ होता है–स्वप्न निरर्थक नहीं होते, उनका कोई न कोई अर्थ होता है। जैसे- व्यक्ति किसी को मरा हुआ देखे तो उसका अर्थ यह है कि वह मृत व्यक्ति स्वप्न देखने वाले व्यक्ति को अप्रिय लग रहा था।

(iii) स्वप्न मन के अचेतन भाग से जुड़ा होता है–फ्रायड के अनुसार स्वप्नों का आधार अचेतन ही है और अतिरिक्त व दमित इच्छाएं अचेतन भाग में ही रहती हैं और वे अपना रूप परिवर्तित करके स्वप्नों के माध्यम से प्रकट होती है।

(iv) स्वप्न में कामुक-वासना का महत्त्व–फ्रायड के अनुसार दमित काम-वासनाओं की पूर्ति भी स्वप्न द्वारा होती है। मनुष्य एक ओर जब अपनी काम-वासना की सन्तुष्टि करना चाहता है तो दूसरी ओर अपने सामाजिक व नैतिक नियमों की रक्षा भी करना चाहता है। इससे उसमें दो प्रकार की प्रवृत्तियां रहती हैं। एक प्रकार की प्रवृत्ति में इदम् (Id) जिसका सिद्धान्त येन केन प्रकारेण सुख प्राप्ति करना होता है, जबकि दूसरी प्रकार की प्रवृत्ति में पराहम् (Super-ego) जो सामाजिक नैतिकता का प्रतिनिधि है वह काम-वासनाओं पर अकुंश रखना चाहता है। फलस्वरूप काम-वासनाएं अपना रूप बदलकर स्वप्न में पूर्ण होती हैं।

8.3.5.2 फ्रायड के अनुसार स्वप्न रचना दो प्रकार की होती है–प्रथम प्रकार की रचना में मूल प्रवृत्ति के आवेग जो साधारणतया मनुष्य द्वारा दमित कर लिये जाते है वह सोते समय पूरी क्षमता के साथ अहम् पर दबाव डालते हैं और उनसे स्वप्न आते हैं। दूसरी प्रकार की रचना में कोई तीव्र इच्छा जाग्रत अवस्था में तृप्त नहीं होती है तो वे सोते समय अचेतन स्तर से शक्ति बटोरकर बाहर आने के लिए अहम् पर दबाव डालती है। ठीक उसी तरह जैसे कोई कैदी जेल की कोठरी से बाहर आने के लिए छटपटाता है। स्वप्न संक्षिप्त होते हैं तथा इनमें तर्क का कोई विशेष स्थान नहीं होता। ना तो ये स्पष्ट होते हैं और न ही इनमें विवेक का स्थान होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.4 व्यक्तित्व का विकास (The Development of Personality)

फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण सिद्धान्त में व्यक्तित्व विकास की विभिन्न दशाओं का वर्णन किया है। इनके अनुसार व्यक्तित्व का विकास व्यक्ति के चार प्रकार के प्रमुख तनावों पर निर्भर करता है ये तनाव हैं—

(i) शारीरिक विकास की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित तनाव।

(ii) कुण्ठाओं से पैदा होने वाले तनाव।

(iii) आन्तरिक द्वन्द्वों से पैदा हुए तनाव।

(iv) व्यक्ति जब संकट में होता है तब उस स्थिति से पैदा हुए तनाव।

उक्त सभी प्रकार के तनावों से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति प्रयत्न करता है और कुछ उपायों को काम में लाता है। इन उपायों को काम में लाते हुए व्यक्ति अपनी सुरक्षा के साथ-साथ तनावों से मुक्ति पाना चाहता है। फ्रायड ने इन युक्तियों को रक्षात्मक युक्तियां (defence machenism) कहा है। इन रक्षात्मक युक्तियों को दुश्चिन्ताएं एवं दु:ख को दूर करने के लिए व्यक्ति उपयोग में लाता है।

फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की विफलता तथा उसके अन्तर्द्वन्द्व से उसमें दुश्चिन्ता उत्पन्न होती है जो उसकी अहम् की उपयुक्तता के लिए हानिकारक होती है। इस तनावपूर्ण स्थिति का जब व्यक्ति सीधे तौर से हल (समाधान) नहीं कर पाता तो वह अपनी अहम् की रक्षा के लिए विभिन्न अप्रत्यक्ष सुरक्षा ढंग अपनाता है। इन सुरक्षात्मक ढंगों को व्यक्ति अपना सामान्य समायोजन बनाये रखने के लिए अपनाता है। इन सुरक्षात्मक ढंगो को मनोरचनाएं भी कहते हैं जो मुख्य रूप से दस प्रकार की होती है—(i) अवदमन (Repression), (ii) प्रतिगमन (Regression), (iii) उन्नयन (Sublimation), (iv) युक्तिकरण (Rationalization), (अ) रूपान्तरण (Conversion), (vi) प्रतिकरण (Reaction formation), (vii) विस्थापन (Displacement), (viii) तादात्म्य (Indentification), (ix) प्रक्षेपण या आरोपण (Projection), (ग) अन्तर्निवेश (Introjection)।

8.4.1 व्यक्तितत्व के विकास की चार अवस्थाएं

इन मनोरचनाओं को अपनाते हुए व्यक्ति अपनी दुश्चिन्ताओं को दूर करने का प्रयत्न करता है और अपना समायोजन बनाये रखने का भी प्रयास करता है जो उसके व्यक्तित्व विकास के लिए बहुत जरूरी है। फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास की चार अवस्थाएं मानी है। प्रथम अवस्था शैशव काल (Infantile), दूसरी अवस्था बाल्यकाल (Letent) व तीसरी किशोर अवस्था (Adolescent) तथा चौथी अवस्था वयस्कावस्था (Adultage)।

8.4.1.1 शैशवस्था (Infant stage)- फ्रायड ने व्यक्ति के विकास में शैशविक अवस्था को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। इसकी अवधि जन्म से लेकर 5 या 6 वर्ष की होती है। फ्रायड के अनुसार इस काल में व्यक्ति को जैसे अनुभव प्राप्त होते हैं उन अनुभवों से आगे चलकर व्यक्ति का प्रौढ़ व्यक्तित्व भी प्रभावित होता है। फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ लिबिडो के प्रवाह को भी विशेष माना है। इस काल के व्यक्तितत्व में लिबिडो शिशु के मुंह में होता है। वह अपनी मूल प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि मुख्य रूप से मुंह से करता है। माँ का स्तनपान करके वह भूख-प्यास तथा यौन जैसी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। शिशु इस अवस्था में अपना अंगूठा चूसता है तथा उन सभी वस्तुओं को जो उसके हाथ में आ जाती है मुंह में डालने का प्रयास करता है। अंगूठा चूसना या अन्य वस्तुओं को मुंह में डालना वस्तुत: शिशु का काम-वृत्ति को सन्तुष्ट करने का प्रयास है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की काम सम्बन्धी चेतना का उदय शैशवकाल से ही हो जाता है।

8.4.1.2 बाल्यकाल (Childhood or letent stage)- यह व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की दूसरी अवस्था है। यह अवस्था व्यक्ति के 6 से 12 वर्ष की आयु की होती है। इस अवस्था में बालक के मन में काम वृत्ति बढ़ जाती है और इसीलिए फ्रायड ने इस अवस्था को अव्यक्त अवस्था भी कहा है। इस अवस्था में बालक का ध्यान कुछ ऐसे कार्यों की ओर जाता है जिनसे कि उसका सामाजिक विकास होने लगता है। इस अवस्था में बालक विद्यालय भी जाता है और उसका समाजीकरण प्रारम्भ हो जाता है।

8.4.1.2 किशोरावस्था (Adolescent stage)- व्यक्तित्व विकास की तीसरी अवस्था को फ्रायड ने किशोरावस्था कहा है जो 12 वर्ष से लेकर 18 या 20 वर्ष तक होती है। इस काल में व्यक्ति में काम-वृत्ति पुन: प्रकट होने लगती है। इस किशोरावस्था में किशोर बालक और बालिकाएं कामुक विचारों और कार्यों में रूचि लेने लगते हैं। इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास का एक अन्य लक्षण भी उभरता है जिसको फ्रायड ने आत्मकेन्द्रियकरण (Self centered) कहा है। इसके फलस्वरूप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किशोर बालक या बालिका प्रत्येक स्थिति में अपने को बहुत महत्त्व देता है। अर्थात् प्रत्येक स्थिति में 'मैं' को प्रमुख स्थान देता है। इस अवस्था में बालक-बालिकाओं में समलैंगिक सम्बन्ध भी विकसित होते हैं।

(iv) उत्तर किशोर काल या वयस्कावस्था (Adult age)

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में इस अवस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अवस्था में व्यक्ति के विषम लैंगिक सम्बन्ध विकसित होने लगते हैं। किशोर बालक व बालिकाओं में प्रेम की प्रवृत्ति अधिक होने लगती है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने विवाह सम्बन्धों व व्यवसाय आदि का चुनाव करना प्रारम्भ कर देता है।

8.4.2 मनोलैंगिक विकास (Psycho-sexual devlopment)

फ्रायड ने उपरोक्त व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं का प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने के साथ ही व्यक्तित्व विकास में मनोलैंगिक विकास (Psycho-sexual devlopment) का प्रत्यक्ष प्रस्तुत किया। फ्रायड के अनुसार मनोलैंगिक विकास की पांच अवस्थाएं होती हैं ये पांच अवस्थाएं निम्न हैं–

(i) मौखिक अवस्था (Oral stage)
(ii) गुदा अवस्था (Anal stage)
(iii) लिंग प्रधान अवस्था (Phallic stage)
(iv) काम प्रसुप्ति अवस्था (Latency stage)
(v) जननांगिय अवस्था (Genaital stage)

8.4.2.1 मौखिक अवस्था (Oral stage) – फ्रायड के अनुसार यह अवस्था शिशु के जन्म से लेकर 2 वर्ष की आयु तक होती है। फ्रायड ने इस अवस्था के दो पक्ष माने हैं। पहला पक्ष लगभग एक वर्ष तक रहता है जिसमें शिशु स्तन को मुंह में रखकर और चूसकर आनन्द की अनुभूति करता है। एक वर्ष के बाद के समय में जो लगभग दो वर्ष तक रहता है शिशु का आत्मकामुक (Autoerotic) काल कहलाता है। इस समय शिशु का लिबिडो (libido) अपने में ही केन्द्रित रहता है। इस अवस्था में वह मुख सम्बन्धी जितनी भी क्रियायें होती है जैसे चूसकर, काटकर, निगलकर उनके माध्यम से सुख प्राप्त करना चाहता है। यह अवस्था सुख सिद्धान्त प्रधानता की अवस्था है।

8.4.2.2 गुदावस्था (Anal stage) – गुदावस्था, मौखिक अवस्था के बाद की अवस्था है। यह दो वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो जाती है और लगभग 4 वर्ष की आयु तक रहती है। इस अवस्था में बालक की रूचि गुदा संबंधी क्रियाओं में तथा गुदा स्थान में अधिक रहती है। इससे उसको सुख व आनंद की प्राप्ति होती है। इस अवस्था में बालक में आत्म-चेतना का विकास होनाशुरू होता है। उसका लिबिडो उसके स्वयं पर सबसे अधिक केंद्रित रहता है। अत: वह आत्म प्रेमी या अपने आपको प्रेम करने वाला बन जाता है। फ्रायड ने इसे आत्मरत्ति (Narcissism) कहा है। जब बालक कुछ बड़ा होता है व उसमें कुछ-कुछ यथार्थ बोध उत्पन्न होने लगता है तब इस अवस्था के अंत में सुख सिद्धान्त पर कार्य करने की उसकी प्रवृत्ति में कमी आ जाती है।

8.4.2.3 लिंग प्रधान अवस्था (Phellic stage)- फ्रायड के अनुसार यह व्यक्तित्व विकास की तीसरी अवस्था है। यह चार से छ: वर्ष के बीच की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति का लिबिडो जननेन्द्रियों पर केंद्रित रहता है। इसी कारण इस आयु के बालकों में हस्तमैथुन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। फ्रायड के अनुसार इस अवस्था में लिबिडो स्व से हटकर माता अथवा पिता पर केंद्रित होने लगता है। पुत्री का लिबिडो पिता पर तथा पुत्र का लिबिडो माता पर केंद्रित होता है। पुत्री का लिबिडो पिता पर केंद्रित होता है तो उसके कारण इलैक्ट्रा ग्रन्थि (Electra Complex) बन जाती है। पुत्र का लिबिडो जब माता पर केंद्रित होता है तब औडिपस ग्रंथि (Oedipus Complex) बनती है। इस अवस्था में फ्रायड ने लिबिडो की क्रिया पर अत्यधिक महत्व दिया। उन्होंने लिबिडो के कारण ही पुत्र का माता के प्रति आकर्षण और पुत्री का पिता के प्रति आकर्षण माना है।

8.4.2.4 कामुख प्रसुप्ति अवस्था (Latency Stage)- इस अवस्था का काल 6 से 12 वर्ष तक होता है। इस काल मे बालक की काम वृत्तियां प्रसुप्त हो जाती हैं। इसी काल में बालक-बालिकाएं विद्यालय में प्रवेश करते हैं। इसी काल में इनका सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक विकास धीरे-धीरे होने लगता है। यहां पराहम् का विकास भी प्रारम्भ हो जाता है जिसका संबंध सामाजिक व नैतिक मूल्यों से है। इस अवस्था में व्यक्ति पर उसके संगी-साथियों का अधिक प्रभाव पड़ता है, घर वालों का कम। इस अवस्था में बालक स्वतंत्र रहना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि उनके माता-पिता स्वतंत्रता में बाधक हों।

8.4.2.5 जननांगिय अवस्था (Genital Stage)- यह अवस्था 12 वर्ष से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक होती है। इस अवस्था में व्यक्ति में लैंगिक अभिरूचि विकसित होने लगती है। 13-14 वर्ष के किशोर बालक-बालिकाओं में यौवन की चेतना जाग्रत होने लगती है। यहां काम प्रसुप्ति के स्थान पर लैंगिक चेतना सक्रिय हो जाती है। यह भी देखा गया है कि इस आयु की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अवधि में किशोरों में समलिंगरति (Homeosexuality) की प्रवृत्ति दिखाई देती है। 15 वर्ष की उम्र के बाद समलिंगरति के स्थान पर विषमलिंगरति (Hetero sexuality) की प्रवृत्ति होने लगती है। फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं से यह स्पष्ट होता है कि फ्रायड व्यक्तित्व विकास में इन अवस्थाओं को बहुत महत्व देते है।

8.5 अल्फ्रेड ऐडलर एवं वैयक्तिक मनोविज्ञान (Alfred Adler and Individual Psychology)

वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Psychology) मनोविश्लेषण सिद्धान्त के सम्प्रदाय में अल्फ्रेड ऐडलर का नाम बड़े आदर्श के साथ लिया जाता है। ऐडलर फ्रायड के शिष्य एवं सहयोगी भी थे। ऐडलर का जन्म आस्ट्रिया देश के वियनाशहर में सन् 1870 में हुआ। ऐडलर चिकित्सक थे और नैत्र रोग विशेषज्ञ थे। रोगियों की चिकित्सा करते समय वे उनके मानसिक पक्ष पर भी ध्यान देते थे और इस तरह उनकी रूचि रोगियों के मानसिक पक्ष में होने लगी। इसी कारण उनका सम्पर्क फ्रायड से हुआ और वे फ्रायड के सहयोगी बन गये। फ्रायड और ऐडलर ने मिलकर वियना में 'Psychoanalytic Society' की स्थापना की। इस संस्था में मनोचिकित्सक एकत्र होते और मनोविश्लेषण सन्बंधी समस्याओं पर विचार गोष्ठी करते। कालान्तर में ऐडलर का फ्रायड से मतभेद हो गया। मतभेद का मूल कारण फ्रायड के कामुकता सम्बंधी लिबिडो के सिद्धान्त को लेकर था। इस मतभेद के कारण ऐडलर 1911 में फ्रायड से अलग हो गये और उन्होंने मनोविश्लेषण की एक नई शाखा का विकास किया। उनकी मनोविश्लेषण की यह शाखा वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Psychology) के नाम से विख्यात है। ऐडलर की मृत्यु 67 वर्ष की आयु में 1937 में हुई। ऐडलर ने मानव व्यवहार को समझनें एवं इसकी व्याख्या करने के लिए सात संकल्पनाओं का प्रतिपादन किया, जो निम्नलिखित हैं—

(i) श्रेष्ठता के लिए प्रयास (Striving for Superiority)
(ii) हीनता की भावना और प्रति पूर्ति (Inferiority and Compensation)
(iii) जीवन की शैली (Style of life)
(iv) सृजनात्मक स्व (Creative Self)
(v) चेतन स्व (Conscious Self)
(vi) कथात्मक लक्ष्य (Fictional goal)
(vii) सामाजिक अभिरूचि (Social Intrest)

इन संकल्पनाओं की व्याख्या हम आगे कर रहे हैं।

8.5.1 श्रेष्ठता के लिए प्रयास (Striving for Superiority)

ऐडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ होने के लिए संघर्ष करता है। श्रेष्ठता की ग्रंथि उस व्यक्ति में पैदा होती है जो हीनता की भावना से ग्रसित रहा होता है। अत: हीनता की भावना से मुक्त होने के लिए व्यक्ति पूर्णता और श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होता है। ऐडलर के अनुसार व्यक्ति एक प्रकार का आक्रामक पशु है, वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है और उसमें शक्ति प्राप्त करने की इच्छा होती है जिससे की वह अपना अस्तित्व एवं समायोजन बनाये रख सके। ऐडलर के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ बनना चाहता है। फ्रायड ने मानव-व्यवहार के मूल में सेक्स (Sex) की उपस्थिति पर बल दिया वहीं ऐडलर ने इसका विरोध करते हुए यह बात कही कि व्यक्ति में आक्रमकता,शक्ति और श्रेष्ठता की कामना जन्मजात होती है और यही उसके विकास का कारण है। ऐडलर के अनुसार इस श्रेष्ठता का विकास हीनता की भावना से मुक्त होने पर होता है। उसके अनुसार हीनता की भावना और श्रेष्ठता का एक-दूसरे से सम्बंध है। व्यक्ति जब श्रेष्ठता का विकास करने लगता है तो हीनता की भावना उसमें स्वत: कम होने लगती है। यह प्रक्रिया व्यक्तित्व विकास में एक अहम् भूमिका निभाती है।

8.5.2 हीनता की भावना और प्रति पूर्ति (Inferiority and Compensation)

ऐडलर ने अपने व्यक्तिगत मनोविज्ञान में 'हीनता का सिद्धान्त' को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके मतानुसार व्यक्ति में जन्मजात कुछ कमियां होती हैं और इस कारण उसमें हीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। व्यक्ति जन्म से ही अपने को दूसरे की तुलना में दुर्बल और हीन देखने लगता है। जीवन के प्रथम चार वर्षों में बालक में यह चेतना होती रहती है कि वह बहुत कमजोर है और दूसरे लोग उससे बड़े हैं, वे अधिक योग्य एवं सशक्त हैं। व्यक्ति इस हीनभावना से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में हीनता से छुटकारा पाने का प्रयत्न बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यक्ति का ज्यों-ज्यों विकास होता है त्यों-त्यों वह अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट होकर अच्छा बनने का प्रयत्न करता है। इसी संदर्भ में ऐडलर ने अंगपरखहीनता (Organinferiorty) की संकल्पना प्रस्तुत की। इस संकल्पना को स्पष्ट करते हुए ऐडलर ने इस बात

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर जोर दिया कि व्यक्ति अपनी हीनता (दुर्बलता) से छुटकारा पाना चाहता है तब वह अत्यधिक प्रयास करता है। व्यक्ति का यह प्रयास एक प्रकार से प्रतिपूरण (Compensation) है। प्रतिपूरण की क्रियाओं के आधार पर व्यक्ति की जीवन-शैली का विकास होता है।

ऐडलर ने यह भी माना है कि हीनता की भावना मनुष्य में उस समय पैदा होती है जब वह अपने जीवन के किसी क्षेत्र में अभाव या अपूर्णता पाता है। इसी के फलस्वरूप व्यक्ति प्रयत्न करता है कि वह और अच्छा व सफल बनने के लिए और अधिक प्रयास करता है। हीनता की भावना व्यक्ति को आगे बढ़ने में प्रेरणा प्रदान करती है। कई बार हीनता की भावना दोषपूर्ण लालन-पालन से भी होती है। अत: व्यक्ति के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए उसके जीवन का प्रारम्भिक काल बहुत महत्वपूर्ण होता है इसी समय व्यक्ति के लालन पोषण पर सही एवं समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

8.5.3 जीवन की शैली (Style of life)

ऐडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अनन्य है इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-शैली में भिन्नता पायी जाती है। समाज में रहने के कारण व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से अन्य व्यक्तियों के समान है फिर भी जीवन के लक्ष्य के अनुसार उसकी जीवन-शैली अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की जीवन-शैली भी भिन्न-भिन्न होती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अपने अलग गुण और लक्ष्य होते हैं इसी कारण वैयक्तिक भिन्नता भी होती है। ऐडलर के अनुसार जीवन-शैली का विकास मनुष्य के बाल्यकाल से प्रारम्भ हो जाता है। जब बालक पांच वर्ष का हो जाता है तो उसमें श्रेष्ठता की ओर बढ़ने की भावना उत्पन्न होने लगती है और उसमें जीवन-शैली का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। ऐडलर के अनुसार जीवन-शैली बालक के व्यवहार की समग्रता को नियंत्रित करती है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वोलमैन (Wolman) ने ऐडलर के वैयक्तिक सिद्धान्त के सम्बंध में इस संकल्पना के बारे में अपने विचार को इस रूप में प्रस्तुत किया है—"The style of life is the expression of one's individuality. Each individual sees the goal of superiority in a unique way."

जब व्यक्ति युवावस्था में प्रवेश करता है तो यही जीवन-शैली उसके व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करती है। व्यक्ति अपने समाज, संस्कृति, उनकी मान्यताओं ओर परम्पराओं से बंधा रहता है तथा उसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में वह अपनी जीवन-शैली को इस प्रकार विकसित करता है कि इन कठिन परिस्थितियों का सामना वह धैर्यतापूर्वक और साहस के साथ कर सके और यथा संभव अपने को श्रेष्ठ बना सके। ऐडलर के अनुसार व्यक्ति की जीवन-शैली का विकास उसकी प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं संस्कृति के संदर्भ में होता है।

8.5.4 सृजनात्मक स्व (Creative Self)

ऐडलर के सिद्धान्त में सृजनात्मक 'स्व' का प्रत्यय बड़ा ही महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में एक प्रकार की रचनात्मक शक्ति पाई जाती है और इसी रचनात्मक शक्ति के द्वारा वह अपनी जीवन-शैली का विकास करता है। व्यक्ति अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा ही जीवन लक्ष्य हेतु संघर्ष का निर्धारण करता है।शरीर विज्ञान की दृष्टि में सभी व्यक्तियों केशारीरिक रचना में समानता होती है परन्तु मानसिक प्रक्रियाओं के कारण सभी व्यक्ति समान नहीं हो पाते। इसी कारण वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) भी होती है। वैयक्तिक भिन्नता का कारण आनुवंशिक एवं पर्यावरण के कारक भी हो सकते हैं परन्तु साथ-साथ व्यक्ति की सृजनात्मकशक्ति भी बहुत महत्वपूर्ण कारक है। ऐडलर के अनुसार सृजनात्मक 'स्व' का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति अपने आप को क्या बनाना चाहता है? उसके उद्देश्य क्या हैं? उसके प्रगति की दिशा क्या है? ऐडलर के अनुसार व्यक्ति मात्र अपने पर्यावरण की देन नहीं है अपितु उसमें ऐसी सृजनात्मक क्षमताएं भी हैं जिससे वह अपने प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक पर्यावरण पर विशेष नियंत्रण प्राप्त कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सके। व्यक्ति में ऐसी भी क्षमताएं हैं जिससे वह अपने अतीत और वर्तमान अनुभवों से लाभान्वित होकर अपनी जीवन-शैली को श्रेष्ठ बना सके। ऐडलर के अनुसार **'सृजनात्मक स्व'** मानव जीवन का सक्रिय सिद्धान्त है और वह उसके व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

8.5.5 चेतन स्व (Conscious Self)

ऐडलर चेतना को व्यक्तित्व का बीज मानते हैं। यह चेतना ही व्यक्ति का 'स्व-चेतन' है इसी कारण व्यक्ति को प्राय: इस बात की चेतना होती है कि वह क्या कर रहा है। फ्रायड की तरह ऐडलर ने इस बात को नहीं माना कि व्यक्ति के अनेक कार्य अचेतन अथवा अवचेतन से प्रेरित होते हैं। प्रो. जायसवाल ने ऐडलर द्वारा 'चेतन-स्व' पर प्रस्तुत टिप्पणी को इस प्रकार प्रस्तुत किया है "चेतन जीवन उसी समय अचेतन बन जाता है जब हमें उसकी समझ नहीं होती और ज्योंही हम उसे समझने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लगते हैं त्योंही यह अचेतन की प्रवृत्ति चेतन हो जाती है।" इसी 'स्व-चेतन' से व्यक्ति में अपने आप को समझने, अपने लक्ष्य को निर्धारित करने ओर जीवन-शैली को श्रेष्ठ बनाने का ज्ञान रहता है।

8.5.6 कथात्मक लक्ष्य (Fictional goal)

कथात्मक लक्ष्य प्रत्यय के बारे में ऐडलर ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति अपने भविष्य के बारे में जो कुछ सोचता है वही उसका कथात्मक या काल्पनिक उद्देश्य है। इस उद्देश्य के आधार पर ही मनुष्य की जीवन-शैली तथा सृजनात्मक 'स्व' का विकास होता है इसका लक्ष्य व्यक्ति के भविष्य से संबंध रखता है। व्यक्ति अपने लक्ष्य का निर्माण कल्पना के आधार पर करता है तथा ऐसे आदर्शो को प्राप्त करना चाहता है जो उसके यथार्थ जीवन से काफी दूर होते हैं। परन्तु वह अपने सृजनात्मक स्व की सहायता से इस लक्ष्य को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करता है हालांकि इसमें उसे सफलता आसानी से नहीं मिल पाती। ऐडलर के अनुसार सृजनात्मक स्व जीवन-शैली और कथात्मक लक्ष्य में घनिष्ठ संबंध है।

8.5.7 सामाजिक अभिरूचि (Social Intrest)

सामाजिक अभिरूचि के संदर्भ में ऐडलर का यह मत है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और प्रत्येक मनुष्य अन्य लोगों के साथ सम्बंध स्थापित करना चाहता है। दूसरे लोगों में रूचि लेना मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। ऐडलर के अनुसार यदि हमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक के संदर्भ में अन्य लोगों से सम्बंध स्थापित करने है तो हमें अन्य लोगों को समझना होगा। सामाजिक अभिरूचि से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तो होता ही है साथ ही साथ उसकी सामाजिक चेतना का भी विकास होता है। जब व्यक्ति अपने सामाजिक पर्यावरण में घुल मिल जाए और उसमें अभिरूचि ले तो उसके व्यक्तित्व का विकास सरल हो जाता है। सामाजिक अभिरूचि से समाजीकरण की प्रक्रिया भी सरल हो जाती है। परिवार में बालक का समाजीकरण उसके माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों की सहायता से होता है। बालक जब पांच-छ: वर्ष की आयु में विद्यालय जाता है तो अपने अन्य साथियों के सम्पर्क में आता है तथा उनके सामाजिक गुणों को भी ग्रहण करता है। कालान्तर में व्यक्ति अपने विकास के साथ-साथ अपने समाज के विकास में भी अभिरूचि लेने लगता है। परिवार में, परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बंधों को भी बच्चों में सामाजिक अभिरूचि के विकास का आधार माना जा सकता है।

सामाजिक अभिरूचि की एकता मे न्यूनता या कमी होने पर व्यक्ति असमायोजित हो जाता है जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। समायोजन और व्यक्ति के विकास में सामाजिक अभिरूचियों का महत्वपूर्ण स्थान है। जब व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह ठीक ढंग से करता है तथा अपने सामाजिक जीवन के यथार्थ के प्रति निष्ठावान होता है तब उसकी सामाजिक अभिरूचियों का समुचित विकास होता है। इससे उसमें सामाजिक भावनाएं उत्पन्न होती हैं और वह अपने साथियो, मित्रों और सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति रखता है। ऐडलर के मतानुसार सामाजिक अभिरूचि जन्मजात होती है। सामाजिक संबंधी जो भी गुण है सबके बीज व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित होते हैं और अनुकूल सामाजिक पर्यावरण में इनका विकास किया जा सकता है।

8.6 व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)

व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन करने एवं विकास क्रम में आने वाली कुछ जीवन स्तरों एवं स्थितियों में से ऐडलर ने कुछ विशेष निर्धारकों पर ध्यान दिया है ये निर्धारक हैं—1. जन्म से प्रथम छ: वर्ष, 2. जन्म क्रम, 3. अनन्यता, 4. व्यक्ति और पर्यावरण।

8.6.1 जन्म से प्रथम छ: वर्ष

ऐडलर के अनुसार व्यक्तित्व के विकास में जीवन-शैली के स्वरूप का निर्धारण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनका मानना था कि बालक की जीवन-शैली के स्वरूप का निर्धारण उसके जन्म से लेकर पांच-छ: वर्ष की आयु तक आते-आते हो जाता है। बालक के जीवन के प्रारंभिक वर्षो में उसकी जीवन-शैली उसके बाद के जीवन में उसके व्यवहार एवं क्रियाओं को जानने में सहायक सिद्ध होती है। इसी समय में उसकी जीवन-शैली के स्वरूप का निर्धारण उसके विकास का प्रमुख अंग हो जाता है। व्यक्ति की जीवन-शैली और व्यक्तित्व पर प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति के प्राकृतिक एवं शारीरिक प्रभाव का संबंध अनुवांशिकता (Heridity) से भी है। उसे अपनी आनुवंशिकता से कुछ जैविक,शारीरिक एवं बौद्धिक गुण प्राप्त होते है, तथा उसकी मानसिक योग्यताएं तथा क्षमताएं भी बहुत कुछ अनुवंशिकता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

से प्राप्त होती है। व्यक्तित्व के विकास के संदर्भ में ऐडलर का मत है कि बालक के परिवार एवं उसके साथ रहने वाले अन्य सदस्यों का प्रभाव भी उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं।

8.6.2 जन्म क्रम

ऐडलर के अनुसार व्यक्तित्व के विकास में बच्चे का जन्मक्रम भी बहुत महत्वपूर्ण है। बच्चा किस क्रम में जन्म लेता है और उस परिस्थिति को बच्चा किस प्रकार समझने का प्रयत्न करता है यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रथम क्रम की संतान को माता-पिता उसके परिवार के अन्य सदस्य उसकी ओर आवश्यकता से अधिक ध्यान देते हैं और उसको बड़े लाड़-प्यार से रखते हैं। आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार और अधिक ध्यान कई बार बालक को बिगाड़ देते हैं। जब पहली संतान के बाद दूसरी संतान का जन्म होता है तो पहली संतान को बड़ा धक्का लगता है और उसको अनुभव होने लगता है कि उसके माता-पिता उसकी ओर अब उतना ध्यान नहीं देते जितना पहले देते थे। इस भावना के कारण उसका व्यक्तित्व कुसमायोजित हो सकता है। इसी भावना के कारण वह अपने से छोटे भाई या बहिन को क्षति पहुंचाने का प्रयत्न भी करता है। कई परिवारों में अधिकतर ऐसे लोग हैं जो अपने माता-पिता की प्रथम संतान होते हैं और उनका व्यक्तित्व भी कुसमायोजित होता है परन्तु दूसरी ओर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो माता-पिता की प्रथम संतान होते हुए भी सुसमायोजित होते हैं तथा दूसरों की सहायता हेतु तत्पर रहते हैं। इसका कारण यह भी है कि उन्हें उनके परिवार में प्रारम्भ से ही इस बात की शिक्षा दी जाती है कि वह अपने छोटे भाई-बहिनों की देखभाल करें, उनकी रक्षा करें। यदि परिवार के सदस्य छोटी और बड़ी संतानों को उनके कर्तव्यों के बारे में ठीक से समझा दें और ठीक से उनका समाजीकरण करें तो उनमें समायोजन की समस्या नहीं रहती।

8.6.3 अनन्यता

ऐडलर के अनुसार व्यक्ति में कुछ विशेष प्रकार के गुण होते हैं जिससे वह अपने आपको दूसरों से भिन्न करता है। वह दूसरों से भिन्न अपने जीवन के लक्ष्य का निर्माण भी करता है। उसके व्यक्तित्व में वे सब गुण जो उसको दूसरे व्यक्ति से भिन्न करते हैं उसके व्यक्तित्व की अनन्यता कहलाती है। ये अनन्यता प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है और इसी कारण समाज में भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करते हैं तथा उनकी अभिरूचियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। उनके कार्य करने की क्षमताओं में भी अंतर पाया जाता है। ऐडलर के अनुसार इसी अनन्यता के आधार पर व्यक्ति अपनी जीवन-शैली का निर्माण करता है और श्रेष्ठता की ओर बढ़ता है।

8.6.4 व्यक्ति और पर्यावरण

ऐडलर के अनुसार व्यक्ति जिस जगह में रहता है उसके विषय में तथा अपने बारे में उसका क्या दृष्टिकोण है इसका भी व्यक्तित्व विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जैसा पूर्व में कहा गया है कि व्यक्ति के जीवन के प्रथम पांच-छः वर्ष उसके व्यक्तित्व के विकास में बड़े महत्वपूर्ण होते हैं वह अपने परिवार, सामाजिक परिवेश के विषय में सोच-विचार करता है तथा अपने शरीर और स्वास्थ्य के विषय में भी धारणा बनाने लगता है। ऐडलर के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने जगत का सृष्टा है। उनका यह मानना है कि जिस व्यक्ति के अनुभव बाल्यकाल में सुख एवं आनंददायक होते हैं वह व्यक्ति आगे चलकर अपने परिवार को, समाज को और जगत को सुख एवं आनंदप्रदायक होता है। अतः स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए बालक को ऐसी स्थितियों में रखना चाहिए कि जिनसे उसे कोई मानसिक एवं भौतिक कष्ट न हो और उसके परिवार के सदस्यों का भी उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार हो। इससे उसके व्यक्तित्व के विकास में धनात्मक सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त बालक के विद्यालय, उसके शिक्षकों तथा उसके पर्यावरण का भी उसके व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति का समाज और उसकी संस्कृति तथा उसके सहकर्मियों का भी व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है।

8.7 युंग एवं विश्लेषण मनोविज्ञान (Jung and Analytic Psychology)

मनोविश्लेषण सिद्धात संप्रदाय के संस्थापक फ्रायड, एडलर और युंग ये तीनों ही माने जाते है। युंग फ्रायड के सहयोगी एवं शिष्य थे। फ्रायड के बाद मनोविश्लेषण संप्रदाय के कार्य को सबसे अधिक युंग ने ही आगे बढ़ाया। कार्ल गुस्ताव युंग का जन्म स्विट्जरलैण्ड के कैस्विल नगर में 26 जुलाई 1875 को हुआ। इनके पिता पादरी थे। इस कारण युंग के प्रारम्भिक जीवन पर दर्शन और धर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उन्होंने चिकित्साशास्त्र में उपाधि प्राप्त की। 1907 में वे फ्रायड के सम्पर्क में आये। फ्रायड, युंग और एडलर ने मिलकर मनोविश्लेषण संप्रदाय की स्थापना की और इसके विकास के लिए तीनों साथ-साथ कार्य करने लगे। परन्तु कालान्तर में युंग ने 1912 में फ्रायड का साथ छोड़ दिया। फ्रायड से अलग होने का कारण यह था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि फ्रायड हर क्षेत्र में काम (Sex) तथा लिबिडो (Libido) पर अधिक बल देता था। युंग ने स्वीकार किया कि व्यक्ति के जीवन में काम (Sex) या लिबिडो (Libido) का महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु इसे इतना अधिक महत्व नहीं देना चाहिए जितना फ्रायड ने दिया। 1913 में उसने नये संप्रदाय की स्थापना की, इस संप्रदाय को 'विश्लेषण मनोविज्ञान' के नाम से जाना गया। उन्होंने कई देशों के साथ भारत की भी यात्रा की और ये भारतीय संस्कृति तथा इसके दर्शन से बहुत प्रभावित हुए।

युंग ने व्यक्तित्व संरचना में अहम् तथा स्व (Ego and Self)] व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconciousness) एवं सामूहिक अचेतन (Collective unconscious), मुखौटा (Persona), एनिमा या अन्तःनारी (Anima), एनिमस या अन्तःनर (Animus), छाया (Shadow), सम्बन्धि संकल्पनाओं को प्रस्तुत किया। लिबिडो या काम-वासना पर भी उसने अपने विचारों को प्रस्तुत किया। युंग द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व की संरचना को उनके उपरोक्त घटकों के आधार पर समझा जा सकता है।

8.7.1 अहम् (Ego)

व्यक्तित्व की संरचना में युंग ने अहम् को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने अहम् को चेतना स्तर का केन्द्र माना है। उसके अनुसार अहम् में उच्च कोटि की निरन्तरता एवं समरूपता पाई जाती है। युंग के मतानुसार अहम् चेतना के केन्द्र में है, परन्तु फिर भी यह संपूर्ण चित्त (Psyche) के समकक्ष नहीं है। 'स्व' के बारे में उनका यह मानना है कि 'स्व' संपूर्णता का परिचायक है और इस संपूर्णता में चित्त भी निहित है अत: 'अहम्' और 'स्व' में अंतर है। उनके अनुसार 'अहम्' 'स्व' का एक अंग है। 'स्व' के बारे में उनका यह मानना है कि 'स्व' एक आदर्श व्यक्ति के रूप में प्रकट होता है।

8.7.2 व्यक्तिगत एवं सामूहिक अचेतन (Personal and Collective unconscious)

युंग के अनुसार जो सम्बन्ध अहम् और स्व में है वही सम्बन्ध व्यक्तिगत और सामूहिक अचेतन में है। व्यक्तिगत अचेतन के बारे में उनकी यह धारणा है कि यह अहम् से संबन्धित है। यह व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होता है। अहम् के विभिन्न अनुभवों का संग्रह विशेषकर उन अनुभवों का जिन्हें व्यक्ति भूल जाना चाहता है अथवा जिन्हें वह वांछनीय नहीं मानता, व्यक्ति के अचेतन में रहते हैं। युंग ने यह भी माना है कि व्यक्तिगत अचेतन में संग्रहित अनुभवों को चेतना के चेतन स्तर पर लाया जा सकता है। मनोविश्लेषण पद्धति से मन चिकित्सा करते समय इस बात का प्रयास किया जाता है कि व्यक्तिगत अचेतन में पड़े हुए जो आवांछनीय विचार एवं भाव है उन्हें बाहर लाया जाए। इस प्रतिक्रिया से मानसिक ग्रंथियों को खोला जा सकता है। मानसिक ग्रंथियां (Ego Complex) व्यक्ति की भावनाओं, विचारों स्मृतियों तथा प्रत्यक्षीकरणों का एक संगठित पुंज है। सामूहिक चेतना के अन्तर्गत युंग उन सभी मानसिक विचारधाराओं, धारणाओं, भावनाओं आदि को सामूहिक मानता है जिसका संबंध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर, किसी जाति या समाज में सामूहिक स्तर का होता है। सामूहिक अचेतन व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होता है तथा इसमें उसकी संस्कृति, उसके राष्ट्र, उसके समाज एवं पूर्वजों के आदर्श, संस्कार, इच्छाओं और वासनाओं आदि का संग्रह पाया जाता है। सामूहिक अचेतना सम्पूर्ण मानव जाति में पायी जाती है तथा इसमें रहस्यवादी सामूहिक विचारध ारा की प्रधानता होती है। युंग के अनुसार समाज में न्याय, धर्म, राज्य, देश-जाति, ज्ञान-विज्ञान के विषय में जो धारणाएं किसी सभ्य समाज में पायी जाती हैं उनका संबंध सामूहिक चेतना से होता है। व्यक्ति में सामूहिक अचेतन मानव-जाति के समस्त संस्कारों, विचारों तथा भावनाओं का एक अपरिचित भंडार है।

8.7.3 मुखौटा (Persona)

युंग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के दो रूप होते हैं—एक व्यक्तिगत, दूसरा सामाजिक। पर्सोना का अर्थ मुखौटा होता है। इस शब्द का प्रयोग व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी किया जाने लगा। जब व्यक्ति समाज में व्यवहार करता है तब वह अपने व्यक्तिगत रूप से हटकर अर्थात् अपना रूप बदलकर व्यवहार करता है। युंग के अनुसार व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार पूर्णत: यथार्थपरक नहीं होता, उसमें कुछ बनावट रहती है। उसके अनुसार व्यक्ति वास्तव में जो कुछ है उससे कहीं अधिक दिखाने की कोशिश करता है क्योंकि वह अपने सामाजिक प्रभाव एवं महत्त्व को बढ़ाकर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहता है। व्यक्ति पर्सोना के माध्यम से अपनी आंतरिक कमियों और कठिनाईयों को भी छिपाने में सफल हो जाता है।

व्यक्ति के पर्सोना और अंह में भी गहरा संबंध है। जब व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, इच्छाओं तथा रूचियों को सामाजिक आकांक्षाओं, इच्छाओं व रूचियों में मिला देता है उस समय उसका अंह उसके सामाजिक व्यक्तित्व या पर्सोना में घुल-मिल जाता है तथा वह समाज सेवा में लग जाता है। इसी कारण कभी-कभी व्यक्ति अपनी इच्छा एवं आवश्यकताओं की भी उपेक्षा करने लग जाता है। युंग के अनुसार व्यक्ति का यह व्यवहार उसकी मूल प्रवृतियों का आद्य प्रारूप है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

युंग के मतानुसार जब हम पर्सोना का विश्लेषण करते है तब हमें व्यक्ति की वास्तविक भावनाओं का ज्ञान होता है क्योंकि पर्सोना तो एक मुखौटा है जो वास्तविक भावना को छुपा लेता है। व्यक्ति सामाजिक मुखौटा पहनकर समाज में अपना स्थान बना लेने में सफल हो जाता है। परंतु उसकी वास्तविक भावनाएं एवं उनका ज्ञान तो पर्सोना के विश्लेषण के बाद ही ज्ञात हो सकता है।

8.7.4 एनीमा या अन्तःनारी तथा एनीमस या अंतःनर (Anima or Animus)

युंग के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना में अन्तःनारी Anima तथा अतःनर (Animus) जैसी स्वतंत्र और मानसिक संरचनाएं है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की चेतना में एक नारी पक्ष तथा दूसरा पुरुष पक्ष होता है। जिस पुरुष व्यक्ति के व्यक्तित्व की चेतना में नारी पक्ष की प्रधानता होती है तो उस व्यक्तित्व को एनिमा प्रधान व्यक्तित्व कहा जा सकता है और ऐसे पुरुष के व्यवहार में नारी लक्षण युक्त व्यवहार ज्यादा होता है। उनके चाल-ढाल और व्यवहार में नारीत्व गुण झलकते है। इसी तरह प्रत्येक नारी की चेतना में एक नर पक्ष होता है जिसे युंग ने (Animus) कहा है। यदि नारी में अन्तपुरुष के (Animus) गुण की प्रधानता हो जाए तो वह पुरुष जैसा व्यवहार करने लगती है। इस तरह युंग का यह मत है कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में नर और नारी के गुण मिले होते हैं। इसकी परिकल्पना भारतीय सनातन धर्म में अर्धनारीश्वर की, जो कल्पना है उससे की गई है। अर्धनारीश्वर भगवान शिव का स्वरूप है जिसमें आधाशरीर पुरुष और आधाशरीर स्त्री का है।

8.7.5 छाया (Shadow)

युंग के अनुसार छाया, मुखौटा की स्थिति की ठीक विपरीत स्थिति है जहाँ व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को समाज में प्रस्तुत करने के लिए मुखौटा लगा लेता है और जिसका गुण, स्वरूप और स्वभाव में सुंदरता, साहस और प्रेम है तो इसकी छाया का गुण-स्वरूप और स्वभाव में असुंदरता, घृणा और कायरता ही पाया जाएगा। दूसरे शब्दों में छाया में व्यक्ति के तिरस्कृत, उपेक्षित तथा अलाभकारी वृत्तियों पर नियंत्रण पाने या विजय पाने का प्रयत्न किया है। फिर भी ये पाशविक प्रवृत्तियाँ मनुष्य के अन्दर आज भी पाई जाती हैं और यही प्रवृत्तियां छाया कहलाती हैं। इन प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जब व्यक्ति कार्य करता है तब युंग इसे छाया आद्य प्रारूप से संबन्धित मानते है। युंग के अनुसार उसी छाया प्रारूप से प्रेरित होकर व्यक्ति असामाजिक कार्य करता है तथा उसके अनुचित भाव, विचार और क्रियाएं इसी के कारण प्रकट होती है। व्यक्ति इन असामाजिक एवं अनुचित कार्यो और व्यवहारों को 'पर्सोना' के द्वारा छिपाने का प्रयत्न करता है अथवा प्रयास पूर्वक इनका दमन करके इन्हें अपने व्यक्तिगत अचेतन में धकेल देता है। जब व्यक्ति अपने दोषों को दूसरों पर आरोपित करता है तो इस प्रवृत्ति में भी मूल रूप से छाया ही क्रियाशील रहती है।

8.8 लिबिडो (Libido) या काम वासना पर युंग के विचार

युंग ने कामवासना सम्बन्धी विचारों को फ्रायड के कामवासना सम्बन्धी लिबिडो (Libido) की भाँति स्वीकार नहीं किया। सन् 1912 में युंग ने अपनी पुस्तक 'The Psychology of Unconscious' में कामवासना के प्रत्यय पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार यह जीवन की एक सामान्य ऊर्जा है जो व्यक्ति के जीवन क्रियाओं की गतिशीलता एवं नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होती है। उन्होंने लिबिडो (Libido) को काम-वासना तक सीमित नहीं किया बल्कि इसे मनः ऊर्जा (sychic-energy) के रूप में लिया है। फ्रायड की इस मान्यता को कि मानव व्यवहार कामवासना (Libido) से ही संचालित होता है, युंग ने पूर्णतया अस्वीकार कर दिया। उनके अनुसार मानव व्यवहार एक अभेद्य जीवनशक्ति से प्रभावित होता है। युंग के अनुसार मानसिक ऊर्जा और भौतिक ऊर्जा की निरन्तरता है तथा एक ऊर्जा दूसरी ऊर्जा में परिवर्तित हो सकती है और इसी के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार की अभिव्यक्ति सम्भव है।

8.9 व्यक्ति के विकास की अवस्थाएं (Stages of Person's Development)

फ्रायड और एडलर के द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं की भाँति युंग ने विभिन्न अवस्थाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं किया। अपनी पुस्तक 'आधुनिक मनुष्य आत्मा की खोज में' में उन्होंने व्यक्ति के जीवन की चार अवस्थाओं का वर्णन किया है। इन अवस्थाओं की तुलना उन्होंने एक दिन के चार भागों-प्रातः, माध्याह्न, अपराह्न तथा संध्या से की है। उनके अनुसार व्यक्ति को चार अवस्थाओं—(1) बाल्यावस्था (2) युवावस्था (3) प्रौढ़ावस्था (4) वृद्धावस्था से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति को भिन्न-भिन्न स्थितियों तथा समस्याओं से साक्षात्कार करना पड़ता है। युंग ने मानव जीवन की चार अवस्थाओं का जो विवरण दिया है उसमें बाल्यावस्था का बहुत महत्त्व है क्योंकि इस काल के अन्तर्गत ही व्यक्तित्व विकास की नींव बनती है। जिसकी कमजोरी या मजबूती पर ही आगामी व्यक्तित्व निर्भर रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.9.1 बाल्यावस्था (Childhood)

बाल्यावस्था में ही व्यक्ति का सामाजीकरण होता है, वह अपने माता-पिता तथा समाज से स्वयं के जीवन निर्वाह की कला सीखता है। विद्यालय में वह ज्ञान-विज्ञान, आध्यात्मिक, धर्माचरण आदि की शिक्षा ग्रहण करता है। इसी काल में उसके भावी व्यक्तित्व की नींव पड़ जाती है। भारतीय विचार परम्परा के अनुसार बाल्यवस्था, ब्रह्मचर्यावस्था ही है। इस तथ्य का युंग भी समर्थन करते हैं। भारतीय विचारधारा के अन्तर्गत इस अवस्था में ज्ञान प्राप्त करने तथा कामशत्रु से बचाव करने की बात की गई है। युंग ने इस बात को माना है कि बाल्यावस्था ज्ञानार्जन करने के लिए सर्वोत्तम समय है और इस काल के दौरान काम-जनित उत्तेजनाओं से सावधान रहने की आवश्यकता है। इस प्रकार युंग के विचार हमारी भारतीय संस्कृति के विचारों से समानता रखते हैं।

8.9.2 युवावस्था (Adolescent)

युंग के अनुसार बाल्यावस्था सहजरूप से यौवनावस्था में प्रविष्ट होती है। बाल्यावस्था में अर्जित ज्ञान, अनुभव, कला-कौशल का उपयोग व्यक्ति के द्वारा यौवनावस्था में सहजरूप से किया जाता है। इस समय व्यक्ति की प्रवृत्ति बहिर्मुखी (Extrovert) होती है और व्यक्ति बाह्य प्रवृत्तियों के उपयोग में लगा रहता है। इस समय व्यक्ति के दायित्व बढ़ जाते हैं और अपने आप को व्यवस्थित करने हेतु व्यक्ति संघर्ष करता है। इसी काल में वह अपनी विकासोन्मुखी योजनाएँ बनाता है। यही काल व्यक्ति के द्वारा गृहस्थी बसाने का होता है तथा वह यौवनावस्था काम प्रधान भोगों की प्राप्ति तथा समृद्धि का उपभोग करता है।

8.9.3 प्रौढ़ावस्था (Adult-age)

प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति अपने समाज में स्तर व्यवस्था बनाए रखता है। वह अपने आदर्शों को बनाए रखता है। इस समय व्यक्ति की अभिव्यक्ति अन्तर्मुखी (Introvert) होने लगती है। इसमें व्यक्ति अपने पुत्र परिवार के साथ रहते हुए बाहरी दुनिया के निरर्थक झंझटों से मुक्त रहना चाहता है। युंग ने व्यक्ति के जीवन के इस उत्तरार्ध काल में व्यक्ति की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को समेटने तथा आन्तरिक दिशा की ओर बढ़ने को वांछनीय एवं श्रेयकर माना है। उनके अनुसार जीवन के इस ढलते हुए समय में व्यक्ति को अपने अंतर का सम्यक प्रकार से समझने की ओर जागरूक होने का प्रयत्न करना चाहिए।

8.9.4 वृद्धावस्था (Old-age)

इस अवस्था में व्यक्ति के समायोजन की समस्याएं काफी रहती हैं। युंग के अनुसार जीवन की अंतिम अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था में व्यक्ति को अपनी सभी समस्याओं को अवचेतन में विलय कर देने का प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय चिन्तन परम्परा के अन्तर्गत इस अवस्था को सन्यास अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में व्यक्ति को चाहिए कि अपने दीर्घ-कालीन जीवन में जो कुछ पाया है उसको पुनः विसर्जित कर दे। इससे उसकी समायोजन की समस्याएं काफी सीमा तक हल हो जाती हैं। युंग ने बाल्यावस्था और वृद्धावस्था को एक जैसा माना है। इन दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति अपनी समस्याओं के समाधान के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। बाल्यावस्था में बच्चे की देखभाल जिस प्रकार माता-पिता करते है उसी प्रकार वृद्धावस्था में भी व्यक्ति की देखभाल उसके पुत्र एवं पुत्रियों के द्वारा की जाती है।

8.10 व्यक्तित्व की गतिशीलता (Dynamics of Personality)

युंग ने व्यक्तित्व को गतिशील माना है। इस गतिशीलता का कारण युंग व्यक्ति में जाने वाली चैत्य ऊर्जा को मानते हैं। युंग के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का गठन कुछ इस प्रकार होता है कि इसमें एक ओर तो ऊर्जा आती रहती है और दूसरी ओर उसका उपयोग होता रहता है।शारीरिक ऊर्जा से व्यक्ति की शारीरिक क्रियाएं होती हैं। यह ऊर्जा व्यक्ति को भोजन के द्वारा तथा पर्यावरण जिसमें वायु, धूप, जलवायु आदि तत्व होते हैं, से प्राप्त होती है। व्यक्तित्व गतिशीलता हेतु युंग ने मानसिक ऊर्जा या चित्त ऊर्जा का उल्लेख किया है और उनके अनुसार इसी से व्यक्ति का व्यक्तित्व गतिशील रहता है। युंग ने शरीर के भीतर उपस्थित जैविक ऊर्जा का सम्बन्ध मानसिक ऊर्जा से माना है। जीवन ऊर्जा और चैत्य ऊर्जा के लिए युंग ने भी लिबिडो (Libido) शब्द का प्रयोग किया है। जहाँ फ्रायड ने लिबिडो शब्द का प्रयोग काम सम्बन्धी ऊर्जा के लिए किया है वही युंग ने लिबिडो (Libido) शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से उस ऊर्जा के लिए किया है जो व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक स्तर पर गतिशील बनाती है। इसी चैत्य ऊर्जा से व्यक्ति का व्यक्तित्व गतिशील रहता है और इस ऊर्जा की अभिव्यक्ति व्यक्ति के व्यवहार के माध्यम से होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.11 व्यक्तित्व सम्बंधी प्रत्यय (Concept of Personality)

युंग ने अपने व्यक्तित्व वर्गीकरण में दो प्रकार के व्यक्तितत्व का उल्लेख किया है–

1. अन्तर्मुखी (Introvert) प्रकार का व्यक्तित्व।
2. बहिर्मुखी (Extrovert) प्रकार का व्यक्तित्व।

8.11.1 अन्तर्मुखी (Introvert) प्रकार का व्यक्तित्व

वे व्यक्ति जिनकी रूचि अपनी ओर ही केन्द्रित होती है और जो अपने ही विचारों एवं भावनाओं के जगत् में रहते है उनका संसार क्षेत्र उन तक ही सीमित रहता है। ऐसे व्यक्ति अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले कहलाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिबिडो (Libido) का प्रवाह उसके अन्त: जगत की ओर होता है। वे सामाजिक क्रिया कलापों से कटे रहते है।

8.11.2 बहिर्मुखी (Extrovert) प्रकार का व्यक्तित्व

ये ऐसे व्यक्ति होते है जिनकी रूचि सामाजिक तथा भौतिक वातावरण की ओर अधिक रहती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का लिबिडो (Libido) बाहर की ओर प्रवाहित होता है। ये बाह्य जगत् तथा समाज के साथ व्यवहार करने में आनन्दित होते हैं।

युंग ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण विस्तार से आठ भागों में प्रस्तुत किया है। उनका ये वर्गीकरण व्यक्ति की इन चार प्रकार की मनोवैज्ञानिक क्रियाओं पर आधारित है। ये क्रियायें हैं—(1) संवेदन (Sensation) (2) चिन्तन (Thinking) (3) अन्त:प्रज्ञा (Intution) व (4) भावना (Feeling)।

(1) अन्तर्मुखी संवेदन प्रकार (Introverted Sensation Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की मानसिक स्थिति ऐसे कलाकारों के समान होती है जो समाज में रहते हुए भी उसके प्रति उदासीन रहते हैं। ये अपने सामाजिक पर्यावरण के कार्यों की ओर ध्यान तो देते हैं परन्तु उनमें रूचि नहीं लेते।

(2) अन्तर्मुखी चिन्तन प्रकार (Introverted Thinking Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में व्यक्तिनिष्ठ विचारों की प्रधानता रहती है। उनका स्वयं का चिन्तन होता है और इसी प्रकार की चिन्तन मुक्ति से वे अपना सामाजिक समायोजन बनाए रखते हैं।

(3) अन्तर्मुखी अन्त:प्रज्ञा प्रकार (Introverted Intution Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने काल्पनिक जगत् में खोए रहते हैं। ये अधिकतर धार्मिक एवं रहस्यवादी प्रकृति के होते हैं।

(4) अन्तर्मुखी भावना प्रकार (Introverted Feeling Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में भावनाओं एवं संवेगों की प्रधानता होती है। ये दिवा-स्वप्न की स्थिति में रहते है तथा प्राय: मौन एवं शांत रहते है। संसार के प्रति इनका व्यवहार सद्भावनापूर्ण तथा शांतिपूर्ण होता है।

(5) बहिर्मुखी संवेदन प्रकार (Extroverted Sensation Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति पूर्णत: यथार्थवादी होते हैं। ये भौतिकवादी होते हैं और इनका दृष्टिकोण भी भौतिक होता है। ये पर्यावरण की स्थिति, क्रियाएं और वस्तुओं के संवेदी पक्ष से प्रभावित रहते हैं। संवेदनाशीलता इनका प्रमुख गुण होता है।

(6) बहिर्मुखी चिन्तन प्रकार (Extroverted Thinking Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने बाह्य जीवन के प्रति प्राय: सचेत होते है। ये संसार का प्रत्यक्षीकरण, यथार्थ और संवेदन की दृष्टि से करते हैं। ये तथ्य को सही ढंग से जानने का प्रयत्न करते हैं।

(7) बहिर्मुखी अन्त:प्रज्ञा प्रकार (Extroverted Intution Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से प्राप्त अनुभवों पर निर्भर नहीं रहते बल्कि वे परिस्थितियों के अनुसार अपनी अन्त:प्रज्ञा का उपयोग करते हैं।

(8) बहिर्मुखी भावना प्रकार (Extroverted Feeling Type)- इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने बाह्य जीवन सम्बन्धित स्थितियों और वस्तुओं के प्रति शीघ्र भावुक हो जाते हैं। इनके व्यवहार पक्ष में भावना की प्रधानता होती है। ये दूसरों से शीघ्र ही मित्रता कर लेते हैं अर्थात् इनमें मित्रता करने की क्षमता अधिक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

18.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व संरचना में चेतना के स्तरों के प्रत्यय को स्पष्ट करें।
2. इदम्, अहम् एवं पराहम् के प्रत्यय को स्पष्ट करें।
3. व्यक्तित्व संरचना में मूल प्रवृत्तियों की भूमिका स्पष्ट करें।
4. स्वप्न क्या है? इनकी विशेषताओं के बारे में समझाइये।
5. व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं को स्पष्ट करें।
6. फ्रायड द्वारा प्रस्तुत मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं को समझाइये।
7. व्यक्तित्व विकास के लिए ऐडलर द्वारा प्रस्तुत मुख्य अवस्थाओं का वर्णन कीजिए?
8. मानव-व्यवहार के अध्ययन के लिए ऐडलर द्वारा प्रस्तुत संकल्पनाओं का वर्णन कीजिए?
9. निम्न पर टिप्पणियां लिखिये :

   (1) श्रेष्ठता के लिए प्रयास　　(2) हीनता की भावना एवं पूर्ति

   (3) जीवन-शैली　　(4) सामाजिक अभिरूचि
10. युंग की व्यक्तित्व सकंल्पनाओं को समझाएं।
11. लिबिडो (Libido) या कामवासना सम्बन्धित युंग के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
12. व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
13. व्यक्तित्व की गतिशीलता पर टिप्पणी लिखिये।
14. युंग ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण किस प्रकार किया? स्पष्ट करें।

8.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान : डॉ. सीताराम जायसवाल
2. मनोविज्ञान के सिद्धान्त एवं सम्प्रदाय : डॉ. राजकुमार ओझा
3. मनोविज्ञान का इतिहास : डॉ. रामनाथशर्मा
4. व्यक्तित्व मनोविज्ञान : डॉ. सीताराम जायसवाल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 3–मानवीय क्षमताएं और जीवन विज्ञान

इकाई 9 मानवीय क्षमताएं एवं परिभाषाएं

संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 प्रकृति एवं परिभाषाएं
9.3 सृजनात्मकता
9.4.1 सृजनात्मकता मापन परीक्षण
9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में यह सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति इस कला में दक्ष है, अमुक बालक विज्ञान या कला में बहुत अच्छा है, अमुक कारीगर अपनी विशेष कला में निपुण है। इस तरह व्यक्तियों में कई प्रकार की भिन्न-भिन्न कौशलताऐं पायी जाती है। कोई बालक गणित में निपुण होता है तो कोई आंग्ल भाषा में, कोई चित्रकारी में निपुण होता है तो कोई गायन के क्षेत्र में। कोई अच्छा कलाकार है तो कोई मशीन चलानें में निपुण है। कोई छात्रा नृत्य में दक्ष है तो कोई सिलाई करने में। साधारण तौर पर कोई भी छोटा मोटा कार्य हर कोई व्यक्ति कर सकता है परन्तु कुछ व्यक्तियों में कार्य करने की विशेष दक्षता या क्षमता होती हैं। हम साधारण भाषा में इसको ईश्वर की देन मान सकते है परन्तु मनोविज्ञान की भाषा में यह व्यक्ति की अभिक्षमता या विशेष कला या दक्षता है। अभिक्षमता व्यक्ति को किसी एक क्षेत्र में या समूह में कार्य करने की विशिष्ट क्षमता (Potentiality) या विशिष्ट योग्यता (Specific ability) या दक्षता (Skill) है।

अभिक्षमता व्यक्ति में जन्म जात भी हो सकती है एवं अर्जित भी हो सकती है। यदि बालक की अभिक्षमताओं को माता, पिता या शिक्षक बाल्य अवस्था में ही जान ले और उसके अनुसार इन अभिक्षमताओं को बढ़ाने के लिए उपयुक्त पर्यावरण तैयार करें तो बालक का व्यक्तित्व विकास सुचारू रूप से हो सकता है।

9.1 उद्देश्य

1. व्यक्ति की अभिक्षमताओं के बारे में जान पायेंगे।
2. सृजनात्मक मापन परीक्षण को समझ पायेंगे।
3. सामान्य और विशिष्ट अभिक्षमताओं के बारे में जान पायेंगे।

9.2 प्रकृति एवं परिभाषाऐं (Nature and Definitions)

अभिक्षमता की परिभाषा के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। कई मनोवैज्ञानिक अभिक्षमता को जन्मजात या अर्जित मानते है जबकि कुछ मनोवैज्ञानिक अभिक्षमता को व्यक्ति के विशेष एक गुण अथवा बहुत से गुणों का सम्मिलित प्रभाव मानते है।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बिंघम (Bingham) के अनुसार अभिक्षमता बहुत से गुणों का सम्मिलित प्रभाव है तथा विभिन्न क्षमताओं के लिए विभिन्न गुणों के मिश्रणों की आवश्यकता होती है। इनके अनुसार अभिक्षमता एक बीज बोध योग्यता (Potential ability) है।

बिंघम ने अभिक्षमता की कुछ विशेषताएं बतलाई है ये विशेषताएं है—(1) व्यक्ति की अभिक्षमता उसके वर्तमान गुणों का वह समुच्चय (Set) है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं को इंगित करती है। (2) अभिक्षमता अमूर्त संज्ञा है। (3) अभिक्षमता का रूचि, योग्यता एवं सन्तुष्टि से बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। (4) अभिक्षमता व्यक्ति की केवल जन्मजात योग्यता ही नहीं होती अपितु किसी कार्य को करने में उस व्यक्ति के समुपयुक्तता को भी व्यक्त करती है। मनोवैज्ञानिक सुपर (Super) ने अभिक्षमताओं की विशेषताओं में एकात्मक रचना, विशिष्टता, अधिगम (सीखना) की सुविधा एवं स्थिरता को महत्वपूर्ण माना है।

विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताएं पाई जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने जिन विशिष्ट योग्यताओं का वर्णन किया उनमें मानसिक शक्तियां, बौद्धिक शक्तियां, संवेदन, प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पना सृष्टि तथा सौन्दर्य बोध योग्यताएं भी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रो. फिलिफ ई. वर्नन के अनुसार व्यक्ति में मांसपेशीय एवं शारीरिक योग्यताएं, निष्पादन, यांत्रिक योग्यताएं तथा व्यवसायिक योग्यताएं भी अभिक्षमताओं के रूप में होती है। हम इस अध्याय में सृजनात्मक एवं कुछ अन्य प्रकार की मानवीय योग्यताओं या क्षमताओं का अध्ययन करेगे।

9.3 सृजनात्मकता (Creativity)

सृजनात्मकता के बारे में डॉ. महेश भार्गव ने अपनी पुस्तक में कुछ मनोवैज्ञानिको की परिभाषाएं प्रस्तुत की है। इस्रेली एन. (Israili N.) के अनुसार–"सृजनात्मकता किसी नवीन वस्तु का निर्माण एवं प्रणयन करने की सामर्थ्य अथवा क्षमता है।" (Creativity is the capacity of constructing and manipulating any new object.) जे. ई. ड्रेहवल के अनुसार–"सृजनात्मकता मानव की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह कोई रचना अथवा नवीन विचार प्रस्तुत करता है।" "Creativity is that human ability by which he presents any novel work or ideas." गिलफ्रोर्ड (Guilford) के अनुसार सृजनात्मकता के अर्न्तगत पांच मानसिक प्रक्रियाएं काम करती है ये हैं–(1) ज्ञानात्मक (Cognition), (2) अभिसारी चिन्तन (Convergent thinking), (3) अपसारी चिन्तन (Divergent thinking), (4) स्मृत्ति (Memory), (5) मूल्यांकन (Eveluation)।

सृजनशीलता प्राय: सभी मनुष्यों में पायी जाती है। यह किसी में कम तो किसी में अधिक। अलग-अलग क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में सृजनशील हो सकते हैं। सृजनात्मकता का मापन एक कठिन कार्य है क्योंकि यह योग्यता अनूठी, अस्पष्ट, विस्तृत तथा जटिल रूप में व्यक्ति में वितरित होती है। इसमे कई गुणों या योग्यताओं का समावेश रहता है।

9.3.1 सृजनात्मकता मापन परीक्षण

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि सृजनात्मकता में कई गुणों एवं योग्यताओं का समावेश रहता है अत: किसी एक परीक्षण द्वारा व्यक्ति की सृजनात्मक योग्यता को मापना बड़ा कठिन है। कई मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मकता को मापने के लिए कई प्रकार के परीक्षणों का निर्माण किया जिसमें गिलफोर्ड एवं मेरीफिल्ड, होलैण्ड तथा कैंट, वेलेन्य तथा टोलेन्स आदि के परीक्षण काफी महत्वपूर्ण हैं। भारत में भी भारतीय अनुकूलन, सृजनात्मकता मापन कुछ परीक्षणों का निर्माण हुआ इनमें प्रमुख परीक्षण राय चौधरी, प्रो. सी. आर. प्रमेश, वी.वी. चटर्जी, उषा खरे, के. एन. शर्मा, बी. के. पाश्व, बाकर मेंहदी, दिलावर सिंह, एम. वी. कुण्डले आदि परीक्षण बहुत महत्वपूर्ण हैं।

सृजनात्मक योग्यता के अतिरिक्त अन्य कई मानवीय योग्यताएं हैं जैसे- यांत्रिक योग्यताएं, कला योग्यताएं, संगीत योग्यताएं, चिकित्सा योग्यता तथा विज्ञान एवं तकनीकी योग्यताएं। ये सभी योग्यताएं अभिक्षमता ही हैं। विशेष कार्यों के लिए व्यक्तियों के चयन करते समय इन योग्यताओं पर ध्यान दिया जाता है। इन योग्यताओं को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-1. सामान्य या विभेद अभिक्षमता तथा 2. विशिष्ट क्षेत्रों की अभिक्षमता।

9.3.1.1 सामान्य या विभेद अभिक्षमता

इन क्षमताओं या योग्यताओं में व्यक्ति की निम्न प्रकार की योग्यताएं देखी जाती हैं—

1. श्रवण एवं दृष्टि संबंधी योग्यता—व्यक्ति में इस प्रकार की योग्यता कितनी है वह कितने दूर तक स्पष्ट देख सकता है तथा कितना स्पष्ट सुन सकता है। इस प्रकार की योग्यताएं रेल तथा बस आदि के चालकों के लिए बड़ी उपयोगी होती है।
2. पेशीय एवं हस्तश्रम संबंधी योग्यता—इस प्रकार की योग्यता व्यक्ति के मांस पेशियों से सम्बंधित तथा हाथ के कार्यों से सम्बंधित होती है।
3. यांत्रिक योग्यता—इस प्रकार की योग्यता यंत्रों से सम्बंधित होती है।
4. लिपिक योग्यता या अभिक्षमता—इसमें लिपिक संबंधित कार्य को करने की योग्यता या क्षमता होती है।

इन सभी अभिक्षमताओं या योग्यताओं को हम परीक्षणों से माप सकते हैं। दृष्टि एवं श्रवण संबंधी कुछ विशेष परीक्षण होते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति की श्रवण क्षमता एवं दृष्टि क्षमता का पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार पेशीय एवं हस्तश्रम संबंधी कुछ विशेष परीक्षणों जैसे क्रियात्मक सामंजस्य (Motor Co-ordination), अंगुली निपुणता (finger dexterity), तथा हस्तश्रम निपुणता (Manual dexterity) को काम में लेकर इनकी दक्षता या क्षमता मापी जा सकती है। इसी तरह यांत्रिक योग्यता को

मापने के लिए यांत्रिक संबंधी परीक्षणों का उपयोग किया जा सकता है। लिपिक अभिक्षमता को मापने के लिए प्राथमिक मानसिक योग्यताओं को मापा जाता है जिसमें स्थानगत योग्यता (Spatial ability), प्रतिबोधक योग्यता (Perceptual ability), संख्यात्मक योग्यता (Numerical ability), शाब्दिक योग्यता (Verbal ability), शब्द प्रवाह योग्यता (Word fluency ability), स्मृति योग्यता (Memory ability), तर्क योग्यता (Reasoning ability) के मापन किये जाते है।

9.3.1.2 विशिष्ट क्षेत्रों की अभिक्षमता

कुछ व्यक्तियों में कुछ अभिक्षमताएं विशिष्ट क्षेत्रों की होती हैं जैसे शिक्षा- अध्यापन एवं व्यवसाय के विशिष्ट क्षेत्र। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी विशिष्ट योग्यताएं होती है जैसे संगीत, कला, यांत्रिकीय विज्ञान (इंजिनियरिंग), चिकित्सा आदि हैं। न्याय क्षेत्र के लिए भी विशिष्ट योग्यताएं या अभिक्षमताएँ होती हैं। इनके अतिरिक्त मांसपेशियां एवं शारीरिक सम्बन्धी विशिष्ट योग्यताएं भी व्यक्तियों में होती है। व्यक्तियों में इन अभिक्षमताओं का पता लगाने के लिए विशेष परीक्षणों द्वारा उनका परीक्षण किया जाता है। हम इन अभिक्षमताओं को मुख्य रूप से पांच भागों मे विभक्त कर सकते हैं और अभिक्षमताओं के अनुसार इनकी अभिक्षमता परीक्षणों से माप सकते हैं—

(1) अध्यापन विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता
(2) कला विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता
(3) संगीत विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता
(4) विज्ञान एवं तकनीकी विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता
(5) चिकित्सा सम्बंधी विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता
(6) न्याय विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता
(7) शारीरिक विशिष्ट योग्यता
(8) अन्य बौद्धिक विशिष्ट योग्यताएं

1. अध्यापन विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता–शिक्षा जगत अध्ययन एवं अध्यापन की अभिक्षमता व्यक्ति में विशेष महत्व रखती है। अध्यापन संबंधी विशिष्ट योग्यताओं या अभिक्षमताओं का पता लगाने के लिए कुछ परीक्षण किये जाते हैं। इन अभिक्षमताओं का पता लगने के बाद अभिक्षमता वाले व्यक्तियों का अध्यापन कार्य हेतु चयन किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण राज्य स्तर के एवं राष्ट्रीय स्तर के होते हैं। इनको राज्य शिक्षक परीक्षाएं एवं राष्ट्रीय शिक्षक परीक्षाएं कहते हैं।

2. कला विशिष्ट योग्यता– कला एक ऐसा गुण है जो प्राय: हर व्यक्ति में पाया जाता है। कला के सहारे व्यक्ति अपना उच्चतम विकास कर सकता है। कला से व्यक्ति अपना जीवन यापन भी करता है और अपने जीवन को आनन्द मय भी बना सकता है। कला में कई प्रकार की कलाओं को शामिल किया जा सकता है। जैसे हस्तकला, डिजाइन बनाने की कला, वस्तुओं का निर्माण करने की कला, जादू दिखाने की कला आदि आदि। इस प्रकार की विशिष्ट योग्यताएं मंच कलाकार, चित्रकार संगीतकार, गीतकार, मूर्तिकार, वास्तुकार एवं रचनाकारों में होनी अत्यन्त आवश्यक है। इन विशिष्ट योग्यताओं से व्यक्ति न केवल अपना ही विकास करता है अपितु वह समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र का भी विकास करता है। इनमें निपुण होना या इनकी विशिष्ट योग्यता या क्षमता को ज्ञात करने के लिए कुछ परीक्षण भी किये जाते हैं इनमें मुख्य परीक्षण निम्न हैं–

(1) मायर का कला निर्णय परीक्षण
(2) ग्रेव डिजायन निर्णय परीक्षण
(3) होर्न कला का अभिक्षमता का परीक्षण
(4) नोवर कला योग्यता परीक्षण

इन परीक्षणों के आधार पर व्यक्ति विशिष्ट कला योग्यता को जाना जाता है और आवश्यकता अनुसार उनमें सुधार किया जा सकता है।

3. संगीत विशिष्ट योग्यता–हर कोई व्यक्ति गाता है परन्तु गाने की दक्षता कुछ ही लोगों में होती है। गाने में स्वर, गाने के साथ-साथ वाद्यों के साथ तालमेल या वाद्यों का गाने के साथ तालमेल बैठाना बहुत महत्वपूर्ण दक्षता है। गाने का लय, कंठ का सुरीला होना एवं गाने की ताल बैठाना भी एक योग्यता है। वाद्यों का गाने के साथ उपयोग लेना जैसे किस राग के साथ कौनसा वाद्य काम में लिया जाय, भी एक कला है। इस कला या दक्षता को परखने के लिए निम्न परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

(1) अलफियर संगीत उपलब्धि परीक्षण
(2) ड्रेक संगीत अभिक्षमता परीक्षण
(3) सीशोर संगीत योग्यता परीक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. विज्ञान एवं तकनीकी अभिक्षमताएं—व्यक्ति में विज्ञान एवं तकनीक की अभिक्षमता बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। इसी अभिक्षमता के आधार पर व्यक्ति इन्जिनियर, मशीन ऑपरेटर, पायलेट एवं ड्राईवर आदि बनता है। वर्तमान समय मशीनरी युग है और हर कार्य मशीन आधारित हो गया है। इसका मुख्य कारण है विज्ञान और तकनीक का विकास। विज्ञान एवं तकनीकी विकास में वे ही लोग सहायक सिद्ध होते हैं जिनमें विज्ञान एवं तकनीकी अभिक्षमताएं होती हैं। आकाश में उड़ना, अंतरिक्ष में जाना, समुद्रों में जाना आदि सभी वैज्ञानिक कार्य हैं। इस समय व्यक्ति के जीवन का हर क्षेत्र विज्ञानमय बना हुआ है। विद्युत परियोजनाएं, रेल यातायात एवं अन्य यातायात के साधन विज्ञान एवं तकनीकी से जुड़े हैं। इस प्रकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों के लिए विशेष दक्षता वाले या अभिक्षमता वाले व्यक्ति ही कार्य कर सकते हैं। व्यक्ति में विज्ञान एवं तकनीकी अभिक्षमताओं का पता लगाने के लिए कुछ सम्बंधित परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। इन परीक्षणों से इस बात का पता लगाया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति विज्ञान या तकनीकी शास्त्र में कितना दक्ष है? या उसमें इस विषय की कितनी क्षमता या विशेष योग्यताऐं हैं? विज्ञान एवं तकनीकी अभिक्षमताओं को ज्ञात करने के लिए प्राय: निम्न परीक्षणों का उपयोग किया जाता है-

(1) स्टैण्डर्ड विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण
(2) मिनीसोटा इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण
(3) इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण

5. चिकित्सा सम्बंधी विशिष्ट योग्यताएं या अभिक्षमताएं—चिकित्सा क्षेत्र में विभिन्न व्याधियों के लिए उनसे सम्बन्धित दक्षता रखने वाले चिकित्सक होते हैं। काय चिकित्सा, काय-कार्य चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, मानसिक चिकित्सा, स्नायु चिकित्सा एवं मूत्र संस्थान चिकित्सा आदि के लिए विशिष्ट योग्यता रखने वाले ही चिकित्सक कार्य करते हैं। इससे रोगों का सही एवं जल्दी निदान एवं चिकित्सा संभव होती है। विभिन्न रोगों के लिए चिकित्सक भी भिन्न भिन्न होते हैं। इस प्रकार की अभिक्षमताओं को ज्ञात करने के लिए चिकित्सा संबंधी परीक्षण काम में लिये जते है। इसमें मेडिकल एंन्ट्रेस परीक्षण (Medical Entrance Test) प्रमुख होते हैं। इसके अतिरिक्त चिकित्सा के किसी विशेष क्षेत्र की अभिक्षमता या दक्षता जानने के लिए भी कुछ अन्य परीक्षण होते हैं। जैसे शल्य चिकित्सा, काय चिकित्सा, विशेष रोगों की चिकित्सा, अस्थि रोगों की चिकित्सा, पशु चिकित्सा आदि के लिए विशिष्ट योग्यताओं को जानने के लिए भिन्न परीक्षण होते हैं।

6. न्याय क्षेत्र की विशिष्ट योग्यताएं—यह एक बहुत महत्वपूर्ण योग्यता होती है क्योंकि व्यक्ति की इसी योग्यता के आधार पर समाज के लोगों को न्याय प्राप्त होता है। निष्पक्ष न्याय देना एक बहुत बड़ी चुनौती होती है तथा इसमें कई पक्षों को ध्यान में रखना पड़ता है। यही न्याय से किसी व्यक्ति का जीवन बच सकता है तो वही गलत व्यक्ति को सजा दिला सकता है। अत: इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति निर्भय होकर एवं धैर्यता के साथ अपनी दक्षता का उपयोग करते हुए निष्पक्ष न्याय करें। इस प्रकार की योग्यताएं अधिवक्ता (वकील) एवं न्यायधीशों में होनी बहुत जरूरी है। अत: इस प्रकार की योग्यता को ज्ञात करने के लिए विशेष परीक्षणों का उपयोग होता है। इस क्षेत्र में जाने वाले व्यक्ति की विशेष रूप से न्यायिक परीक्षाएं (Judicial examination) ली जाती है।

7. शारीरिक विशिष्ट योग्यताएं—इस प्रकार की योग्यताओं का महत्व शारीरिक कार्य, खेलकूद तथा श्रमयुक्त कार्यों के समय बहुत रहता है। शारीरिक शिक्षा, खेलकूद प्रतियोगिताएं, शारीरिक शक्ति परीक्षण, दौड़, कुश्ती, गोला फेंकना, भार ढ़ोना और शारीरिक श्रम युक्त कार्य करने में शारीरिक विशिष्ट योग्यताएं महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। विभिन्न प्रकार के शारीरिक कार्यों के लिए उससे संबंधित शरीर के विभिन्न अंगों की योग्यताओं का उपयोग किया जाता है। इन योग्यताओं का विभिन्न प्रकार के शारीरिक परीक्षणों द्वारा मापन किया जा सकता है। जैसे दौड़ के लिए टांगों की मांसपेशियों, कुश्ती कि लिए शारीरिक गठन और शारीरिक भार, श्वास रोकने की क्षमता आदि का परीक्षण किया जाता है। हमारे दैनिक जीवन में शारीरिक योग्यताओं का उपयोग प्राय: होता रहता है। शरीर का लचीला पन भी शरीर की विशिष्ट योग्यता है। शरीर जितना लचीला होगा उतना ही अधिक तनाव को झेलने की उसमें क्षमता होगी। शरीर के द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रवृत्ति के अनुसार शरीर के अवयवों की क्षमताएं भी होती है।

8. अन्य बौद्धिक विशिष्ट योग्यताएं—पूर्व में हमने सृजनात्मक, यांत्रिक, स्थानगत, प्रतिबोधक, संख्यात्मक, ाब्दिक, स्मृति एवं तर्क योग्यताओं के विषय में लिखा है। इन सभी योग्यताओं का सम्बंध बौद्धिक शक्ति से है, परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट बौद्धिक क्षमताएं भी है जैसे-बौद्धिक शक्ति (Intellectual power), इच्छा शक्ति (Will power), कल्पना शक्ति (Imagination power), चिन्तन शक्ति (Thinking power), भाव एवं अनुभूतियां (Emotions and Feeling), अन्तर्ज्ञान (Insight)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

या अन्तर्दृष्टि (Intution power) तथा स्मृति क्षमता (Memory power)। इनमें से कई क्षमताएं जन्म से होती हैं तो कई क्षमताओं को बढ़ाया भी जा सकता है। ये अभिक्षमताएं प्राय: एक-दूसरे से जटिल रूप से गुंथी (Intertwind) हुई हैं। इन क्षमताओं को भी विभिन्न प्रकार के परीक्षणों द्वारा मापा जा सकता है। बौद्धिक क्षमता व्यक्तित्व विकास के लिए बहुत उपयोगी है। इन्हीं क्षमताओं से व्यक्ति अपना चहुमुखी विकास कर सकता है जो उसके जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। व्यक्ति बौद्धिक क्षमता के आधार पर ही अपना व्यवहारिक पक्ष प्रकट करता है और इन्हीं के आधार पर स्वयं के साथ परिवार के साथ एवं समाज के साथ व्यवहार करता है। अत: ये क्षमताएं जितनी उच्च होगी व्यक्ति का व्यक्तित्व भी उतना ही उच्च होगा।

हमने इस अध्याय में मानव के कुछ विशिष्ट क्षमताओं के बारे में संक्षेप में बताया है। इन क्षमताओं को किस तरह बढ़ाया या उन्नत किया जा सकता है इसका भी संक्षेप में अध्ययन हन पाठ सं. 15 में करेंगे।

9.4 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. मानव क्षमताओं की परिभाषाएं दीजिये।
2. मानव क्षमताएं क्या हैं, विस्तार से समझाइये।
3. अध्यापन विशिष्ट योग्यता या अभिक्षमता को समझाइये।
4. चिकित्सा क्षेत्र की अभिक्षमताओं को समझाइये।
5. टिप्पणी करें—
    1. बौद्धिक क्षमताएं
    2. श्रवण की दृष्टि संबंधी योग्यताएं
    3. कला योग्यताएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 10 बुद्धि एवं इसके सिद्धान्त

संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 बुद्धि की परिभाषाएं
10.2.1 बुद्धि सामान्य योग्यता
10.2.2 बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है
10.2.3 बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है
10.3 बुद्धि के सिद्धान्त
10.3.1 बिने का एक कारक सिद्धान्त
10.3.2 द्वितत्व सिद्धान्त
10.3.3 त्रिकारक बुद्धि सिद्धान्त
10.3.4 थर्नडाइक का बहुकारक बुद्धि सिद्धान्त
10.3.5 थर्स्टन का समूह कारक बुद्धि सिद्धान्त
10.3.6 थॉमसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त
10.3.7 कैटल का बुद्धि सिद्धान्त
10.3.8 बर्ट तथा वर्नन का पदानुक्रमित बुद्धि सिद्धान्त
10.3.9 गिलफोर्ड का त्रि-आयाम बुद्धि सिद्धान्त
10.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन काल से ही बुद्धि ज्ञानात्मक क्रियाओं में चर्चा का विषय रहा है। 'बुद्धिर्यस्य बलंतस्य' अर्थात् जिसमें बुद्धि है वही बलवान है। बुद्धि के कारण ही मानव अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी बुद्धि चर्चा का विषय रहा है। हजारों वर्ष पूर्व से ही व्यक्तियों को बुद्धि के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बांटा गया। कुछ व्यक्ति बुद्धिमान कहलाते हैं, कुछ कम बुद्धि के, कुछ मूढ बुद्धि के तो कुछ जड़ बुद्धि कहलाते हैं। परन्तु बुद्धि के स्वरूप को समझना बड़ा कठिन है। बुद्धि के स्वरूप पर प्राचीन काल से ही मतभेद चले आ रहे हैं तथा आज भी मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाविदों के लिए भी बुद्धि वाद-विवाद का विषय बना हुआ है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से भी बुद्धि के स्वरूप को समझने हेतु मनोवैज्ञानिकों ने प्रयास प्रारम्भ किए परन्तु वे भी इसमें सफल नहीं हुए तथा बुद्धि की सर्वसम्मत परिभाषा न दे सके। वर्तमान में भी बुद्धि के स्वरूप के सम्बंध में मनोवैज्ञानिकों के विचारों में असमानता है। अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के स्वरूप को अलग-अलग ढंग से पारिभाषित किया।

10.1 उद्देश्य (Objectives)

1. बुद्धि की परिभाषाएं समझ सकेंगे।
2. बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।

10.2 बुद्धि की परिभाषाएं

मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषाओं को तीन वर्गों में रखा है—

(i) बुद्धि सामान्य योग्यता है

(ii) बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है।

(iii) बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है।

इन तीन वर्गों के अन्तर्गत बुद्धि को जिस तरह पारिभाषित किया गया उनका उल्लेख इस प्रकार है—

10.2.1 बुद्धि सामान्य योग्यता

इस प्रकार की विचारधारा को मानने वाले मनोवैज्ञानिक टर्मन, एम्बिगास, स्टाऊट, बर्ट गॉल्टन स्टर्न आदि हैं। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि व्यक्ति की सामान्य योग्यता है, जो उसकी हर क्रिया में पायी जाती है। इन मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—

टर्मन (Termn) के अनुसार "अमूर्त वस्तुओं के सम्बंध में विचार करने की योग्यता ही बुद्धि है।" "Intelligence is the ability to carry out abstract thinking."

एबिंगास (Ebbinghous) के अनुसार 'बुद्धि विभिन्न भागों को मिलाने की शक्ति है।'

"Intelligence is the power of combining parts."

स्टाऊट (Stout)– ने बुद्धि को अवधान की शक्ति के रूप में माना है।

"Intelligence is regarded as the power of attention."

बर्ट (Burt) के मतानुसार ''बुद्धि जन्मजात व्यापक मानसिक क्षमता है।''

"Intelligence is an innate all round pervading mental efficiency."

गाल्टन (Galton)- के अनुसार ''बुद्धि विभेद एवं चयन करने की शक्ति है।''

"Intelligence is the power of discrimination and sellection."

स्टर्न (Stern)– के मतानुसार ''नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता ही बुद्धि है।''

"Intelligence is the ability to adjust oneself to a new situation."

10.2.2 बुद्धि दो या तीन योग्यताओं का योग है

इस प्रकार की विचारधारा को मानने वालों में स्टेनफोर्ड बिने का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बिने (Binet) के अनुसार 'बुद्धि तर्क, निर्णय एवं आत्म आलोचन की योग्यता एवं क्षमता है।'

"Intelligence is the ability and capacity to reason well to judge well and to be self-critical."

10.2.3 बुद्धि समस्त विशिष्ट योग्यताओं का योग है

बुद्धि के इस वर्ग की परिभाषाओं के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताओं के योग को बुद्धि की संज्ञा दी है। इन विचारों को मानने वाले थार्नडाइक, थर्स्टन, थॉमसन, वेस्लर तथा स्टोडार्ड हैं।

थार्नडाइक (Thorndike) – महोदय के अनुसार "उत्तम क्रिया करने तथा नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता को बुद्धि कहते हैं।"

"Intelligence is the ability to make good responses and is demonstrated by the capacity to deal affectivity with new situations."

थॉमसन Thomson के अनुसार– "बुद्धि वंशपरम्परागत प्राप्त विभिन्न गुणों का योग है।"

"Intelligence is the essence of inherited abilities."

वेस्लर Wechsler के मत में "बुद्धि व्यक्ति की क्षमताओं का वह समुच्चय है जो उसकी ध्येयात्मक क्रिया, विवेकशील चिंतन तथा पर्यावरण के प्रभाव से समायोजन कराने में सहायक होती है।"

"Intelligence is the aggregate capacity of the individual to act purposefully to think rationally and to deal effectively with his environment."

स्टोडार्ड (Stoddard) के मतानुसार "बुद्धि (क) कठिनता (ख) जटिलता (ग) अमूर्तता (घ) आर्थिकता (ङ) उद्देश्य प्राप्यता (च) सामाजिक मूल्य तथा (छ) मौलिकता से सम्बंधित समस्याओं को समझने की योग्यता है।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"Intelligence is the ability to understand problems that are characterised by (a) difficulty (b) complexity (c) abstractness (d) economy (e) adaptations to a goal (f) social value and (g) commergence of originals under such conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces."

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सभी मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को भिन्न-भिन्न प्रकारों से समझा है। फिर भी इन्हें आधार मानते हुए डॉ. भार्गव ने बुद्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है, "बुद्धि सामान्य, मानसिक एवं जन्मजात योग्यताओं का वह समन्वय है जिसकी सहायता से व्यक्ति को उसके प्रत्येक कार्य करने में सफलता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। यह नवीनतम परिस्थितियों में व्यक्ति का समायोजन कायम रखने में विशेष रूप से क्रियाशील होती है। इसका सम्बंध अनुभवों के विश्लेषण एवं आवश्यकताओं के नियोजन तथा पुनर्संगठन से होता है। अतएव योग्यता का हमारे दैनिक व्यावहारिक जीवन में भी विशेष महत्व है।"[1]

10.3 बुद्धि के सिद्धान्त (Theories of Intelligence)

ऊपर हमने बुद्धि की प्रकृति समझने हेतु कुछ विचार एवं परिभाषाएं प्रस्तुत की। बुद्धि के स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए इसके सिद्धान्तों को हम आगे प्रस्तुत कर रहे है। ये प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि बुद्धि के स्वरूप एवं सिद्धान्त में मूलरूप से क्या अंतर है? वैसे तो दोनों ही बुद्धि के विषय के बारे में विचार प्रकट करते हैं परन्तु फिर भी दोनों में भिन्नता दृष्टिगत होती है। बुद्धि के सिद्धान्त उसकी संरचना को स्पष्ट करते हैं जबकि स्वरूप उसके कार्यों पर प्रकाश डालते हैं। गत शताब्दी के प्रथम दशक से ही विभिन्न देशों के मनोवैज्ञानिकों में इस बात की रूचि बढ़ी की बुद्धि की संरचना कैसी है तथा इसमें किन-किन कारकों का समावेश है। इन्हीं प्रश्नों के परिणाम स्वरूप विभिन्न कारकों के आधार पर बुद्धि की संरचना की व्याख्या होने लगी। अमेरिका के थार्सटन, थार्नडाईक, थॉमसन आदि मनोवैज्ञानिकों ने कारकों (factors) के आधार पर 'बुद्धि के स्वरूप' विषय में अपने-अपने विचार व्यक्त किये। इसी तरह फ्रांस में अल्फ्रेड बिने, ब्रिटेन में स्पीयरमेन ने भी बुद्धि के स्वरूप के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये। बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या विस्तार में हम आगे कर रहे हैं—

10.3.1 बिने का एक कारक सिद्धान्त (Alfred Binet's Uni-factor Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिने ने 1905 में किया तथा अमेरिका के मनोवैज्ञानिक टर्मन तथा जर्मनी के मनोवैज्ञानिक एंबिगास ने इसका समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार "बुद्धि वह शक्ति है जो समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है।" इस सिद्धान्त के अनुयाइयों ने बुद्धि को समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करने वाली एक शक्ति के रूप में माना है। उन्होंने यह भी माना है कि बुद्धि समग्र रूप वाली होती है और व्यक्ति को एक विशेष कार्य करने में अग्रसित करती है। यह एक एकत्व का खंड है जिसका विभाजन नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि व्यक्ति किसी एक विशेष क्षेत्र में निपुण है तो वह अन्य क्षेत्रों में भी निपुण रहेगा। इसी एक कारकीय सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए बिने ने बुद्धि को व्याख्या-निर्णय की योग्यता माना है। टर्मन ने इसे विचार करने की योग्यता माना है तथा स्टर्न ने इसे नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की योग्यता के रूप में माना है।

10.3.2 द्वितत्व सिद्धान्त (Bi-factor Theory)

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक ब्रिटेन के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पीयर मेन हैं। उन्होंने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों तथा अनुभवों के आधार पर बुद्धि के इस द्वि-तत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके मतानुसार बुद्धि दो शक्तियों के रूप में है या बुद्धि की संरचना में दो कारक है जिनमें एक को उन्होंने सामान्य बुद्धि (General or G- factor) तथा दूसरे कारक को विशिष्ट बुद्धि (Specific S- factor) कहा है। सामान्य कारक या G-factor से उनका तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्तियों में कार्य करने की एक सामान्य योग्यता होती है। अत: प्रत्येक व्यक्ति कुछ सीमा तक प्रत्येक कार्य कर सकता है। ये कार्य उसकी सामान्य बुद्धि के कारण ही होते हैं। सामान्य कारक व्यक्ति की सम्पूर्ण मानसिक एवं बौद्धिक क्रियाओं में पाया जाता है परन्तु यह विभिन्न मात्राओं में होता है। बुद्धि का यह सामान्य कारक जन्मजात होता है तथा व्यक्तियों को सफलता की ओर इंगित करता है।

व्यक्ति की विशेष क्रियाएं बुद्धि के एक विशेष कारक द्वारा होती है। यह कारक बुद्धि का विशिष्ट कारक (specific factor) कहलाता है। एक प्रकार की विशिष्ट क्रिया में बुद्धि का एक विशिष्ट कारक कार्य करता है तो दूसरी क्रिया में दूसरा विशिष्ट कारक अत: भिन्न-भिन्न प्रकार की विशिष्ट क्रियाओं नें भिन्न-भिन्न प्रकार के विशिष्ट कारकों की आवश्यकता होती है। ये विशिष्ट कारक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इसी कारण वैयक्तिक भिन्नताएं पाई जाती हैं। बुद्धि के सामान्य कारक जन्मजात होते है जबकि विशिष्ट कारक अधिकांशत: अर्जित होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बुद्धि के इस दो–कारक सिद्धान्त के अनुसार सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं में बुद्धि के सामान्य कारक G-factor कार्य करते हैं। जबकि विशिष्ट मानसिक क्रियाओं गमें विशिष्ट कारकों specific factor को स्वतंत्र रूप से काम में लिया जाता है।

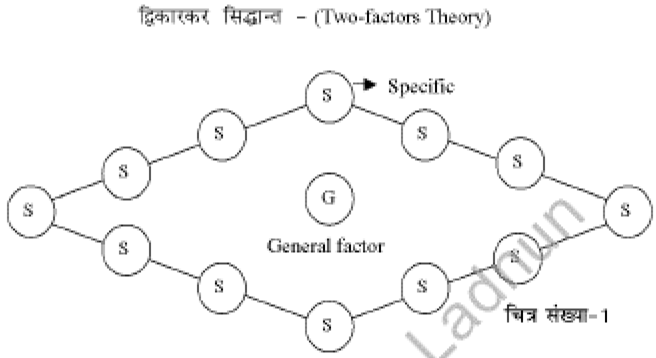

चित्र संख्या-1

व्यक्ति के एक ही क्रिया में एक या कई विशिष्ट कारकों की आवश्यकता होती है। परन्तु प्रत्येक मानसिक क्रिया में उस क्रिया से संबंधित विशिष्ट कारक के साथ–साथ सामान्य कारक भी आवश्यक होते हैं। जैसे– सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, दर्शन एवं शास्त्र अध्ययन जैसे विषयों को जानने और समझने के लिए सामान्य कारक महत्वपूर्ण समझे जाते हैं वहीं यांत्रिक, हस्तकला, कला, संगीत कला जैसे विशिष्ट विषयों को जानने ओर समझने के लिए विशिष्ट कारकों की प्रमुख रूप से आवश्यकता होती है। अत: इससे स्पष्ट है कि किसी विशेष विषय या कला को सीखने के लिए दोनों कारकों का होना अत्यन्त अनिवार्य है। व्यक्ति की किसी विशेष विषय में दक्षता उसकी विशिष्ट योग्यताओं के अतिरिक्त सामान्य योग्यताओं पर निर्भर है। स्पीयर मेन के अनुसार 'विषयों का स्थानान्तरण केवल सामान्य कारकों द्वारा ही संभव हो सकता है। इस सिद्धान्त को चित्र संख्या एक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जिसमें यह स्पष्ट किया निभाते हैं। समूह कारक स्वयं अपने आप में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता बल्कि विभिन्न विशिष्ट कारकों तथा सामान्य कारक के मिश्रण से यह अपना समूह बनाता है। इसीलिए इसे समूह कारक कहा गया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस सिद्धान्त में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। थार्नडाइक जैसे मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि समूह कारक कोई नवीन कारक नहीं है अपितु यह सामान्य एवं विशिष्ट कारकों का मिश्रण मात्र है।

10.3.4 थार्नडाइक का बहुकारक बुद्धि सिद्धान्त (Throndike's Multi-factors Theory of Intelligence)

थार्नडाइक ने अपने सिद्धान्त में बुद्धि को विभिन्न कारकों का मिश्रण माना है। जिसमें कई योग्यताएं निहित होती हैं। उनके अनुसार किसी भी मानसिक कार्य के लिए, विभिन्न कारक एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। थार्नडाइक ने पूर्व सिद्धान्तों में प्रस्तुत सामान्य कारकों (G-factors) की आलोचना की और अपने सिद्धान्त में सामान्य कारकों की जगह मूल कारकों (Primary factors) तथा उभयनिष्ठ कारकों (Common factors) का उल्लेख किया। मूल कारकों में मूल मानसिक योग्यताओं (Primary Mental abilities) को सम्मिलित किया है। ये योग्यताएं जैसे—शाब्दिक योग्यता, आंकिक योग्यता, यांत्रिक योग्यता, स्मृति योग्यता, तार्किक योग्यता तथा भाषण देने की योग्यता आदि हैं। उनके अनुसार ये योग्यताएं व्यक्ति के समस्त मानसिक कार्यों को प्रभावित करती है।

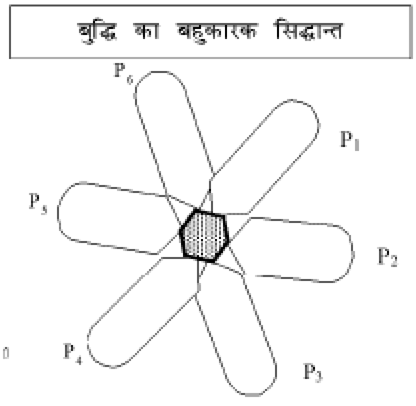

चित्र संख्या-2

थार्नडाइक इस बात को भी मानते है कि व्यक्ति में कोई न कोई विशिष्ट योग्यता अवश्य पायी जाती है। परन्तु उनका यह भी मानना है कि व्यक्ति की एक विषय की योग्यता से दूसरे विषय में योग्यता का अनुमान लगाना कठिन है। जैसे कि एक व्यक्ति यांत्रिक कला में प्रवीण है तो यह आवश्यक नहीं कि वह संगीत में भी निपुण होगा। उनके अनुसार जब दो मानसिक क्रियाओं के प्रतिपादन में यदि धनात्मक सहसंबंध पाया जाता है तो उसका अर्थ यह है कि व्यक्ति में उभयनिष्ठ कारक (Common factors) भी हैं। ये उभयनिष्ठ कारक कितनी मात्रा में हैं यह सहसंबंध की मात्रा से ज्ञात हो सकता है। जैसे उदाहरण के लिए किसी विद्यालय के 100 छात्रों को दो परीक्षण A तथा B दिये गये और उनका सहसंबंध ज्ञात किया। फिर उन्हें A तथा C परीक्षण देकर उनका सहसंबंध ज्ञात किया। पहले दो परीक्षणों में A तथा B में अधिक सहसंबंध पाया गया जो इस बात को प्रमाणित करता है कि A तथा C परीक्षणों की अपेक्षाकृत A तथा B परीक्षणों मानसिक योग्यताओं में उभयनिष्ठ कारक (Common factor) अधिक निहित है। उनके अनुसार ये उभयनिष्ठ कुछ अंशों में समस्त मानसिक क्रियाओं में पाए जाते हैं।

10.3.5 थर्स्टन का समूह कारक बुद्धि सिद्धान्त (Thurston's Group factors Intelligence Theory)

थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि न तो सामान्य कारकों का प्रदर्शन है न ही विभिन्न विशिष्ट कारकों का, अपितु इसमें कुछ ऐसी निश्चित मानसिक क्रियाएं होती हैं जो सामान्य रूप से मूल कारकों में सम्मिलित होती है। ये मानसिक

क्रियाएं समूह का निर्माण करती हैं जो मनोवैज्ञानिक एवं क्रियात्मक एकता प्रदान करते हैं। थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त को कारक विश्लेषण (Factor Analysis) के आधार पर प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बुद्धि की संरचना कुछ मौलिक कारकों के समूह से होती है। दो या अधिक मूल कारक मिलकर एक समूह का निर्माण कर लेते है जो व्यक्ति के किसी क्षेत्र में उसकी बुद्धि का प्रदर्शन करते है। इन मौलिक कारकों मे उन्होंने आंकिक योग्यता (Numerical ability) प्रत्यक्षीकरण की योग्यता (Perceptual ability) शाब्दिक योग्यता (Verbal ability) दैशिक योग्यता (Spatial ability) शब्द प्रवाह (Word fluency) तर्क शक्ति (Reasonign power) और स्मृति शक्ति (Memory power) को मुख्य माना।

थर्स्टन ने यह स्पष्ट किया कि बुद्धि कई प्रकार की योग्यताओं का मिश्रण है जो विभिन्न समूहों में पाई जाती है। उनके अनुसार मानसिक योग्यताएं क्रियात्मक रूप से स्वतंत्र है फिर भी जब ये समूह में कार्य करती है तो उनमें परस्पर संबंध या समानता पाई जाती है। कुछ विशिष्ट योग्यताएं एक ही समूह की होती हैं और उनमें आपस में सह-संबंध पाया जाता है। जैसे— विज्ञान विषयों के समूह में भौतिक, रसायन, गणित तथा जीव-विज्ञान भौतिकी एवं रसायन आदि। इसी प्रकार संगीत कला को प्रदर्शित करने के लिए तबला, हारमोनियम, सितार आदि बजाने में परस्पर सह-संबंध रहता है।

चित्र संख्या 3 में बुद्धि के अनेक प्रकार की योग्यताओं के मिश्रण को प्रस्तुत किया है।इन योग्यताओं का संकेतीकरण इस प्रकार है—

1. आंकिक योग्यता (Numerical ability) = N-factor
2. वाचिक योग्यता (Verbal ability) = V-factor
3. स्थान सम्बंधी योग्यता (Spatital ability) = S-factor
4. स्मरण शक्ति योग्यता (Memory ability) = M-factor
5. शब्द प्रवाह योग्यता (Word fluency ability) = W-factor
6. तर्क शक्ति योग्यता (Reasoning ability) = R-factor

समूह कारक सिद्धान्त (Group factor

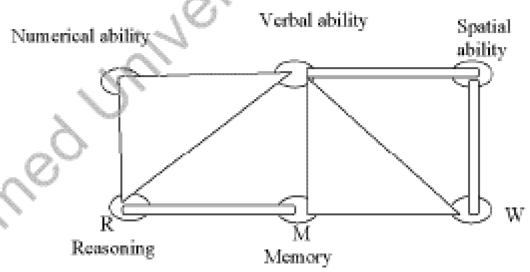

चित्र संख्या-3

10.3.6 थॉमसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त (G.S. Thomson's Sampling Theory of Intelligence)

थॉमसन ने बुद्धि के प्रतिदर्श सिद्धान्त (sampling Theory) को प्रस्तुत किया। उनके मतानुसार व्यक्ति का प्रत्येक कार्य निश्चित योग्यताओं का प्रतिदर्श होता है। किसी भी विशेष कार्य को करने में व्यक्ति अपनी समस्त मानसिक योग्यताओं में से कुछ का प्रतिदर्श के रूप में चुनाव कर लेता है। इस सिद्धान्त में उन्होंने सामान्य कारकों (G-factors) की व्यावहारिकता को महत्व दिया है। थॉमसन के अनुसार व्यक्ति का बौद्धिक व्यवहार अनेक स्वतंत्र योग्यताओं पर निर्भर करता है परन्तु परीक्षा करते समय उनका प्रतिदर्श ही सामने आता है।

10.3.7 कैटल का बुद्धि सिद्धान्त (Cattell's Theory of Intelligence)

रेमण्ड वी. केटल (1971) ने दो प्रकार की सामान्य बुद्धि का वर्णन किया है। ये हैं—फ्लूड (Flued) तथा क्रिस्टलाईज्ड (Crystelized)। उनके अनुसार बुद्धि की फ्लूड सामान्य योग्यता वंशानुक्रम कारकों पर निर्भर करती है जबकि क्रिस्टलाईज्ड योग्यता अर्जित कारकों के रूप में होती है। फ्लूड सामान्य योग्यता मुख्य रूप से संस्कृति युक्त, गति-स्थितियों तथा नई स्थितियों के अनुकूलता वाले परीक्षणों में पाई जाती है। क्रिस्टलाईज्ड सामान्य योग्यता अर्जित सांस्कृतिक उपलब्धियों, कौशलताओं तथा नई स्थिति से सम्बंधित वाले परीक्षणों में एक कारक के रूप में मापी जाती है। फ्लूड सामान्य योग्यता को शरीर की वंशानुक्रम विभक्ता के रूप में लिया जा सकता है। जो जैव रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा संचालित होती है। जबकि क्रिस्टलाईज्ड सामान्य योग्यता सामाजिक अधिगम एवं पर्यावरण प्रभावों से संचालित होती है। केटल के अनुसार फ्लूड सामान्य बुद्धि वंशानुक्रम से सम्बधित है तथा जन्मजात होती है जबकि क्रिस्टलाईज्ड सामान्य बुद्धि अर्जित है।

10.3.8 बर्ट तथा वर्नन का पदानुक्रमित बुद्धि सिद्धान्त (Burt and Vernon's Hirarchical Theory of Infelligence)

बर्ट एवं वर्नन (1965) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बुद्धि सिद्धान्तों के क्षेत्र में यह नवीन सिद्धान्त माना जाता है। इस सिद्धान्त में बर्ट एवं वर्नन ने मानसिक योग्यताओं को क्रमिक महत्व प्रदान किया है। उन्होंने मानसिक योग्यताओं को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दो स्तरों पर विभिक्त किया—1. सामान्य मानसिक योग्यता (General Mental Ability) 2. विशिष्ट मानसिक योग्यता (Special Mental Ability) सामान्य मानसिक योग्यताओं में भी योग्यताओं को उन्होंने स्तरों के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया। पहले वर्ग में उन्होंने क्रियात्मक (Practical), यांत्रिक (Machenical), दैशिक (Spatial) एवं शारीरिक (Physical) योग्यताओं को

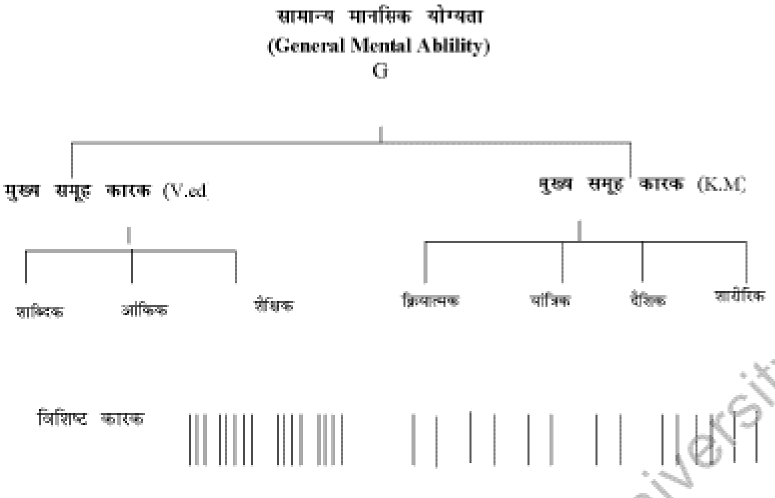

चित्र संख्या-4

रखा है। इस मुख्य वर्ग को उन्होंने K.M. नाम दिया। योग्यताओं के दूसरे समूह में उन्होंने शाब्दिक (Verbal), आंकिक (Numerical) तथा शैक्षिक (Educational) योग्यताओं को रखा है और इस समूह को उन्होंने V.ed. नाम दिया है। अंतिम स्तर पर उन्होंने विशिष्ट मानसिक योग्यताओं को रखा जिनका संबंध विभिन्न ज्ञानात्मक क्रियाओं से है। इस सिद्धान्त की नवीनता एवं अपनी विशेष योग्यताओं के कारण कई मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ है। चित्र संख्या 3 में इन समूहों और स्तरों को स्पष्ट किया गया है।

10.3.9 गिलफोर्ड का त्रि-आयाम बुद्धि सिद्धान्त (Guilford's Three Dimentional Theory of Intelligence)

गिलफोर्ड (1959, 1961, 1967) तथा उसके सहयोगियों ने तीन मानसिक योग्यताओं के आधार पर बुद्धि संरचना की व्याख्या प्रस्तुत की। गिलफोर्ड का यह बुद्धि संरचना सिद्धान्त त्रि-पक्षिय बौद्धिक मॉडल कहलाता है। उन्होंने बुद्धि कारकों को तीन श्रेणियों में बांटा है। अर्थात् मानसिक योग्यताओं को तीन विमाओं (Dimentions) में बांटा है। ये है—संक्रिया (Operations), विषय-वस्तु (Conteints) तथा उत्पादन (Products)। कारक विश्लेषण (Factor Analysis) के द्वारा बुद्धि की ये तीनों विमाएं पर्याप्त रूप से भिन्न है। इन विमाओं में मानसिक योग्यताओं के जो-जो कारक आते हैं वे इस प्रकार हैं—

(i) विषय वस्तु (Contents)-इस विमा में बुद्धि के जो विशेष कारक है वे विषय वस्तु के होते हैं। जैसे— आकृतिक (Figural) सांकेतिक (Symbolic) शाब्दिक (Semantic) तथा व्यावहारिक (Behavioural)।

- आकृतिक (Figural) विषय वस्तु को दृष्टि द्वारा ही देखा जा सकता है तथा ये आकार और रंग-रूप के द्वारा निर्मित होती है।
- सांकेतिक (Symbolic) विषय-वस्तु में संकेत, अंक तथा शब्द होते है जो विशेष पद्धति के रूप में व्यवस्थित होते हैं।
- शाब्दिक (Semantic) विषय-वस्तु में शब्दों का अर्थ या विचार होते हैं।
- व्यावहारिक (Behavioural) विषय-वस्तु में व्यवहार संबंधी विषय निहित होते हैं।

(ii) उत्पादन (Prouducts)- ये छः प्रकार के माने गए हैं। ये हैं- इकाइयां (Units), वर्ग (Classes), सम्बंध (Relations), पद्धतियां (Systems), स्थानान्तरण (Transformation) तथा अपादान (Implications)।

(iii) संक्रिया (Operation)- इस विमा में मानसिक योग्यताओं के पांच मुख्य समूह माने हैं—1. संज्ञान (Congnition) 2. मूल्यांकन (Evaluation) अभिसारी चिंतन (Convergent Thinking) 4. अपसारी चिंतन (Divergent Thinking) और 5. स्मृति (Memory)। इन तीनों विमाओं से कुल मिलाकर 120 संभव अंतः क्रियाएं होती हैं। चित्र संख्या 5 में गिलफोर्ड के त्रि-आयाम मॉडल को दर्शाया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चित्र 5

बुद्धि की संरचना (The Structure of Intelligence)

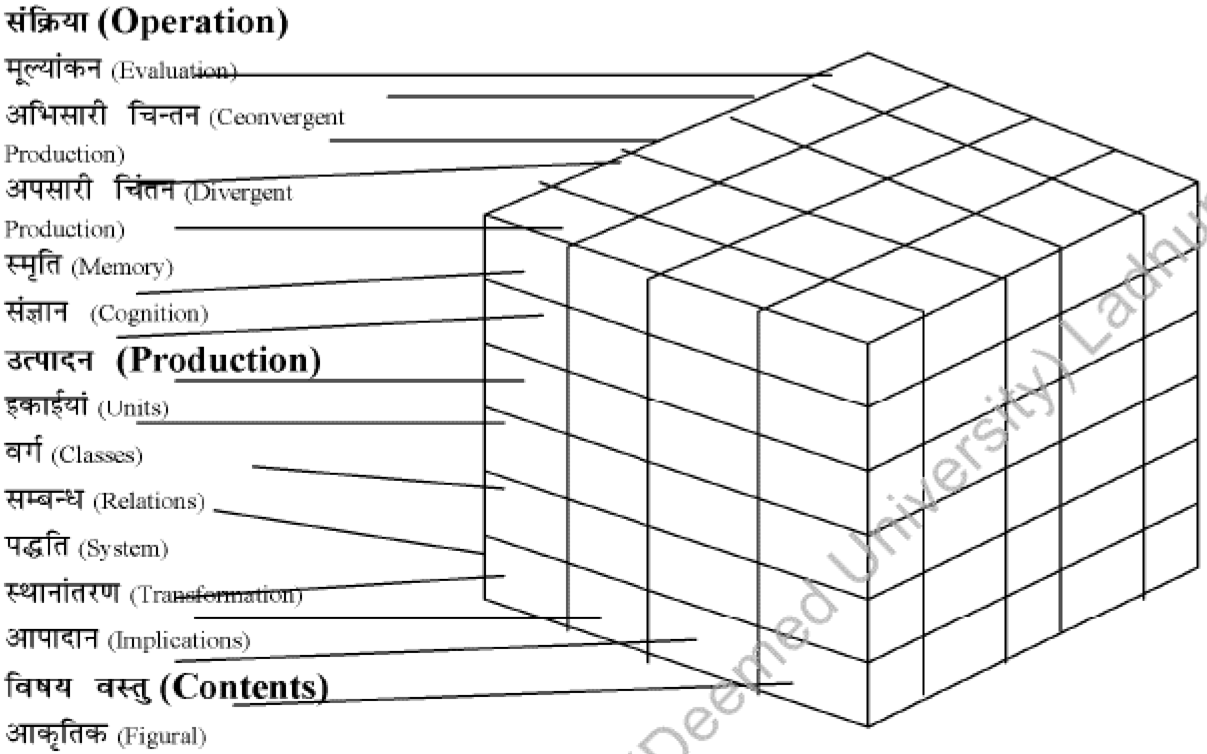

10.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बुद्धि क्या है इसकी विभिन्न परिभाषाएं देते हुए इसे समझाइये।
2. बुद्धि के एक कारक एवं द्वितत्व सिद्धान्त को समझाइये।
3. थार्नडाइक के बहुकारक सिद्धान्त को समझाइये।
4. थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त को समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 11 बुद्धि परीक्षण, तकनीक एवं इसके मापन की विधियां

संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 बुद्धि मापन का इतिहास
11.3 व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
11.4 सामूहिक बुद्धि परीक्षण
11.5 भारत में बुद्धि परीक्षणों का विकास
11.6 बुद्धि परीक्षण का तात्पर्य
11.7 मानसिक आयु, शारीरिक आयु तथा बुद्धि-लब्धि
11.8 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
11.8.1 प्रशासन के आधार पर
11.8.2 भाषा एवं विषय वस्तु के आधार पर
11.8.3 योग्यता मापन के आधार पर
11.8.4 परीक्षण के रूप के आधार पर
11.8.5 शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
11.8.6 अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
11.9 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग
11.9.1 मानसिक योग्यता को ज्ञात करने हेतु
11.9.2 कक्षा में प्रवेश हेतु
11.9.3 शिक्षा क्षेत्र में
11.9.4 वैयक्तिक भिन्नता ज्ञात करने में
11.9.5 व्यवसायिक उपयोग
11.9.6 निदान एवं चिकित्सा में उपयोगी
11.9.7 सेना में उपयोग
11.9.8 कर्मचारी चयन में उपयोग
11.9.9 अनुसंधानिक उपयोग
11.9.10 व्यवहारिक उपयोग
11.10 बुद्धि का मापन
11.11 प्रमुख बुद्धि परीक्षण
11.11.1 शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
11.11.2 अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
11.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

व्यक्ति केवल शारीरिक गुणों से ही एक दूसरे से भिन्न नहीं होते बल्कि मानसिक एवं बौद्धिक गुणों से भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। ये भिन्नताऐं जन्मजात भी होती हैं। कुछ व्यक्ति जन्म से ही प्रखर बुद्धि के तो कुछ मन्द बुद्धि व्यवहार वाले होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.1 उद्देश्य

1. बुद्धि के इतिहास को जान सकेंगे।
2. भारत में बुद्धि परीक्षणों के विकास को समझ सकेंगे।
3. बुद्धि परीक्षण के तात्पर्य को जान सकेंगे।
4. बुद्धि-लब्धि को जान सकेंगे।
5. बुद्धि परीक्षणों के प्रकारों को समझ सकेंगे।
6. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता को जान सकेंगे।

11.2 बुद्धि मापन का इतिहास (History of Measurement of Intelligence)

उन्नीसवीं सदी में मंद बुद्धि वाले बालकों एवं व्यक्तियों के प्रति बहुत ही बुरा व्यवहार होता था। उनको जंजीरों में बांधकर रखा जाता था एवं उन्हें पीटा जाता था। लोगों की यह मान्यता थी कि इनमें दुरात्माओं का प्रवेश हो गया है। इन कथित दुरात्माओं को निकालने हेतु मंद बुद्धि बालकों की पिटाई की जाती थी। अतः मन्द बुद्धि बालकों के लिए समस्या यह थी कि उनकी बुद्धि के बारे में उस समय तक कोई जानता नहीं था। फ्रांस में बुद्धि-दौर्बल्य या मन्दबुद्धि बालकों की इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया तब वहां की सरकार और मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इस समस्या पर गया। इस समस्या का समाधान करने हेतु फ्रांस के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इटार्ड (Itord) तथा उनके पश्चात् सेग्युन (Seguin) महोदय ने मंद बुद्धि बालकों की योग्यताओं के अध्ययन एवं मापन करने हेतु विभिन्न विधियों का प्रयोग किया। इस अध्ययन के अन्तर्गत उन्होंने कुछ बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया। मंद बुद्धि बालकों के उपचार के लिए कई विद्यालयों की स्थापना हुई जहां मंद बुद्धि बालकों का परीक्षण किया जाता था तथा उनकी बुद्धि विकास हेतु उन्हें प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। इस प्रकार के प्रयत्न जर्मनी, इंग्लैड तथा अमेरिका में भी हुए। परन्तु बुद्धि परीक्षण के सही मापन के क्षेत्र में विकासपूर्ण कार्य का श्रेय फ्रांस को ही जाता है। फ्रांस में मद बुद्धि बालकों को सही प्रशिक्षण देने के लिए एवं उनकी शिक्षा का समुचित प्रबंध करने हेतु एक समिति बनाई गई और उनका अध्यक्ष सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिनेट (Alfred Binet) को बनाया गया। बिनेट पहले मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने बुद्धि को वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप में समझने का प्रयास किया। उनको बुद्धि के मापन क्षेत्र का जन्मदाता माना जाता है। बिनेट ने यह स्पष्ट किया कि बुद्धि केवल एक कारक नहीं है जिसको कि हम एक विशेष परीक्षण द्वारा माप सकें अपितु यह विभिन्न योग्यताओं की वह जटिल प्रक्रिया है जो समग्र रूप से क्रियान्वित होती है।

सन् 1905 में बिनेट ने साईमन के सहयोग से प्रथम बुद्धि मापनी अर्थात् बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जिसे बिने-साईमन बुद्धि परीक्षण का नाम दिया। ये बुद्धि परीक्षण तीन से सोलह वर्ष की आयु के बच्चों की बुद्धि का मापन करता है। इस परीक्षण में सरलता से कठिनता के क्रम में तीस पदों का प्रयोग किया गया। इस परीक्षण से व्यक्तियों के बुद्धि के स्तरों का पता लगाया जा सकता है। इस परीक्षण की सहायता से मंद बुद्धि बालकों को तीन समूह में बांटा गया है—1. जड़बुद्धि (Idiots) 2. हीन बुद्धि (Imbeciles) 3. मूढ़ बुद्धि (Morons)।

सन् 1908 में बिने ने अपने बुद्धि परीक्षण में पर्याप्त संशोधन किया और संशोधित बुद्धि परीक्षण का प्रकाशन किया। इस परीक्षण में 59 पद रखे। ये पद अलग-अलग समूहों में हैं, जो अलग-अलग आयु के बालकों से संबंधित हैं। इस परीक्षण में सर्वप्रथम मानसिक आयु (Mental Age) कारक को समझा गया।

सन् 1911 में बिने ने अपने 1908 के बुद्धि परीक्षण में पुनः संशोधन किया। जब बिने का बिने साईमन बुद्धि परीक्षण 1908 विभिन्न देशों जैसे बेल्जियम, इंग्लैण्ड, अमेरिका, इटली, जर्मनी में गया तो मनोवैज्ञानिकों की रूचि इस परीक्षण की ओर बढ़ी। कालान्तर में इस परीक्षण की आलोचना भी हुई क्योंकि यह परीक्षण निम्न आयु स्तर वालों के लिए तो ठीक था, परन्तु उच्च आयु वर्ग के बालकों के लिए सही नहीं था। अतः इस कमी को सुधार करने हेतु बिने ने अपने 1908 परीक्षण में पर्याप्त सुधार किया। उन्होंने अपने परीक्षण के फलांकन पद्धति में भी सुधार और संशोधन किया तथा 1911 में अपनी संशोधित बिने-साईमन मापनी या परीक्षण का पुनः प्रकाशन किया। उन्होंने इस परीक्षण के मानसिक आयु और बालक की वास्तविक आयु के बीच सम्बन्ध स्थापित किया और इसके आधार पर उन्होंने बालकों को तीन वर्गों में बांटा ये वर्ग हैं—सामान्य बुद्धि (Regular Intelligent) वाले, श्रेष्ठ बुद्धि (Advanced Intelligent) वाले एवं मंद बुद्धि (Retarded Intelligent) वाले बालकों का वर्ग। बिने के अनुसार जो बालक अपनी आयु समूह से उच्च आयु समूह वाले प्रश्नों का हल कर लेते हैं तो वे श्रेष्ठ बुद्धि वाले कहलाते हैं और यदि बालक अपनी आयु समूह से कम आयु समूह वाले प्रश्नों का ही हल कर पाते हैं तो वे मन्द बुद्धि बालक होते हैं।

1916 में अमेरिका के मनोवैज्ञानिक टर्मेन ने बिने के बुद्धि परीक्षण को अपने देश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर इसका प्रकाशन किया। यह परीक्षण स्टेनफोर्ड-बिने परीक्षण (Stanford Binet Intelligence Test) कहलाता है। चूंकि इस परीक्षण का संशोधन स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टर्मेन ने किया, इस आधार पर इस परीक्षण को 'स्टेनफोर्ड-बिने परीक्षण' कहा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गया। 1937 में प्रो. एम.एम. मेरिल के सहयोग से 1916 के स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण में संशोधन करके इसमें कुछ अंकगणित के प्रश्नों को भी रखा। 1960 में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय से इस परीक्षण का वर्तमान संशोधन प्रकाशित किया गया।

इसके अतिरिक्त बोबर टागा ने 1913 में इसका जर्मन संशोधन (German Rivison of Binet Siman Test) प्रकाशित किया। लंदन में बर्ट (1922) ने इसका संशोधन कर इसे लंदन संशोधन (London Rivison) के नाम से प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इटली में सेफियोट तथा भारत में उत्तर प्रदेश मनोविज्ञान शाला (U.P. Psychological Bureau) ने इस परीक्षण को अपने अपने देश के अनुसार अनुकूल एवं संशोधन कर इसका प्रकाशन किया।

बिने-साईमन बुद्धि परीक्षण के संशोधनों के अतिरिक्त भी कई बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ जिनमें व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण एवं सामूहिक बुद्धि परीक्षण, वाचिक एवं अवाचिक बुद्धि परीक्षण भी सम्मिलित हैं।

11.3 व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test)

मैरिल-पामर मापनी (Merrill Palmer Scale) एक बुद्धि परीक्षण है जिसमें 38 उपपरीक्षण हैं इसका उपयोग डेढ़ वर्ष से लेकर पांच छः वर्ष की आयु के बच्चों पर किया जाता है। मिनोसोटा पूर्व-विद्यालय मापनी (Mennsota Pre-School Scale) भी एक महत्वपूर्ण बुद्धि परीक्षण है। इसका उपयोग भी डेढ़ वर्ष से पांच वर्ष तक की आयु के बच्चों पर किया जाता है। मनोवैज्ञानिक गुड एनफ (Good Enough) ने ड्राविग ए मेंन परीक्षण (Drawing a man) का एवं रेवन (Reven) ने 1938 में प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (Progressive Matrics) परीक्षण का निर्माण किया। वेश्वर ने 1949 में बालकों एवं वयस्कों हेतु बुद्धि मापनी का निर्माण किया। ये सभी व्यक्तिगत या वैयक्तिक परीक्षण हैं तथा इनका उपयोग एक बार विषय (व्यक्ति) पर ही किया जाता है।

11.4 सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Tests)

बुद्धि परीक्षणों का विकास काल और देशीय आवश्यकता के अनुसार होता रहा है। सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के समय अमेरिका में सेना में भर्ती हेतु व्यक्तियों का सही ढ़ंग से चुनाव करने के लिए बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ। चूंकि हजारों व्यक्तियों पर व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों का प्रशासन एक समय पर एक साथ असंभव था इसलिए सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ। सेना में अंग्रेजी पढ़े लिखे एवं अधिकारी वर्ग के सैनिकों के चयन हेतु आर्मी एल्फा (Army Alpha) सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण हुआ। जबकि अनपढ़ एवं अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ व्यक्तियों के लिए आर्मी बीटा (Army Beta) सामूहिक परीक्षणों का निर्माण हुआ। इन बुद्धि परीक्षणों के आधार पर सेना में सैनिकों की भर्ती की गई। इसी तरह द्वितीय विश्व युद्ध में भी इसी प्रकार के बुद्धि परीक्षणों द्वारा सेना में भर्ती हुई। इसी समय आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन टैस्ट (Army General Classification Test) का भी निर्माण हुआ। इस प्रकार समय-समय पर समय की आवश्यकता के अनुसार बुद्धि परीक्षणों का निर्माण होता रहा।

11.5 भारत में बुद्धि परीक्षणों का विकास (Development of Intelligence Test in India)

सन् 1922 में भारत में सर्वप्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण एफ. जी. कॉलेज, लाहौर के प्राचार्य डॉ. सी. एच. राईस (Dr. C. H. Rice) ने किया। इन्होंने बिने की मापनी का भारतीय अनुकूलन किया। इस परीक्षण का नाम था 'हिन्दुस्तानी बिने परफोरमेंस पाइन्ट स्केल' (Hindustan Binet Peromance Point Scale) रखा।

इसके पश्चात् 1927 में जे. मनरी ने हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा में शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण (Verbal Group Intelligence Test) का निर्माण किया। डॉ. लज्जाशंकर झा (1933) ने सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जो 10 से 18 वर्षों के बालकों के लिए उपयोगी है। सन् 1943 में सोहनलाल ने 11 वर्ष तथा इससे अधिक आयु वाले बालकों के लिए सामूहिक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया। पंजाब विश्व विद्यालय के प्रोफेसर डॉ. जलोटा (1951) ने एक सामूहिक परीक्षण का निर्माण किया। यह परीक्षण हिन्दी, उर्दू एवं आंग्ल भाषा में तथा विद्यालीय छात्रों के लिए था। सन् 1953 में प्रोफेसर सी. एम. भाटिया ने एक निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) का निर्माण किया। इसमें पांच प्रमुख बौद्धिक उपपरीक्षण हैं तथा यह भाटिया बैट्री ऑफ परफोरमेंस टेस्ट ऑफ इन्टेलीजेन्स (Bhatia Battery of Performance Test of Intelligence) कहलाता है। इस तरह उपरोक्त परीक्षण भारतीय अनुकूलन के प्रमुख बुद्धि परीक्षण हैं और इनका विकास समयानुसार हुआ। इन परीक्षणों के अतिरिक्त कई भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने शाब्दिक एवं अशाब्दिक तथा वैयक्तिक एवं सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया। उपरोक्त परीक्षणों के निर्माण में जिन मनोवैज्ञानिकों ने अपना योगदान दिया उनके अतिरिक्त कई और भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने बुद्धि परीक्षण निर्माण में इसी प्रकार का अपना योगदान दिया है। जिनमें से कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के नाम इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रकार हैं—शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में बड़ौदा के डॉ. बी. एल. शाह, बम्बई के डॉ. सेठना, एन. एन. शुक्ला, ऐ. जे. जोशी तथा दवे, अहमदाबाद के डॉ. देसाई, बूच एवं भट्ट के नाम प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त देश के कई मनोवैज्ञानिक जैसे डॉ. शाह, झा, माहसिन, मनरी, सोहनलाल, जलोटा, प्रो. एम. सॅ. जोशी, प्रयाग मेहता, टण्डन, कपूर, शैरी, रायचौधरी, मलहोत्रा, ओझा एवं लाभसिंह ने भी बुद्धि परीक्षणों के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अशाब्दिक परीक्षणों के निर्माण में जिन मनोवैज्ञानिकों ने योगदान दिया उसमें प्रमुख हैं— अहमदाबाद के प्रो. पटेल, प्रो. शाह, बड़ौदा के प्रोमिला पाठक, बंगाल के विकरी एण्ड ड्रेपर, कलकत्ता विश्व विद्यालय के रामनाथ कुन्दू, बलिया के ए. एन. मिश्र तथा कलकत्ता के एस. चटर्जी तथा मंजुला मुकर्जी।

निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Tests) के निर्माण में अहमदाबाद के डॉ. पटेल बड़ौदा के एम. के पानवाल, उदयपुर के पी. एन. श्रीमाली, कलकत्ता के मजूमदार नागपुर के चन्द्रमोहन भाटिया का योगदान महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त प्रभारामलिंगास्वामी (1975) मुरादाबाद के टंडन, इम्फाल के चक्रवर्ती, मैसूर के भारतरात, चंडीगढ़ के वर्मा तथा द्वारकाप्रसाद ने इन परीक्षणों के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया।

11.6 बुद्धि परीक्षण का तात्पर्य

पूर्व में हमने बुद्धि परीक्षणों के विकास के बारे में चर्चा की। बुद्धि परीक्षण का क्या तात्पर्य है? इसको समझाना भी बहुत आवश्यक है। डॉ. महेश भार्गव के अनुसार बुद्धि परीक्षण का आशय उन परीक्षणों से है जो बुद्धि-लब्धि (IQ) के रुप में केवल एक अंक के माध्यम से व्यक्ति के सामान्य बौद्धिक एवं उसमें विद्यमान विभिन्न विशिष्ट योग्यताओं के सम्बंध को इंगित करता है। इन परीक्षणों द्वारा व्यक्ति के सम्मुख विभिन्न कार्यों को प्रस्तुत किया जाता है। यह आशा की जाती है कि इनके माध्यम से बौद्धिक कार्यों को जाना जा सकता है। इनकी परिभाषा निम्न शब्दों में दी जा सकती है :

"Intelligence test is designed for use in a wide veriety of sitiations and are validated against relatively broad criteria. It characteristically provides a single score such as I.Q. indicating individuals general intellectual level and presence of various specific abilities. In such a test a wide variety of tasks is presented to the subject in the expecatation that an asequate sampling of all important intellected functions will be covered[1]."

कौन व्यक्ति कितना बुद्धिमान है यह जानने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने काफी प्रयत्न किए। बिने के अनुसार बुद्धि बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बढ़ती रहती है परन्तु एक अवस्था ऐसी भी आती है जहां यह स्थिर हो जाती है। बुद्धि को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक आयु (M.A.) और शारीरिक आयु (C.A.) कारक प्रस्तुत किये हैं और इनके आधार पर व्यक्ति की वास्तविक बुद्धि-लब्धि ज्ञात की जाती है।

11.7 मानसिक आयु, शारीरिक आयु तथा बुद्धि-लब्धि (Mental Age, Chronological Age and Intelligence Quotient-I.Q.)

बुद्धिमापन की प्रक्रिया में मानसिक आयु का विचार सर्वप्रथम बिने ने प्रस्तुत किया। मानसिक आयु व्यक्ति के विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके उन कार्यों द्वारा ज्ञात की जा सकती है जिनकी उसकी आयु विशेष में अपेक्षा है। इस तरह किसी व्यक्ति की मानसिक आयु से हमारा आशय उस आयु से है जिस आयु के प्रश्न या समस्याओं को वह हल कर लेता है। अर्थात् व्यक्ति जितनी आयु स्तर के प्रश्नों या समस्याओं को हल कर लेता है, उसकी मानसिक आयु भी उतनी ही होगी। जैसे एक आठ वर्ष का बालक दस वर्ष की आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु दस वर्ष मानी जाएगी। यदि आठ वर्ष का बालक अपनी आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल नहीं कर सकता और वह केवल छः वर्ष आयु स्तर के प्रश्नों और समस्याओं को हल करता है तो उसकी मानसिक आयु छः वर्ष मानी जाएगी। बुद्धि परीक्षणों से व्यक्ति की इस मानसिक आयु को ज्ञात किया जाता है। शारीरिक आयु का अभिप्राय व्यक्ति की वास्तविक आयु से अर्थात् उसकी जन्म तिथि से वर्तमान समयावधि तक की आयु से है। मानसिक आयु के आधार पर टर्मन तथा स्टर्न ने बुद्धि-लब्धि का प्रत्यय दिया। बुद्धि-लब्धि को मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु के अनुपात से ज्ञात किया जाता है। जैसा कि हमने पूर्व में लिखा, बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बुद्धि में वृद्धि होती रहती है अतः इस अवस्था तक बुद्धि स्थिर नहीं रहती परन्तु बाद में एक अवस्था ऐसी आती है जब बुद्धि स्थिर हो जाती है। बुद्धि-लब्धि को निम्न सूत्र द्वारा प्राप्त किया जा सकता है:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

$$\text{Intelligence Quotient (I.Q.)} = \frac{\text{Mental Age (M.A.)}}{\text{Chronological Age (C.A.)}} \times 100$$

बुद्धि-लब्धि प्राप्त करने के लिए पहले बुद्धि परीक्षण से मानसिक आयु ज्ञात की जाती है तथा फिर उसमें व्यक्ति की वास्तविक आयु का भाग दे दिया जाता है तथा संख्या को पूर्ण बनाने के लिए इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी बालक की मानसिक आयु 14 वर्ष है और शारीरिक आयु 10 वर्ष है तो उसकी बुद्धि-लब्धि होगी-

$$\text{Intelligence Quotient (I.Q.)} = \frac{14}{10} \times 100 = 140$$

जब मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है तो व्यक्ति प्रखर बुद्धि वाला माना जाता है। जब मानसिक आयु वास्तविक के समान होती है तो व्यक्ति औसत बुद्धि वाला माना जाता है और मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है तो व्यक्ति मंद बुद्धि वाला माना जाता है। बुद्धि-लब्धि के आधार पर व्यक्ति को अलग-अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नीचे दी गई सारणी में बुद्धि-लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण किया गया है :

सारणी 1 : बुद्धि-लब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण

क्र. सं.	बुद्धि-लब्धि	व्यक्तियों की श्रेणी
1.	140 तथा इसके ऊपर	प्रतिभाशाली (Genius)
2.	120-140	प्रखर बुद्धि (Superior)
3.	110-120	तीव्र बुद्धि (Above average)
4.	90-110	सामान्य बुद्धि (Average)
5.	80-90	बुद्धि-दौर्बल्य (Feeble-minded)
6.	70-80	बुद्धू (Dull)
7.	50-70	मूढ़ (Morone)
8.	25-50	हीन (Imbecile)
9.	0-25	जड़ (Idiot)

11.8 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार (Type of Intelligence Test)

चित्र संख्या-1

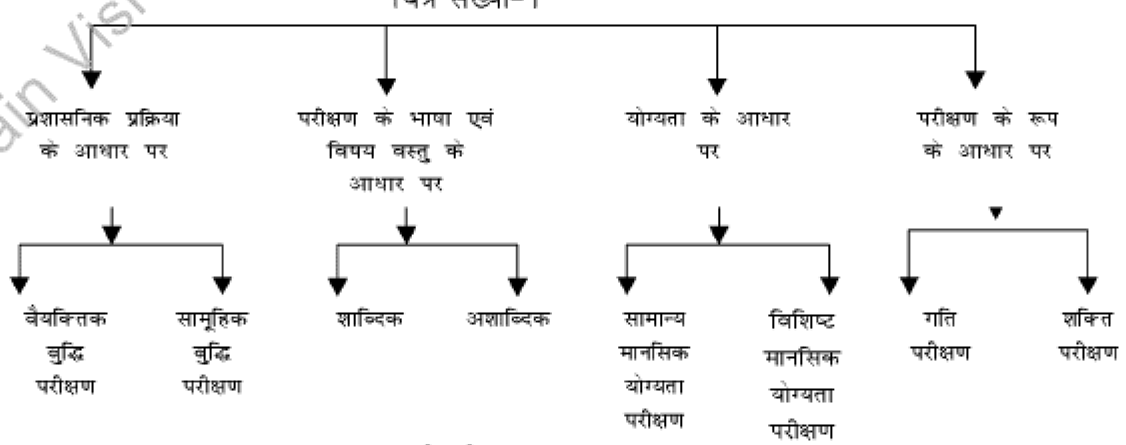

चित्र संख्या 1 : बुद्धि परीक्षणों के प्रकार (Type of Intelligence Test)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऊपर हमने विश्व में तथा भारत में बुद्धि परीक्षणों के विकास के बारे में पढ़ा इसके अतिरिक्त बुद्धि परीक्षणों का तात्पर्य, मानसिक आयु, वास्तविक आयु, बुद्धिलब्धि एवं बुद्धिलब्धि के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण पढ़ा। अब हम बुद्धि परीक्षणों के प्रकारों के बारे में आगे चर्चा करेंगे। बुद्धि परीक्षणों का निर्माण विभिन्न स्थितियों, विषय वस्तु आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। जैसे बुद्धि परीक्षण का उपयोग प्रशासन या वैयक्तिक तौर पर, या सामूहिक तौर पर करना है अथवा इसका उपयोग पढ़े-लिखे या अनपढ़ लोगों पर करना है तो ऐसी स्थितियों में अलग-अलग प्रकार के परीक्षणों का उपयोग होता है। इन सभी बातों के आधार पर हम बुद्धि परीक्षणों को मुख्य चार वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं जैसा कि चित्र संख्या 1 में दर्शाया गया है।

11.8.1 प्रशासन प्रक्रिया के आधार पर

इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों को प्रशासनिक प्रक्रिया के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है। ऐसे परीक्षण, जिनका उपयोग एक समय में केवल एक ही व्यक्ति का परीक्षण करने में किया जाता है अर्थात् व्यक्तिगत रूप से उसको काम में लाया जाता है, व्यक्तिगत या वैयक्तिक परीक्षण कहलाते हैं। जिस बुद्धि परीक्षण से एक समय में कई व्यक्तियों की एक ही साथ बुद्धि परीक्षण किया जाए उसे सामूहिक बुद्धि परीक्षण कहा जाता है। अर्थात् प्रशासन प्रक्रिया के अनुसार इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों को दो उप वर्गों में रखा जाता है—व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Indivisual Intelligence Test) एवं सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)।

11.8.2 भाषा एवं विषय-वस्तु के आधार पर

इन परीक्षणों को भी दो उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test) एवं 2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non Verbal Intelligence Test) शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में शब्दों या भाषा का प्रयोग किया जाता है। अतः पढ़े-लिखे लोगों के लिए यह परीक्षण उपयोगी है। जबकि अशाब्दिक परीक्षणों में भाषा की जगह संकेतों, चित्रों, आकृतियों एवं चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण अनपढ़ लोगों के लिए तथा उन लोगों के लिए भी उपयोगी हैं जो किसी विशेष भाषा को नहीं जानते हैं।

11.8.3 योग्यता मापन के आधार पर

ये परीक्षण भी दो प्रकार के होते है—(i) सामान्य योग्यताएं परीक्षण (General Abilities Test) (ii) विशेष मानसिक योग्यताएं परीक्षण (Special Mental Abilities Test)। प्रथम प्रकार के परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यताएं (General Abilities) मापी जाती है जबकि दूसरे प्रकार के परीक्षणों द्वारा व्यक्ति की विशेष मानसिक योग्यताएं मापी जाती है।

11.8.4 परीक्षण के रूप के आधार पर

बुद्धि परीक्षणों को रूप के आधार पर भी दो भागों में बांटा जा सकता है:—(i) गति बुद्धि परीक्षण (ii) शक्ति बुद्धि परीक्षण। जिन परीक्षणों में निश्चित समयावधि में कुछ निश्चित प्रश्नों को हल करना होता है ऐसे परीक्षणों को गति बुद्धि परीक्षण कहते हैं। जिन परीक्षणों में प्रश्नों को सरलतम् से कठिनतम स्तर में रखा जाता है ऐसे परीक्षणों को शक्ति बुद्धि परीक्षण कहते हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि परीक्षणों को दो प्रमुख भागों में बांटा है—1. शाब्दिक एवं 2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण। इन दोनों प्रकार के बुद्धि परीक्षणों में ही वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षणों को सम्मिलित किया है अर्थात् शाब्दिक बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के है—वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण एवं सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण। इसी प्रकार अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण भी दो प्रकार के हुए—वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण एवं सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण। अब हम इन वर्गों में आने वाले मुख्य परीक्षणों का वर्णन करेंगे।

11.8.5 शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test)_ जैसा कि हमने पूर्व में लिखा है कि शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को भी दो वर्गों में विभक्त किया गया है—1. वैयक्तिक (Individual) तथा 2. समूह (Group) बुद्धि परीक्षण। इन वर्गों में आने वाले मुख्य परीक्षण इस प्रकार है—

11.8.5.1 वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Individual Verbal Intelligence Test)- वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में शब्दों या भाषा का प्रयोग होता है। इन परीक्षणों में प्रश्नों के कई समूह होते हैं इन प्रश्नों को पढ़कर व्यक्ति को मौखिक या लिखित उत्तर देना होता है। चूंकि ऐसे परीक्षण एक समय में एक ही व्यक्ति को दिये जा सकते हैं इसलिए इनको वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण कहते हैं। इस प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग केवल पढ़े-लिखे लोगों पर ही हो सकता है। बिने-साइमन के बुद्धि परीक्षण एवं इनके संशोधन एवं रूपान्तरण इसी वर्ग में आते हैं। इसके अतिरिक्त टर्मन-स्टैनफोर्ड का परीक्षण, वेश्लर की बुद्धि मापनी आदि इसी वर्ग में आते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.8.5.2 सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Group Verbal Intelligence Test)- वैयक्तिक शाब्दिक बुद्धि-परीक्षण एक बार में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता है। अधिक संख्या में व्यक्तियों पर यह परीक्षण करने में समय बहुत अधिक लग जाता है और परिणाम भी दोषपूर्ण आते हैं। अत: इस दोष को दूर करने के लिए सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया। इस प्रकार के बुद्धि परीक्षणों द्वारा एक साथ कई व्यक्तियों का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है। इस परीक्षण का सबसे पहले निर्माण प्रथम विश्व युद्ध के समय अमेरिका में हुआ। सेना में अधिकारी वर्ग की भर्ती के लिए शाब्दिक सामूहिक परीक्षण तैयार किये गये। इन परीक्षणों को आर्मी अल्फा परीक्षण (Army Alpha Tests) कहा गया।

अमेरिका के बाद कई देशों में इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण हुआ। भारत में भी इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण हुआ जिनमें जलोटा एवं जोशी के समूह बुद्धि परीक्षण प्रसिद्ध है।

11.8.6 अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non Verbal Intelligence Tests)

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को भी शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों की भांति दो वर्गों में विभाजित किया गया है—(अ) वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (ब) सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण।

11.8.6.1 वैयक्तिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Individual Non-Verbal Intelligence Tests)- इस प्रकार के परीक्षणों में शब्दों या भाषा का प्रयोग नहीं होता। इनके स्थान पर संकेत चिन्ह, आकृतियों का प्रयोग होता हे। अर्थात् इनमें भाषा या पुस्तकीय ज्ञान का कम से कम प्रयोग होता है। इस प्रकार के परीक्षणों को निष्पादन बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Tests) भी कहा जाता है। इस प्रकार का परीक्षण एक बार में एक व्यक्ति पर ही किया जा सकता है। इसके परीक्षणों में कुछ मुख्य परीक्षण निम्नलिखित हैं—

(1) ऐलेक्जेण्डर का पास एलोंग परीक्षण (Alexander's pass-along Test)

(2) कोह ब्लॉक आकृति परीक्षण (Kho's Block Design Test)

(3) पिन्टर-पैटर्सन बुद्धि परीक्षण (Pinter Patterson Intelligence Test)

(4) आकार फलक परीक्षण (Form Board Test)

(5) रेवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (Raven's Progressive Matrics Test)

(6) चित्र-पूर्ति परीक्षण (Picture Completion Test)

(7) भाटिया निष्पादन परीक्षण (Bhatia's Bettery of Intelligence Performance Test)

11.8.6.2 समूह अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Group Non-verbal Intelligence Test)- इस प्रकार के परीक्षणों में शब्दों एवं भाषा का प्रयोग नहीं होता है या फिर बहुत ही कम मात्रा में होता है तथा इनका परीक्षण एक साथ कई लोगों पर किया जा सकता है। सर्वप्रथम इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण प्रथम विश्व युद्ध के समय अमेरिका में हुआ, जब सेना में कम पढ़े-लिखे या अनपढ़ या विदेशी लोगों की भर्ती की जानी थी। इस परीक्षण को आर्मी बीटा परीक्षण (Army beta Test) नाम दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय आर्मी बीटा परीक्षण की तरह एक और परीक्षण तैयार किया गया जिसे आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन परीक्षण (Army General Classification Test) नाम दिया गया। इसी प्रकार एक अन्य परीक्षण सेना के लिए तैयार किया गया जिसे आर्म्ड फोर्सेज क्वालीफिकेशन परीक्षण (Armed forces Qualification Test- AFQT) कहते हैं। इस प्रकार परीक्षणों का प्रयोग एक ही समय में कई लोगों पर हो जाने से समय की बचत होती है। अधिकांश ऐसे परीक्षणों को किसी सेना भर्ती या रिकुरिटिंग करते समय उपयोग में लेते हैं।

11.9 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग (Utility of Intelligence Testing)

बुद्धि परीक्षणों का उपयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होता है। जिस-जिस क्षेत्र में मानव कार्यरत है उस-उस क्षेत्र में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग अवश्यंभावी है। हम संक्षिप्त में कुछ विशेष क्षेत्रों का उल्लेख कर रहे हैं जहां बुद्धि परीक्षणों का उपयोग होता है।

11.9.1 मानसिक योग्यता को ज्ञात करने हेतु

बुद्धि परीक्षणों के आधार हम किसी भी व्यक्ति बालक की मानसिक योग्यता ज्ञात कर सकते हैं तथा उसकी मानसिक योग्यता के आधार पर उसको कार्य सौंपा जा सकता है। मानसिक योग्यता एवं बुद्धि-लब्धि के आधार पर बालकों एवं व्यक्तियों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.9.2 कक्षा में प्रवेश हेतु

विद्यार्थियों के प्रवेश के समय विद्यालयों में बालकों का बुद्धि परीक्षण किया जाता है तथा बुद्धि-लब्धि प्राप्त कर उनके स्तर के अनुरूप उचित कक्षा में उनको प्रवेश दिया जाता है। जिससे कि वे अपने बुद्धि-स्तर के पाठ्यक्रमों का सुचारू-रूप से अध्ययन कर सके।

11.9.3 शिक्षा क्षेत्र-बुद्धि

परीक्षणों का व्यापक उपयोग शिक्षा जगत में होता है। बालक के प्रवेश, उसका विषय निर्धारण करने, पाठ्यक्रमों एवं विषयों का चयन करने, प्रतिभाशाली एवं बुद्धि-दौर्बल्य छात्रों का पता लगाने, अपराधी प्रवृति वाले बालको का पता लगाने आदि में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त छात्रों की बौद्धिक क्षमताओं का पता लगाने, छात्रों का व्यवसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन प्रदान करने तथा उनके व्यक्तिव को समझने में बुद्धि-परीक्षणों का महत्वपूर्ण उपयोग है।

11.9.4 वैयक्तिक भिन्नता ज्ञात करने में

व्यक्तियों में वैयक्तिक भिन्नता का सही ज्ञान व्यक्ति के मानसिक गुणों एवं बुद्धि-लब्धि के आधार पर ही सम्भव है। बुद्धि-लब्धि एवं मानसिक योग्यताएं बुद्धि-परीक्षणों से ही ज्ञात की जा सकती है।

11.9.5 व्यावसायिक उपयोग

बुद्धि परीक्षणों का सबसे अधिक उपयोग शिक्षा जगत में होता है परन्तु व्यावसायिक क्षेत्र में भी इसका उपयोग कम नही है। व्यवसाय के अनुरूप व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं को ज्ञात करने में, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का चयन करने में इन परीक्षणों का बहुत उपयोग है। इनके अतिरिक्त कर्मचारियों का उनकी योग्यता के अनुसार अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत करने तथा कर्मचारियों में आपसी उचित सम्बन्ध बनाये रखने में इन परीक्षणों का बहुत उपयोग होता है।

11.9.6 निदान एवं चिकित्सा में उपयोगी

बुद्धि परीक्षणों का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी होता है। असामान्य बालकों एवं मन्द बुद्धि बालकों की बुद्धि-लब्धि ज्ञात करने तथा उनके असामान्य व्यवहार के निदान में ये परीक्षण उपयोगी होते हैं। सीखने की समस्याओं एवं भूलने की समस्याओं के निदान के लिए भी ये परीक्षण सहायक है।

11.9.7 सेना में उपयोग

सेना में कर्मचारियों एवं अधिकारियों के चयन में ये परीक्षण बहुत उपयोगी है, सेना कर्मचारियों की पदोन्नति, वर्गीकरण आदि भी इन परीक्षणों से ही सम्भव है। पूर्व में प्रथम विश्व-युद्ध एवं द्वितीय विश्व-युद्ध में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग व्यापक रूप में हुआ है। वर्तमान में भी इन परीक्षणों का उपयोग सेना के विभिन्न विभागों में कर्मचारियों के चयन के लिए होता है।

11.98 कर्मचारी चयन में उपयोगी

आजकल प्राय: सभी विभागों में कर्मचारियों का चयन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से होता है। जिसमें बुद्धि परीक्षणों का विशेष योगदान है। बुद्धि के आधार पर कर्मचारियों का विभिन्न पदों पर चयन किया जाता है।

11.9.9 अनुसंधानिक उपयोग

बुद्धि परीक्षणों का अनुसन्धानिक कार्यों में बड़ा महत्त्व है। शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसंधानों के लिए आंकड़ों को एकत्र करने के लिए इन परीक्षणों का व्यापकता से उपयोग किया जाता है।

11.9.10 व्यावहारिक उपयोग

व्यक्ति की दिन प्रतिदिन की व्यावहारिक समस्याओं के निदान तथा उसकी मानसिक योग्यता के अध्ययन में भी बुद्धि परीक्षणों का उपयोग महत्वपूर्ण है।

11.10 बुद्धि का मापन (Measurement of Intelligence)

बुद्धि मापन के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार के परोक्षणों का निर्माण किया। जैसा कि पूर्व में लिखा गया है कि बुद्धि परीक्षणों का उद्देश्य अलग-अलग स्थितियों में तथा स्तरों पर बुद्धि परीक्षण करना होता है। शाब्दिक तथा अशाब्दिक परीक्षण क्रमश: पढ़े-लिखे लोगों पर तथा अनपढ़ या विशेष भाषा से अनभिज्ञ लोगों पर प्रशासित किए जाते हैं। इसी तरह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इनका उपयोग या प्रशासन वैयक्तिक रूप से है या सामूहिक रूप से जिस प्रकार से करना हो उसके अनुसार परीक्षणों का चयन किया जाता है।

किसी भी प्रकार के परीक्षण का प्रशासन करने के लिए कुछ बातें ध्यान में रखनी जरूरी होती हैं। जैसे सही स्थान का चुनाव अर्थात् परीक्षण के लिए प्रयोगशाला का ही चुनाव किया जाए अथवा ऐसी जगह का चुनाव किया जाऐ जहाँ परीक्षण निर्विघ्न सम्पन्न हो सके। परीक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व परीक्षणकर्ता यह सुनिश्चित कर ले कि परीक्षण के लिए सम्पूर्ण सामग्री उसके पास उपलब्ध है। परीक्षणकर्ता परीक्षण कार्य में दक्ष होना चाहिये। परीक्षणकर्ता प्रायोज्य से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करें और उसे शांतिपूर्वक परीक्षण की समस्याओं को हल करने को कहे।

परीक्षक यह सुनिश्चित करे कि उसे कौनसा परीक्षण करना है- शाब्दिक या अशाब्दिक, वैयक्तिक या सामूहिक। यह भी सुनिश्चित करे कि वह कौन से मनोवैज्ञानिक के परीक्षणों को उपयोग में लेना चाहता है। तत्पश्चात विषयी या प्रायोज्य को उसके अनुसार परीक्षण देकर फलांकन ज्ञात करे और उससे बुद्धि-लब्धि (IQ) प्राप्त करे। बुद्धि-लब्धि प्राप्त करने के लिए प्राय: सभी परीक्षणों में मानसिक आयु निकाली जाती है और इस मानसिक आयु में वास्तविक आयु का भाग देकर बुद्धि-लब्धि (IQ) प्राप्त की जाती है। जैसा कि निम्न सूत्र मे दर्शाया गया है—बुद्धि परीक्षण हेतु मानक बुद्धि परीक्षणों का ही प्रयोग करना चाहिये। मानक बुद्धि परीक्षणों की वैधता तथा विश्वसनीयता उच्च स्तर की होती है। समय, देश एवं परिस्थितियों के अनुसार निर्मित आधुनिकतम परीक्षणों का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। हम आगे कुछ चुनिन्दा विशेष परीक्षणों के बारे में जानकारी प्रस्तुत कर रहें है, जो भारत में बुद्धि मापन के लिए विशेष रूप से प्रयोग किए जाते है।

11.11 प्रमुख बुद्धि परीक्षण (Some Important Intelligence Tests)

बुद्धि मापन के लिए विश्व स्तर में कई प्रकार के बुद्धि परीक्षण उपयोग में लिए जाते हैं परन्तु यहाँ हम कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के विषय में जानकारी दे रहे हैं, जो विशेष रूप से भारतीय अनुकूलन के अनुसार निर्मित किये गये है। इन परीक्षणों में शाब्दिक एवं अशाब्दिक दोनों प्रकार के परीक्षण सम्मिलित हैं।

11.11.1 शाब्दिक परीक्षण (Verbal Intelligence Test)

(i) वेश्लर का वयस्क बुद्धि परीक्षण- वेश्लर का यह बुद्धि परीक्षण 1955 में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशक है 'साइकोलॉजिकल कारपोरेशन 304 ईस्ट, 45 स्ट्रीट, न्यूयार्क। यह वैयक्तिक शाब्दिक परीक्षण है जिसका माध्यम अंग्रेजी है। इस परीक्षण के द्वारा किशोरों एवं वयस्कों की बुद्धि का मापन किया जाता है। अर्थात इसका उद्देश्य 16 वर्ष से 64 वर्ष की आयु वर्ग के व्यक्तियों का बुद्धि परीक्षण करना है।

वेश्लर के द्वारा प्रस्तुत इस परीक्षण की शाब्दिक मापनी (Verbal Scale) के द्वारा छ: परीक्षण किये जाते है। ये है:—सूचनाएँ (information), सामान्य बोध (general comprehension), गणितीय तर्क (arithmatical reasoning), समानता (similarities), शब्द भण्डार (vocabulary) तथा अंक विस्तृति (digit span) जबकि इसी परीक्षण की

निष्पादन मापनी (performance scale) के द्वारा पाँच उप परीक्षण सम्पादित किये जाते है। ये हैं—चित्र व्यवस्था (picture arrangement), चित्र समापन (picture completion), खण्ड रचना (block design), वस्तु संग्रह (object assembly) तथा चिन्ह विस्तृति (digit symbol)।

(ii) जोशी की मानसिक योग्यता परीक्षा-प्रोफेसर मोहन चन्द्र जोशी द्वारा 1960 में निर्मित बुद्धि परीक्षण 'मानसिक योग्यता परीक्षा' का प्रकाशन हुआ। यह परीक्षण 'रूपा साईकोलोजिकल कॉर्पोरेशन वाराणसी' के द्वारा प्रकाशित किया गया। इस परीक्षण का माध्यम हिन्दी है एवं इस परीक्षण के द्वारा कक्षा 8 से 12 के विद्यार्थियों अथवा 12 से 19 वर्ष तक के बालकों का सामूहिक रूप से बुद्धि या मानसिक योग्यता का परीक्षण किया जाता है। यद्यपि इस परीक्षण के लिए समय सीमा 20 मिनट की रखी गई है किन्तु समय सीमा का फलांकों पर प्रभाव नहीं होता है।

इस परीक्षण में सात प्रकार के प्रश्न होते हैं। ये हैं—पर्याय (Synonyms), विपर्याय (Antonyms), संख्यात्मक (Number series), वर्गीकरण (Classification), श्रेष्ठ उत्तर (Best answer), तर्क (reasoning) तथा सादृश्य (anologies)। परीक्षण में कुल 100 प्रश्न सम्मिलित हैं, जिनमें से पर्याय, विपर्याय, श्रेष्ठ उत्तर तथा तर्क के 10-10 प्रश्न एवं संख्यात्मक वर्गीकरण तथा सादृश्य के 20-20 प्रश्न है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(iii) प्रयाग मेहता : सामूहिक बुद्धि परीक्षण– प्रयाग मेहता का सामूहिक बुद्धि परीक्षण 1962 में 'मानसायन नेताजी सुभाष मार्ग, देहली-6' द्वारा प्रकाशित किया गया। यह एक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण है जिसका माध्यम हिन्दी है। इस परीक्षण के द्वारा सामूहिक रूप से 7वीं कक्षा एवं इससे अधिक कक्षा में पढ़ने वाले 12 से 14 वर्ष के बच्चों का बुद्धि परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण की समय सीमा 18 मिनट है।

इस परीक्षण में 10 प्रकार के 6-6 पद अर्थात् कुल 60 पद हैं। ये पद तार्किक चयन, संख्या श्रृंखला, वर्गीकरण, सादृश्य, श्रेष्ठ प्रत्युत्तर, सूचनाएं, अव्यवस्थित वाक्य, व्यर्थता, अनुमान तथा गणितीय तर्क से संबंधित है।

(iv) जलोटा का साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण- साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण के निर्माता एस.एस. जलोटा (1960) है। इसके प्रकाशक है 'साइका-सेंटर, ग्रीन पार्क, न्यू देहली।' यह एक सामूहिक शाब्दिक परीक्षण है जिसका माध्यम हिन्दी है। इस परीक्षण के द्वारा 8 से 11वीं कक्षा या 11 से 16 वर्ष की आयु के बालकों की बुद्धि का परीक्षण किया जाता है।

इस परीक्षण में कुल 100 पद है जिनका प्रत्युत्तर 20 मिनट की अवधि में देना होता है। यह परीक्षण सात भागों में विभक्त है। ये है—शब्द भण्डार समान (Vocabulary similars), शब्द भण्डार विपरीत (Vocabulary opposites), संख्या श्रृंखला (Number series), वर्गीकरण (Classification), श्रेष्ठ प्रत्युत्तर (Best answer), अनुमान (Inference) एवं सादृश्य (Anologies)।

इस परीक्षण में शब्द भण्डार समान, शब्द भण्डार विपरीत श्रेष्ठ प्रत्युत्तर एवं अनुमान के 10-10 पद तथा संख्या श्रृंखला, वर्गीकरण तथा सादृश्य के 20-20 पद हैं।

11.11.2 अशाब्दिक परीक्षण (Non-verbal Intelligence Tests)

(i) भाटिया : निष्पादन बुद्धि परीक्षण- भाटिया, निष्पादन बुद्धि परीक्षण माला का निर्माण डॉ. चंद्र मोहन भाटिया के द्वारा सन् 1955 में किया गया। यह व्यक्तिगत तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है। इस परीक्षण का प्रकाशन 'पुरोहित पुरोहित पूना' के द्वारा किया गया। इस परीक्षण के द्वारा 11 से 16 वर्ष के भारतीय बच्चों, अशिक्षित एवं कम पढ़े-लिखे व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जा सकता है। इस परीक्षण में डॉ. भाटिया ने भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल 5 विदेशी तथा स्वयं निर्मित परीक्षणों की बैटरी को शामिल किया गया। ये है- कोह ब्लाक डिजायन परीक्षण, अलैजेंडर पास एलोंग परीक्षण, आकृति चित्रण परीक्षण, अंक तत्काल स्मृति परीक्षण तथा चित्र रचना परीक्षण। इस परीक्षण की समय सीमा एक घंटा रखी गई है। इस परीक्षण से व्यक्ति की मानसिक आयु ज्ञात की जाती है और उसके आधार पर बुद्धि-लब्धि ज्ञात की जाती है।

(ii) एलेक्जेण्डर पास एलोंग परीक्षण– यह परीक्षण एलेक्जेण्डर (1932) द्वारा निर्मित है। इस परीक्षण में ऊपर से खुली हुई चार मंजुषाएं (Boxes) होती हैं। ये सभी अलग-अलग माप की होती हैं। इनका एक किनारा लाल तथा दूसरा किनारा नीला होता है। इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के नीले तथा लाल रंग के तेरह आयताकार लकड़ी अथवा प्लास्टिक के गुटके होते हैं। इसमें आठ कार्ड होते हैं जिनमें गुटकों की अलग-अलग आकृति के चित्र होते हैं। आकृति चित्रों की रचना कठिनाई क्रम के अनुसार 1 से 9 क्रम तक होती है। मंजुषाओं में गुटके रखकर विषयी को 1 से 9 आकृति, जैसी कि कार्ड में होती है, बनाने को कहा जाता है। प्रत्येक आकृति बनाने के प्रयास में लगने वाले समय का अंकन किया जाता है। इस तरह प्रत्येक आकृति में लगने वाले समय के अनुसार विषयी को अंक प्रदान किये जाते हैं। इन अंकों से मानसिक आयु ज्ञात की जाती है। मानसिक आयु ज्ञात करने के बाद उसमें वास्तविक आयु का भाग देकर फलांकन को 100 से गुणित किया जाता है और इस तरह व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि (IQ) ज्ञात की जाती है। इस परीक्षण का प्रयोग 7 से 18 वर्ष की आयु के बालकों पर तथा गूंगे-बहरे व्यक्तियों पर भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

11.12 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. बुद्धि परीक्षण का क्या अर्थ है?
2. बुद्धि परीक्षणों के विकास पर प्रकाश डालिए।
3. बुद्धि-लब्धि से आप क्या समझते हैं? इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।
4. बुद्धि परीक्षण कितने प्रकार के होते हैं विस्तार से समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–12 : जीवन–विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा मानवीय क्षमताओं का विकास

संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 मानवीय क्षमताओं का विकास

12.2.1 श्रवण एवं दृष्टि सम्बन्धी योग्यता

12.2.2 पेशीय एवं हस्त सम्बन्धी योग्यता

12.2.3 विशिष्ट क्षेत्रों की अभिक्षमताओं का विकास

12.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.0 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व पाठ संख्या 9 में हमने मानवीय अभिक्षमताओं के बारे में अध्ययन किया। अभिक्षमता व्यक्ति कि किसी एक या अनेक क्षेत्रों में कार्य करने की विशिष्ट क्षमता (Potentality) या विशिष्ट योग्यता (Specific ability) या दक्षता (Skill) है। इन योग्यताओं के कारण ही व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से अपनी अलग पहचान बनाता है। व्यक्ति में कई क्षमताएं जन्मजात होती हैं तो कई क्षमताओं का वह विकास कर सकता है। ये क्षमताएं व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक उपकरण हैं जो व्यक्ति की क्रियाओं और विकास को परिष्कृत करते हैं। अधिकांश क्षमताएं मनोशरीर के आंतरिक कार्य है और प्राय: ये क्षमताएं एक-दूसरे से जटिल रूप से गुंथी (intert wind) होती है।

मानवीय क्षमताओं में कुछ क्षमताएं सामान्य होती हैं जो प्राय: सभी लोगों में पाई जाती है। कुछ विशिष्ट होती है जो कुछ लोगों में पाई जाती है और उनको सामान्य लोगों से अलग करती है। विशेष क्षेत्र के कार्य के लिए विशेष प्रकार की योग्यताओं का विकास किया जा सकता है इसके लिए लोगों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है और उनमें विशेष प्रकार की योग्यताओं का विकास किया जाता है। इसके लिए कई प्रशिक्षण केंद्र बनाए जाते है और उन केंद्रों में विशेष योग्यताओं की अभिवृद्धि हेतु विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। ज्ञानेन्द्रियों सम्बंधी अभिक्षमताएं बढ़ाने के लिए प्राय: बाह्य या आंतरिक त्राटक किया जाता है तथा कुछ अन्य यौगिक क्रियाओं से भी इन योग्यताओं को बढ़ाया जा सकता है। इसी तरह मानसिक या बौद्धिक योग्यताओं को भी ध्यान एवं योग के द्वारा विकसित किया जा सकता है। शारीरिक अभिक्षमताओं को भी विशेष योगासनों एवं प्राणायामों की क्रियाओं से बढ़ाया जा सकता है। विगत कुछ वर्षों से जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण विषय का विकास हुआ है। इन प्रशिक्षणों द्वारा व्यक्ति की योग्यताओं में अभिवृद्धि की जा सकती है और उनमें विशिष्ट योग्यताएं उत्पन्न की जा सकती हैं। कुछ शोध-कार्यों (गौड़ 1997) द्वारा भी यह स्पष्ट हुआ है कि जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान द्वारा व्यक्ति की बौद्धिक क्षमताओं (Intellectual Capacities), सृजनशीलता (Creativity), भावात्मक स्थिरता (Emotional stability) में सार्थक वृद्धि होती है। उन्होंने यह भी पाया कि व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक तनावों में तथा भय की मात्रा में जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण से सार्थक कमी आती है जो व्यक्ति के अन्य योग्यताओं के विकास में सहायक है। कुछ अन्य शोध अध्ययनों (गौड़ 1997, गौड़ एवं बेताल 1998) में भी उपरोक्त प्रकार के परिणामों के अतिरिक्त जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण से व्यक्ति की समायोजन क्षमता (Adjustment ability) का विकास होना पाया गया है। इसके अतिरिक्त एक अन्य शोध कार्य (गौड़ 2000) में भी जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण से चिन्ताओं और कुंठाओं के स्तरों में सार्थक कमी देखी गई।

12.1 उद्देश्य

1. मानवीय क्षमताओं के बारे में जान सकेंगे।
2. श्रवण एवं पेशीय सम्बन्धी योग्यताओं के बारे में जान सकेंगे।
3. प्रेक्षाध्यान के द्वारा अभिक्षमताओं का विकास कैसे संभव है के बारे में जान सकेंगे।

12.2 मानवीय क्षमताओं का विकास

इस अध्याय में जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण द्वारा किन-किन मानवीय योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास किया जा सकता है, इसके बारे में हम संक्षेप में विचार करेंगे।

12.2.1 श्रवण एवं दृष्टि सम्बंधी योग्यता

जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण के अन्तर्गत कुछ यौगिक क्रियाओं के द्वारा श्रवण एवं दृष्टि सम्बंधी योग्यताओं को बढ़ाया जा सकता है। कान की यौगिक क्रिया में तर्जनी अंगुली से कानों के बाह्य छिद्रों में दक्षिणावर्त घर्षण किया जाता है। इससे अप्रमाद केंद्र जागृत होता है जिससे आलस्य दूर होता है एवं श्रवण क्षमता बढ़ती है। अप्रमाद केंद्र पर ध्यान करने से श्रवण क्षमता में आशातीत सुधार आता है एवं व्यक्ति की श्रवण क्षमता में वृद्धि होती है। इसी तरह चाक्षुष केंद्र पर ध्यान करने से दृष्टि सम्बंधी दोष दूर होते हैं और दृष्टि क्षमता बढ़ती है। उपरोक्त क्रियाओं का उपयोग श्रवण एवं दृष्टि सम्बंधी विकारों को दूर करने हेतु किया जा सकता है तथा श्रवण एवं दृष्टि सम्बंधी योग्यताओं को बढ़ाने हेतु भी। व्यक्तियों की नौकरियों में चयन के समय इन विशिष्ट योग्यताओं की विशेष जांच की जाती है। जैसे रेल इंजिन ड्राइवर के लिए आंखों की दृष्टि एवं श्रवण योग्यता विशिष्ट होनी चाहिए उसमें दृष्टि भ्रम जैसी त्रुटियां नहीं होनी चाहिए। इसी तरह सेना में भर्ती के समय भी इस प्रकार की जांच या परीक्षण किये जाते हैं। इस प्रकार की अर्थात् श्रवण एवं दृष्टि की विशेष योग्यता रखने वाले सैनिक अपने कार्य में हर प्रकार से सफल होते हैं।

12.2.2 पेशीय एवं हस्तश्रम सम्बंधी योग्यता

इस प्रकार की योग्यता व्यक्ति की मांसपेशियों से सम्बंधित एवं हस्त कार्यो से सम्बंधित होती हैं। इस प्रकार की योग्यताओं को बढ़ाने के लिए जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। कायोत्सर्ग प्रक्रिया द्वारा शरीर की मांस पेशियों को शिथलीकरण का प्रशिक्षण देकर एवं योगासनों के प्रशिक्षण द्वारा भी मांसपेशियों में सुदृढ़ता एवं लचीलेपन की क्षमता पैदा की जा सकती है। मांसपेशियों के शिथलीकरण, उसके लचीलेपन और उस पर नियंत्रण का जितना अधिक अभ्यास व्यक्ति को होगा उतनी ही उसकी मांसपेशियों एवं हस्तश्रम सम्बंधी दक्षता बढ़ेगी। इस प्रकार विशिष्ट योग्यताओं की आवश्यकता सूक्ष्म मशीनों के कार्यों में अति आवश्यक है। घड़ी उद्योग, टी.वी., रेडियो, टेपरिकॉर्डर एवं अन्य सूक्ष्म यंत्रों के निर्माण में इस प्रकार की क्षमताएं अति आवश्यक होती है। इसी प्रकार क्रियात्मक सामंजस्य (Motor Co-ordination), हस्तश्रम निपुणता (Manual dexterity), अंगुली निपुणता (Finger dexterity) सबंधी योग्याओं का विकास भी कायोत्सर्ग, योगिक क्रियाएं, श्वास प्रेक्षा, प्राणायाम, योगासन और शरीर प्रेक्षा द्वारा किया जा सकता है।

12.2.3 विशिष्ट क्षेत्रों की अभिक्षमताओं का विकास

3.3.1 अध्यापन विशिष्ट योग्यता– अध्यापन सम्बंधी विशिष्ट योग्यताओं या अभिक्षमताओं का विकास करने के लिए इनसे सम्बंधित प्रशिक्षण दिया जाता है। यदि इन प्रशिक्षणों के साथ जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण को जोड़कर प्रशिक्षण दिया जाए तो इससे व्यक्ति में अध्यापन की विशिष्ट योग्यताएं बढ़ सकती हैं। अध्यापन प्रशिक्षण के साथ जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण के कई अवयव जोड़े जा सकते है जैसे–कायोत्सर्ग, श्वास प्रेक्षा, ज्योति केंद्र प्रेक्षा, अन्तर्यात्रा, शरीर प्रेक्षा, लेश्याध्यान, अनुप्रेक्षाएं आदि। इस प्रकार के प्रशिक्षण में व्यक्ति सुबह एवं शाम प्रेक्षाध्यान एवं इसके अन्य घटकों का नियमित अभ्यास करता है। यदि इनका अभ्यास दीर्घ काल या सदैव ही किया जाए तो ये प्रयोग व्यक्तियों के कई मानसिक आयामों को खोल देते हैं और उनमें विलक्षण क्षमताएं विकसित कर देते हैं। इससे व्यक्ति की अध्यापन विशिष्ट योग्यताएं और भी बढ़ भी जाती हैं।

12.2.3.2 कला विशिष्ट योग्यता– इस प्रकार की योग्यताओं को बढ़ाने के लिए विशेष चैतन्य केंद्रों पर ध्यान किया जाता है। जैसे– प्राण केंद्र, दर्शन केंद्र, ज्योति केंद्र, शान्ति केंद्र तथा ज्ञान केंद्र। इससे व्यक्ति की कला की विशिष्ट योग्यता में अभिवृद्धि होती है। इस प्रकार की विशिष्ट योग्यता का उपयोग कलाकार, चित्रकार, संगीतकार, गीतकार, मूर्तिकार, वास्तुकार एवं रचनाकार अधिक करते हैं। इस विशिष्ट योग्यता के बढ़ने से व्यक्ति की कल्पना क्षमता एवं चिन्तन क्षमताएं भी बढ़ जाती हैं।

12.2.3.3 संगीत विशिष्ट योग्यता– इस प्रकार की योग्यताओं में व्यक्ति के गाने और वाद्य यंत्रों को बजाने सम्बंधी योग्यताएं सम्मिलित होती हैं। इस योग्यताओं को बढ़ाने के लिए नियमित रूप से दिन में कई बार महाप्राण ध्वनि, कायोत्सर्ग एवं विशुद्धि केंद्र पर नीले रंग का ध्यान किया जाता है। इसमें रंग का ध्यान अर्थात् लेश्या ध्यान होता है और इससे गीत गाने की कला और क्षमता का विकास होता है। नियमित कायोत्सर्ग और कुछ यौगिक क्रियाओं द्वारा वाद्य यंत्रों को बजाने की क्षमता का विकास किया जा सकता है। इस क्षमता के बढ़ जाने से संगीत गाने वाला अपने स्वरों पर अच्छा नियंत्रण कर सकता है। विशुद्धि केंद्र पर ध्यान एवं महाप्राण ध्वनि का नियमित अभ्यास गले के सारे विकारों को दूर कर स्वर यंत्र को लचीला बनाता है, जिससे वाणी का परिष्करण होता है और स्वर सुरीले एवं लयबद्ध पैदा होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.2.3.4 विज्ञान एवं तकनीकी अभिक्षमताएं– विज्ञान एवं तकनीकी अभिक्षमताओं में वृद्धि हेतु व्यक्ति के अन्तर्ज्ञान एवं अन्तर्दृष्टि का विकास होना आवश्यक है। व्यक्ति अन्तर्ज्ञान एवं अन्तर्दृष्टि से ही बाह्य वस्तुओं के सम्बंधों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार की अभिक्षमताएं यांत्रिक क्षेत्र, इंजिनियरिंग क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्रों में उपयोगी होती है। इस दक्षता के कारण ही व्यक्ति मशीनों का संचालन, वैज्ञानिक शोध आदि कार्यों को सुचारू रूप से कर सकता है। इसके लिए व्यक्ति में भावात्मक स्थिरता तथा मानसिक एवं शारीरिक तनावों का कम होना भी आवश्यक है। इसके लिए भी कायोत्सर्ग, ज्ञान केंद्र पर पीले रंग का ध्यान, दर्शन केंद्र पर अरूण रंग का ध्यान, श्वास प्रेक्षा इत्यादि का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है। इन प्रयोगों के नियमित अभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपनी विज्ञान एवं तकनीकी सम्बंधी अभिक्षमताओं में वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार की अभिक्षमता बढ़ाने के लिए जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का दीर्घ कालीन प्रशिक्षण आवश्यक है।

12.2.3.5 चिकित्सा सम्बन्धी अभिक्षमताएं– जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षकों के द्वारा कई प्रकार की व्याधियों की चिकित्सा की जा सकती है परन्तु साथ ही साथ चिकित्सकों की अभिक्षमताएं बढ़ाने में भी जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण उपयोगी सिद्ध हो सकता है। चिकित्सकों को भी अपने क्षेत्र में कार्य करने से मानसिक तनाव एवं थकान हो सकती है और इसका प्रभाव उनकी कार्य क्षमताओं पर भी पड़ता है। मानसिक थकान और शारीरिक थकान को दूर करने के लिए कायोत्सर्ग चिकित्सकों के लिए वरदान रूप है। इसी तरह अपने व्यवसाय में और अधिक दक्षता लाने के लिए चिकित्सकों को भी अन्तर्ज्ञान एवं अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता रहती है जिनको वे चैतन्य केंद्र प्रेक्षा के अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। ज्योति केंद्र प्रेक्षा, ज्ञान केंद्र पर ध्यान, चिकित्सकों में अन्तर्दृष्टि से चिकित्सक रोगियों के रोग का पता लगाने एवं रोगी की उत्तम चिकित्सा करने में दक्ष हो सकते हैं। शल्य चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों के लिए भी यौगिक क्रियाएं एवं कायोत्सर्ग विशेष लाभकारी है।

12.2.3.6 न्यायिक क्षेत्र की विशिष्ट योगयताएं– न्यायिक क्षेत्र में न्याय करने वाले व्यक्तियों की विशिष्ट योग्यता यह होती है कि वे किसी भी विवाद को ठीक से समझें और उस पर निष्पक्ष निर्णय ले। इस प्रकार की दक्षता में अभिवृद्धि हेतु व्यक्ति को जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण के अन्तर्गत कुछ अनुप्रेक्षाएं और भावनाएं करनी चाहिए। अनुप्रेक्षा एवं भावनाओं में प्रामाणिकता, आत्मानुशासन, सत्य, निर्लोभता, अभय, कर्तव्यनिष्ठा, अनासक्ति तथा सम्प्रदाय निरपेक्षता आदि का अभ्यास किया जाये तो व्यक्ति में न्याय करने की अभिक्षमता बढ़ सकती है। निष्पक्ष न्याय करना व्यक्ति के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है और यह दक्षता हर किसी व्यक्ति को प्राप्त नहीं होती। परन्तु न्यायिक प्रशिक्षण के साथ साथ यदि जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण दिया जाय तो व्यक्ति में न्यायप्रिय व्यक्तित्व एवं न्यायिक दक्षताओं का विकास संभव हो सकता है। न्याय करने वाला समाज का विशिष्ट व्यक्ति होता है और उसमें निर्भय होकर बिना भेदभाव के और धैर्यता के साथ न्याय देने की विशेष क्षमता होनी चाहिए। ये दक्षताऐं न्यायधीश एवं अधिवक्ता में होनी अत्यन्त आवश्यक है।

12.2.3.7 शारीरिक विशिष्ट योग्यताएं जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि शारीरिक विशिष्ट योग्यताओं का सम्बंध शारीरिक कार्य, खेल–कूद तथा श्रम युक्त कार्यों से है। इनमें शरीर का गठन, शरीर का लचीलापन, शारीरिक स्फूर्ति आदि योग्यताओं का विशेष महत्व है। शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद प्रतियोगिताओं में इन विशिष्ट योग्यताओं का महत्व और भी बढ़ जाता है। इन योग्यताओं का विकास करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण दिये जाते हैं, फिर भी व्यक्ति अपनी इन क्षमताओं को बढ़ाने के लिए नशीले पदार्थों या शक्तिवर्धक औषधियों का प्रयोग कर लेते हैं जो उनकी योग्यताओं को न दर्शाकर अयोग्यता को ही प्रकट करती है। शारीरिक क्षमताओं को बढ़ाने और उनका प्रदर्शन करने के लिए धैर्य, अभय और तनावमुक्ति की प्रबल आवश्यकता होती है। इनके अतिरिक्त व्यक्ति की इच्छा शक्ति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इच्छा शक्ति और धैर्य को बढ़ाने के लिए जीवन विज्ञान प्रशिक्षण में अनुप्रेक्षाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। अभय की अनुप्रेक्षा, धैर्य की अनुप्रेक्षा तथा इच्छा शक्ति की अनुप्रेक्षा के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति अपनी शारीरिक अभिक्षमताओं में वृद्धि कर सकता है। इनके अतिरिक्त शारीरिक क्षमताओं के लिए श्वास रोकने (कुंभक) की क्षमता एवं शारीरिक गठन भी महत्वपूर्ण है। श्वास प्रेक्षा एवं प्राणायाम द्वारा फेफड़ों को बलशाली बनाकर श्वास रोकने (कुंभक) की क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।' शरीर को लचीला बनाने एवं स्फुर्ति लाने के लिए आसनों का नियमित अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के लचीलेपन से खेल के समय यौगिक क्रियाओं तथा कुछ विशेष प्रकार के आसनों के द्वारा शारीरिक गठन को निखारा जा सकता है। यौगिक क्रियाओं एवं आसनों के द्वारा शरीर की मांस पेशियों को लचीला एवं सुदृढ़ बनाया जा सकता है। इस तरह जीवन विज्ञान प्रशिक्षण से शारीरिक विशिष्ट योग्यताओं का विकास किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.2.3.8 अन्य बौद्धिक विशिष्ट योग्यताएं- बौद्धिक क्षमताओं में जैसे इच्छा (Will-Power), कल्पना शक्ति (Imagination Power), चिन्तन शक्ति (Thinking Power), भाव एवं अनुभूतियां (Emotions and Feeling Power) अन्तर्ज्ञान या अन्तर्दृष्टि (Intution or Insight) बौद्धिक शक्ति (Intelletual Power) तथा स्मृति क्षमता (Memory-Power) महत्वपूर्ण है, इन क्षमताओं से हम जीवन के कई कार्य सपन्न करते है, कई निर्णय लेते हैं, कई उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं और जीवन जीने की कला सीखते हैं। व्यक्ति के जीवन में ये क्षमताएं बहुत महत्वपूर्ण होती हैं और उसके समग्र व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। इन अभिक्षमताओं से व्यक्ति उच्च स्तरीय कार्यों को करता है, अपना अच्छा स्व-प्रबंधन करता है तथा व्यावहारिक दृष्टि से सम्पन्न हो जाता है।

इच्छा शक्ति से व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक बना सकता है अपना हर कार्य सुचारूरूप से सम्पन्न कर सकता है और यहां तक कि वह ईश्वर की भी प्राप्ति कर सकता है। कल्पना शक्ति के विकास से जीवन के कई क्षेत्रों में प्रगति की जा सकती है। कल्पना शक्ति हमारी सृजनात्मकता, स्मृति तथा चिन्तनात्मक शक्ति को बढ़ाने में सहायक हो सकती है। यह हमारी आंतरिक दुनिया के विकास में भी सहायक होती है। चिन्तन, भाव एवं अनुभव की शक्ति जगत को जानने व समझने में उपयोगी है इससे व्यक्तिगत, उद्देश्यात्मक, भावात्मक जगत के कार्यों को समझा जा सकता है। अन्तदृष्टि और अन्तर्ज्ञान जगत से सूचना प्राप्त करने उनका प्रत्यक्षीकरण करने में सहायक होती है। बौद्धिक शक्ति तथा स्मृति क्षमता के विकास से व्यक्ति बुद्धिमान तथा कई विषयों का ज्ञाता हो जाता है।

मानव के व्यक्तित्व का विधायात्मक विकास के उपरोक्त बौद्धिक क्षमताओं का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान समय में बहुत ही थोड़े व्यक्ति अपना समग्र जीवन जी पाते हैं। इन क्षमताओं या विशिष्ट योग्यताओं की कमी के कारण व्यक्ति स्थितियों एवं परिस्थितियों को ठीक से समझ नहीं पाता फलस्वरूप उसका व्यवहारिक पक्ष कमजोर हो जाता है। व्यवहारिक पक्ष के कमजोर हो जाने से व्यक्ति का समायोजन बिगड़ जाता है और वह स्वयं के साथ, परिवार के साथ एवं समाज के साथ व्यवस्थित नहीं हो पाता।

इन सभी क्षमताओं को जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण से बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार की क्षमताओं को बढ़ाने के लिए प्रेक्षाध्यान के सभी अवयवों का उपयोग किया जाता है। कायोत्सर्ग, श्वास प्रेक्षा, अन्तर्यात्रा, ज्योति केंद्र प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केंद्र प्रेक्षा एवं लेश्या ध्यान के अभ्यास के द्वारा इन क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है। विभिन्न लेश्याओं का ध्यान तथा विभिन्न चैतन्य केंद्रों की प्रेक्षा इन क्षमताओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इनके अतिरिक्त कुछ अनुप्रेक्षाओं के प्रशिक्षण से भी इन क्षमताओं को उच्चत्तम स्तर तक बढ़ाया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान के अवयव एवं अनुप्रेक्षा के विस्तृत अध्ययन के लिए क्रमशः "प्रेक्षाध्यान प्रयोग पद्धति", "अमूर्त चिन्तन", ''अमृतपिटक'' पुस्तकों का अवलोकन करें।

इस तरह हमने देखा कि "जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान" हमारी क्षमताओं के विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्षमताओं का विकास चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे नियमित रूप से जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण प्राप्त करें जिससे कि उनकी अभिक्षमताओं का विकास हो सके।

12.3 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण से मानव क्षमताओं का विकास किस तरह सम्भव है। स्पष्ट करें।
2. श्रवण एवं दृष्टि संबंधी योग्यताएं जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण से किस तरह बढ़ाई जा सकती है।
3. पेशीय एवं हस्तश्रम संबंधी योग्यताओं का विकास प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान से किस तरह सम्भव है?
4. चिकित्सा संबंधी विशिष्ट योग्यताओं को बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए?
5. संक्षेप में टिप्पणी लिखें?
    1. न्यायिक क्षेत्र की विशिष्ट योग्यताएं एवं जीवन विज्ञान
    2. शारीरिक विशिष्ट योग्यताएं एवं जीवन विज्ञान
    3. बौद्धिक विशिष्ट योग्यताएं एवं जीवन विज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 4–जीवन विज्ञान और औद्योगिक जगत–I

इकाई : 13 औद्योगिक मनोविज्ञान का परिचय

संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 औद्योगिक मनोविज्ञान का स्वरूप
13.2.1 औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ
13.2.2 औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाषाएं
13.3 औद्योगिक मनोविज्ञान की विषय सामग्री
13.3.1 उद्देश्य
13.3.2 औद्योगिक मनोविज्ञान का विस्तार
13.4 औद्योगिक मनोविज्ञान के आधार
13.4.1 भौतिक पक्ष का अध्ययन
13.4.2 सिद्धान्तों का अध्ययन
13.4.3 मनोवृत्तियों तथा प्रेरणाओं का अध्ययन
13.4.4 मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन
13.4.5 मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन
13.4.6 विज्ञापन एवं विक्रय
13.4.7 अन्य क्षेत्र
13.5 औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्याएं
13.5.1 कर्मचारी तथा कार्य
13.5.2 कर्मचारी तथा निरीक्षक
13.5.3 कर्मचारी और प्रबंधक
13.5.4 कर्मचारी और कर्मचारी
13.6 औद्योगिक मनोविज्ञान के लक्ष्य
13.7 औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र
13.7.1 नियुक्ति विभाग
13.7.2 प्रशिक्षण विभाग
13.7.3 कर्मचारी सुरक्षा विभाग
13.7.4 कर्मचारी हित विभाग
13.7.5 कर्मचारी स्वास्थ्य विभाग
13.7.6 शोध विभाग
13.7.7 अन्य विभाग
13.8 औद्योगिक मनोविज्ञान में मानवीय पक्ष
13.9 औद्योगिक मनोविज्ञान की उपयोगिता
13.10 औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता
13.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.12 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.0 प्रस्तावना

किसी भी देश की प्रगति के लिए उस देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होनी आवश्यक है। सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के लिए उस देश में स्वस्थ एवं विकसित उद्योगों का होना आवश्यक है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए आधुनिक उद्योगों की स्थापना करना, उनका सही संचालन एवं प्रबन्धन करना अत्यन्त आवश्यक है।

उद्योगों का सही सचांलन एवं प्रबन्ध नहीं होने से उद्योग क्षेत्र में उद्योगपतियों एवं कर्मचारियों को क्षति उठानी पड़ती है। कई उद्योगों में उद्योगपतियों द्वारा कर्मचारियों का शोषण होता है। कर्मचारियों को समुचित वेतन एवं सुविधाएं न देकर उनके हितों पर कुठाराघात करते हैं। उद्योगपति अधिक पूंजीपति बनने एवं अधिक लाभ प्राप्त करने की लालसा मे इस प्रकार का शोषण प्राय: करते है। इस प्रवृत्ति से कई बार उद्योगपतियों को काफी क्षति भी उठानी पड़ती है। जब उद्योगपति समुचित वेतन या मजदूरी अपने कर्मचारियों को नहीं देता, उनके हितों एवं सुविधाओं पर ध्यान नहीं देता तब कर्मचारियों में असन्तोष पनपने लगता है और वे अपना कार्य ठीक ढंग से नहीं कर पाते है। इसी असन्तोष के परिणामस्वरूप हड़तालें, तालाबन्दी, घेराव एवं अपराधिक गतिविधियां प्रारम्भ हो जाती हैं। इन्हीं गतिविधियों के कारण उद्योगपतियों, प्रबन्धन मण्डल एवं कर्मचारियों के बीच तनाव पैदा होते हैं और उद्योगों का उत्पादन ठंडा पड़ जाता है, जिससे उद्योगपतियों, उद्योग एवं कर्मचारियों को क्षति उठानी पड़ती है। उद्योग इकाइयाँ बीमार पड़ जाती हैं और ये सारी स्थितियाँ कई समस्याओं को जन्म देती हैं।

बीसवीं शदी के प्रारंभ में उद्योगपति स्वयं को आर्थिक व्यवस्था का तानाशाह मानता था। उसका विश्वास था कि शक्ति के द्वारा प्रत्येक स्थिति को सही किया जा सकता है। उस समय के औद्योगिक नेता या उद्योगपति शोषण ही नहीं वरन् मजदूरों के हितों का गला घोंटने वाले भी थे। उनका दृष्टिकोण था कि व्यापार-व्यापार है। आर्थिक संघर्ष बढ़ता ही रहता था। आर्थिक दबाव और थकान से मजदूर की हालत दयनीय थी। वे एक दासता का जीवन जीते थे। इस औद्योगिक दासता से राहत पाने के लिए मजदूरों ने संगठन बनाए और इससे मजदूरों में उत्साह की एक लहर उठी। मजदूर अब अधिकारों की मांग के महत्त्व को समझने लगा था। परिणामस्वरूप मजदूर के मूल्यों और मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ।

आधी शताब्दी के बाद की स्थिति यह है कि उद्योगपति अधिक उत्पादन और मजदूर अधिक वेतन की अपेक्षा रखता है। उद्योगपति का उत्पादन के लिए भौतिक वस्तुओं तथा हड़ताल के समय अमानवतावाद का दृष्टिकोण रहता है। उद्योगपति मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाकर अपना स्थान सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्न करने लगे फिर भी मजदूर और उद्योगपतियों के बीच बहुत बड़ा फासला आ गया। अत: आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी व्यवस्था निर्धारित हो जिससे उपरोक्त समस्या का निदान हो सके और उसका व्यावहारिक रूप सामने आए। औद्योगिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिससे इन समस्याओं का समाधान संभव है। यह शाखा भौतिकवादी तथा मानवतावादी दोनों दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करती है।

13.1 उद्देश्य

1. औद्योगिक मनोविज्ञान के बारे में जान सकेंगे।
2. औद्योगिक मनोविज्ञान के अर्थ एवं परिभाषाओं को समझ सकेंगे।
3. औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्याओं के बारे में जान सकेंगे।
4. औद्योगिक मनोविज्ञान के लक्ष्यों के बारे में जान सकेंगे।
5. औद्योगिक मनोविज्ञान की उपयोगिता को जान सकेंगे।

13.2 औद्योगिक मनोविज्ञान का स्वरूप

औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योग से संलग्न लोगों के व्यवहार का अध्ययन करता है। सिर्फ इतने से ही इसके स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इसका स्वरूप विश्लेषण निम्न दो दृष्टिकोणों से करना आवश्यक होगा—1. अर्थ, 2. परिभाषाएं।

13.2.1 अर्थ

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में औद्योगिक मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। मशीनी युग की क्रान्तिकारी प्रगति ने उद्योगपतियों, वैज्ञानिकों अधिकारियों को इस बात को सोचने के लिए बाध्य कर दिया कि वे एक ऐसी विधि खोज निकालें जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सके, श्रमिक के कार्यों के घंटे कम किए जा सकें, श्रमिकों का वेतन बढ़ाया जा सके और साथ ही साथ उत्पादन भी बढ़ाया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वैज्ञानिकों तथा औद्योगिक समस्याओं को सुलझाने के लिए औद्योगिक स्थितियों को मनोवैज्ञानिक रूप देने पर विचार किया। धीरे धीरे उद्योग-धंधों में मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रयोग होने लगा। इससे मनोविज्ञान की यह नवीन शाखा औद्योगिक मनोविज्ञान के नाम से जानी जाती है। यदि इसके जन्म पर विचार किया जाए तो यह बात सामने आती है कि आर्थिक दबाव, सामाजिक असन्तुलन और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के कारण औद्योगिक मनोविज्ञान का जन्म हुआ है। इसके साथ दूसरा यह भी कारण है कि मशीनी युग तथा कर्मचारियों की समस्याओं के कारण भी औद्योगिक मनोविज्ञान सामने आया है। इसी के कारण छोटे-बड़े सभी प्रकार के उद्योगों के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान की वह शाखा जो औद्योगिक पक्षों का अध्ययन करती है-औद्योगिक मनोविज्ञान कहलाती है।

13.2.2 परिभाषाएं (Definitions)

औद्योगिक मनोविज्ञान व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसके अन्तर्गत उद्योग संबधी समस्याओं, कर्मचारी की आर्थिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान तथा विभिन्न प्रकार के नियमों तथा सिद्धातों का अध्ययन एवं पुष्टि संभव होती है। औद्योगिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत ही उद्योग में कार्यरत तथा औद्योगिक वातावरण से घिरे हुए लोगों का अध ययन किया जाता है। इसके द्वारा कर्मचारियों के भौतिकता से प्रभावित व्यवहार तथा अन्य व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन किया जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान के द्वारा उद्योग धंधों मे लगे व्यक्तियों के व्यवहार का अध ययन किया जाता है।

ब्लम के अनुसार ''औद्योगिक मनोविज्ञान के द्वारा उद्योग और व्यापार मे लगे हुए व्यक्तियों के संबधों और विभिन्न समस्याओं से संबन्धित तथ्यों तथा सिद्धातों का अध्ययन किया जाता है।''

हैरेल के अनुसार ''औद्योगिक मनोविज्ञान व्यापार और औद्योगिक क्षेत्र में कार्यरत लोगों के पक्षों का अध्ययन है।''

हैरेल ने एक अन्य परिभाषा दी है, जो इस प्रकार है ''औद्योगिक मनोविज्ञान यों तो अनेक बातों का जटिल अध्ययन है पर प्राथमिक रूप से कार्य-परिस्थितियों में संलग्न व्यक्तियों का ही अध्ययन करता है।''

13.3 औद्योगिक मनोविज्ञान की विषय सामग्री (Material of Industiral Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान की विषय सामग्री के दो मुख्य आधार बताए गए हैं जो इसके अध्ययन के स्वरूप को पूर्णत: स्पष्ट करते है। प्रथम आधार के अन्तर्गत औद्योगिक मनोविज्ञान के उद्देश्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा द्वितीय आधार पर अध ययन की सीमाएं निश्चित की जाती हैं।

13.3.1 उद्देश्य (Objectives)

औद्योगिक मनोविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारी और उत्पादन से संबन्धित सभी समस्याओं का अध्ययन करना है। किस प्रकार उत्पादन बढ़े और कैसे कर्मचारी सम्पन्न बनें, सन्तुष्ट रहें, आदि के लिए मनोवैज्ञानिक प्रणालियों को खोजना औद्योगिक मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। इसके द्वारा औद्योगिक सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। यही सन्तुलन उत्पादन बढ़ाने और कर्मचारी को सन्तुष्ट रखने मे सहायक होता है। यह सन्तुलन निम्न उद्देश्यों पर आधारित है—

1. कार्य के अनुसार कर्मचारी का चयन और कर्मचारी की योग्यतानुसार उसे कार्य सौंपना।
2. औद्योगिक विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए कर्मचारी के स्वास्थ्य को भी ध्यान में रखना।
3. कर्मचारी की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखना तथा उसे मेहनत का पूरा पारिश्रमिक देना।
4. कर्मचारी की थकान, अरोचकता तथा दुर्घटना आदि को कम करने के लिए उचित विधियों का उपयोग करना।
5. उत्पादन को बढ़ाने तथा मानसिक स्वास्थ्य को सही रखने के लिए कर्मचारी को उचित प्रलोभन देना।
6. कुसमायोजित कर्मचारी के असन्तोष के कारणों को दूर करना ताकि वह समायोजित होकर कार्य करे।
7. कार्य दशाओं तथा औद्योगिक वातावरण को सुखप्रद बनाना।
8. मशीनों तथा औजारों में सुधार करना तथा मानवीय पक्ष को बढ़ावा देना।
9. मशीन को मशीन समझना तथा कर्मचारी को इंसान समझना। यदि कर्मचारी को भी मशीन की तरह उपयोग में लाया गया तो उत्पादन में इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा।
10. भौतिक पक्षों के साथ-साथ मानवीय पक्ष को सर्वोपरि समझना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. उद्योग और मजदूर के बीच की दूरी को कम करना, मजदूर को उद्योग की एक महत्वपूर्ण इकाई समझना।

12. मजदूर राष्ट्रहित की संपत्ति है, इस प्रकार की विचर धारा को प्रोत्साहित करना।

हेरैल ने औद्योगिक मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र को सीमाबद्ध करते हुए निम्न उद्देश्य प्रतिपादित किए हैं-

1. औद्योगिक मनोविज्ञान का संबध कार्य के भौतिक पक्ष (प्रकाश, तापमान) से है साथ ही यह भी ज्ञात करने से है कि उत्पादन एवं सुरक्षा पर इस भौतिक पक्ष का किस प्रकार से प्रभाव पड़ता है।
2. मानवीय सम्बंधो के सिद्धांतों एवं प्रयासों की जानकारी प्राप्त करना।
3. कर्मचारी की मनोवृत्तियों एवं प्रेरणाओं का अध्ययन करना, इससे कर्मचारियों का मनोबल, अरोचकता, अरूचि आदि के कारणों की जानकारी प्राप्त करना।
4. कर्मचारी के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना जिससे यह ज्ञात हो सके कि कर्मचारी कैसे कुसमायोजित हो जाते हैं।
5. कार्य तथा कर्मचारी, कर्मचारी-निरीक्षक, निरीक्षक तथा प्रबन्धक तथा कर्मचारियों के बीच का अध्ययन करना।

हैरेल के उपर्युक्त पांच उद्देश्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये विचार उपयुक्त हैं तथा इनके आधार पर औद्योगिक मनोविज्ञान के पक्ष को विश्लेषित किया जा सकता है। इन्हीं लक्ष्यों के आधार पर औद्योगिक मनोविज्ञान के विचार का वर्णन किया जा रहा है।

13.3.2 औद्योगिक मनोविज्ञान का विस्तार (Spon of Industrial Psychology)

चूंकि औद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की ही एक शाखा है। जिस प्रकार मनोविज्ञान का सम्बंध मानव जीवन से है उसी प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान का संबंध उद्योग में है और इसका क्षेत्र लगातार बढ़ता जा रहा है। वाइटल्स का कहना है-

The application of psychology in industry is associated with as increasing of individual make-up.

वर्तमान में औद्योगिक मनोविज्ञान के विस्तार से अनेक प्रकार की समस्याओं का अध्ययन तथा समाधान किया जाता है। कर्मचारी की वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखना तथा इसी के आधार पर उनके लिए उपर्युक्त व्यवसाय का चयन करने की विधियों का निर्णय करना औद्योगिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है। कर्मचारियों के प्रशिक्षण का प्रबंध करना कार्य दशाओं में सुधार हेतु अनुसंधान करना, मजदूरों की थकान, अरोचकता, दुर्घटना आदि के कारणों को ज्ञात करना तथा उनके निराकरण की विधियों को क्रियान्वित करना आदि कार्य भी औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत ही आते हैं। इस प्रकार से उद्योग में भौतिक पक्ष की अपेक्षा मानवीय पक्ष को महत्त्व देने सम्बंधी अध्ययन, प्रशासनिक व्यवस्था को महत्त्व देने संबंधित अध्ययन, प्रशासनिक व्यवस्था, मालिक मजदूर के सम्बन्धों को सुधारने तथा दोनों के मार्गदर्शन सम्बन्धी अध्ययन करना भी औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में आता है।

13.4 औद्योगिक मनोविज्ञान के आधार (Foundation of Industrial psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान की उत्पत्ति तथा विकास मशीनी युग के कारण हुआ है। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि उस समय मजदूरों की दशा दयनीय थी, मजदूरों के ऊपर आर्थिक दबाव तथा साथ में सामाजिक तिरस्कार दोनों की वजह से वह इंसान की श्रेणी से बाहर हो गया था। भले ही यह स्थिति ज्यादा समय तक नहीं चली, फिर भी जब तक यह स्थिति रही मजदूर की अवहेलना होती रही। इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए विद्वानों ने कुछ ऐसे आधार प्रस्तुत किये जिससे मजदूर और मालिक के बीच की दूरी कम हो। औद्योगिक संतुलन बना रहे। इसके लिए औद्योगिकीकरण में मनोविज्ञान को जोड़ा गया। इस प्रकार सबसे पहले औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्त्वों पर आधारित किया गया।

1. भौतिक दशाओं का पक्ष
2. सिद्धान्तों का अध्ययन
3. मनोवृत्तियों तथा प्रेरणाओं का अध्ययन
4. मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन
5. मानवीय सम्बंधों का अध्ययन
6. अन्य क्षेत्र
7. विज्ञापन एवं विक्रय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.4.1 भौतिक पक्ष का अध्ययन (Study of physical aspect)

इसके अन्तर्गत कार्य दशाओं और औद्योगिक वातावरण का अध्ययन किया जाता है। जैसे कारखाने की बिल्डिंग किस तरह बनी है, उचित ताप है या नहीं, उचित रोशनी की व्यवस्था है या नहीं आदि भौतिक पक्ष ऐसे हैं जिनका कर्मचारी और कार्य पर प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक मनोविज्ञान इन्हीं तत्वों को सीमाबद्ध करता है जिससे उत्पादन बढ़े और कर्मचारी भी अपने आपको सुरक्षित महसूस करे। यदि यह भौतिक पक्ष मजबूत होंगे तो अरोचकता, दुर्घटना आदि जैसी परिस्थितियां सामने नहीं आएंगी।

13.4.2 सिद्धान्तों का अध्ययन (Study of principles)

इस क्षेत्र में वे सिद्धान्त और विधियां आती है जो मानवीय सम्बंध, सहानुभूति व्यवहार तथा इंसान इंसान है को क्रियाशील किया जा सके। उत्पादन बढ़ाने के लिए या उत्पादन की कार्य प्रणाली को संतुलित रखने के लिए उद्योगपति और कर्मचारी के लिए जो सिद्धान्त निरूपित किये गये, वे उन सिद्धान्तों को अपनाये इसके अतिरिक्त क्षेत्र के अध्ययन में व्यावसायिक चयन, मार्गदर्शन, प्रशिक्षण विधियां, कार्य विश्लेषण तथा साक्षात्कार जैसी अनेक समस्याएं आती हैं।

13.4.3 मनोवृत्तियों तथा प्रेरणाओं का अध्ययन (Study of attitude and motivations)

मालिकों तथा कर्मचारियों की मनोवृत्तियों तथा प्रेरणाओं का अध्ययन इस क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता है। विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों का विश्लेषण और उनके प्रभाव का प्रेरक मनोभावों के रूप में अध्ययन किया जाता है। मालिक और कर्मचारी के नैतिक स्तर को विशेष महत्व दिया जाता है। इसके लिए प्रेरणात्मक सहयोग की नितान्त आवश्यकता होती है।

13.4.4 मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन (Study of mental health)

औद्योगिक प्रणाली और उद्योगपति का उद्देश्य सिर्फ मुनाफा कमाना न हो बल्कि उसे कर्मचारी के मानसिक स्वास्थ्य को भी महत्व देना चाहिए। उद्योग में कर्मचारी का मानसिक पक्ष मजबूत होना चाहिए। मालिक को इस विचार से क्रियान्वित होना चाहिए कि मजदूर राष्ट्र की सम्पदा है। यदि इस भावना से उद्योगपति मजदूर के साथ व्यवहार करेगा तो उत्पादन में संतुलन बना रहेगा। औद्योगिक मनोविज्ञान इस प्रकार के तथ्यों का भी अध्ययन करता है।

13.4.5 मानवीय सम्बंधों का अध्ययन (Study of human relationship)

केवल भौतिक पक्ष की उन्नति होने से औद्योगिक विकास संभव नहीं हो सकता है। इसके लिए मानवीय संबंधों का ठीक रहना बहुत आवश्यक होता है। इस क्षेत्र में वे समस्याएं आती है जिनका संबंध कर्मचारी निरीक्षक, कर्मचारी प्रबंधक तथा कर्मचारी कर्मचारी से होता है। उद्योग शाला में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा उद्योग में मानवीय पक्ष जैसी समस्याओं का अध्ययन भी इस क्षेत्र की अध्ययन सीमा में ही आता है।

13.4.6 विज्ञापन एवं विक्रय (Advertising and Selling)

औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन का उत्पादन तथा खपत अन्तिम क्षेत्र है। वर्तमान की औद्योगिक होड़ में उपभोक्ता को अपने उत्पादन के प्रयोग हेतु चेतन बनाना तथा जीवन के लिए अपनी आवश्यकता समझना आधुनिक विक्रय की विशेषता है। इस प्रकार उत्पादित माल का विज्ञापन और खपत औद्योगिक मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

13.4.7 अन्य क्षेत्र (Other fields)

उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त कारखाने का निरीक्षण कर्मचारियों के कुसमायोजन, हड़ताल, घिराव, तालाबंदी, छंटनी के कारण समस्याएं तथा मनोबल संबंधी समस्याओं का अध्ययन भी औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में ही आता है।

13.5 औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्याएं (Problems of Industrial Psychology)

इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता है कि मालिक और श्रमिक के बीच अच्छे संबंध नहीं होते हैं। इस असंतुलन के बहुत से कारण हो सकते हैं। किन्तु जो मुख्य कारण हैं, वे आर्थिक हैं। मालिक हमेशा मुनाफे के लिए बड़े भाग का स्वामी रहता है तथा श्रमिकों को उसकी मेहनत का पूरा पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है । इसी कारण से मालिक व मजदूर के बीच की दूरी बढ़ जाती है। जिससे राष्ट्रीय विकास अवरुद्ध होता है। यह औद्योगिक क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या है। उत्पादन और कर्मचारी से सम्बंधित विषय सामग्री का अध्ययन चार स्तंभों पर आधारित होता है—उत्पादन, मालिक, कर्मचारी तथा सम्पूर्ण व्यवस्था (औद्योगिक वातावरण)। इसलिए औद्योगिक मनोविज्ञान की समस्या भी इन्हीं चार स्तंभों पर ही आधारित होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.5.1 कर्मचारी तथा कार्य (Worker & Work)

कार्य का संबंध उत्पादन व मशीन से होता है। अच्छे उत्पादन के लिए आवश्यक है कि मशीनों की उचित देखभाल तथा सुयोग्य कर्मचारी की नियुक्ति हो। उचित कर्मचारी के चयन हेतु आवश्यक है कि उसकी विशेष योग्यताओं का अध्ययन किया जाए जिससे कर्मचारी को अपना कार्य करने में सुविधा बनी रहे। इस दृष्टि से कार्य के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कर्मचारी विश्लेषण तथा कार्य विश्लेषण, कार्योत्पादन को प्रभावित करने वाली अन्य क्रियाओं का अध्ययन कर्मचारी विश्लेषण के अन्तर्गत किया जाता है। जैसे—प्रेरणा (Motivation), प्रलोभन (Incentive), अरोचकता (Mono-tomy), थकान (fatigue) तथा वैयक्तिक भिन्नताएं आदि।

13.5.2 कर्मचारी तथा निरीक्षक (Worker and Supervision)

यदि निरीक्षक का व्यवहार कर्मचारी को संतुष्ट करने वाला हो तो कर्मचारी अपने कार्य को निश्चित समय में पूरा कर देगा। निरीक्षक को चाहिए कि वह हमेशा कर्मचारी के भौतिक और मानवीय आवश्यकताओं का ध्यान रखे। उसे केवल मालिक के लाभ की ही बात नहीं सोचनी चाहिए और न ही पूर्णत: मालिक का ही बनकर रहना चाहिए। पद एवं अधिकार के कारण उसे कर्मचारियों की मांगों को नहीं ठुकराना चाहिए। यदि वह कर्मचारियों की मांगों को नजर अंदाज करता है तो उससे उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए अधिक उत्पादन और देश की प्रगति के लिए आवश्यक है कि कर्मचारी निरीक्षक के बीच सह-सम्बंध स्थापित रहें। इससे हड़ताल जैसी स्थिति से बचा जा सकता है।

13.5.3 कर्मचारी और प्रबंधक (Worker and Management)

मिल-मालिक और उसके द्वारा नियुक्त कर्मचारी, जिन पर कारखाने के संचालन की पूरी जिम्मेदारी होती है, वह वर्ग प्रबंधक वर्ग में आता है। यदि प्रबंधक संतोषपूर्ण ढंग से नहीं होता है तो कर्मचारी अपने कार्य में रूचि लेना कम कर देते हैं। जैसे- प्रबंधक कर्मचारी के स्वास्थ्य एवं चिकित्सा का प्रबंधन सही तरह से नहीं कर पाता है तो इससे कर्मचारियों में असंतोष की भावना बढ़ती है साथ ही वह आक्रामक व्यवहार भी करने लगता है। यदि कर्मचारी के कार्य के घंटे, मशीन की दशा, कारखाने का भौतिक वातावरण तथा अन्य आवश्यकताओं की सही तरह से व्यवस्था न हो तो कर्मचारी अपने कार्य के प्रति ईमानदार नहीं रह पाता है इसलिए आवश्यक है कि कर्मचारी के साथ पक्षपात नहीं करना चाहिए, उसे न तो मशीन ही समझना चाहिए और न ही हीन समझना चाहिए। कर्मचारी भी इंसान है, उसे भी जीने का अधिकार है और उसकी भी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी होनी चाहिए आदि इस तरह की बातों का प्रबंधकों को पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए तभी उत्पादन का स्तर बढ़ सकता है अन्यथा इससे उत्पादन बाधित होता है।

13.5.4 कर्मचारी और कर्मचारी (Worker and Worker)

प्रगति के इस युग में औद्योगीकरण चरमोत्कर्ष पर पहुंच रहा है लेकिन मालिक यह नहीं चाहता है कि मजदूर वर्ग एक रहे। मालिक को यह अच्छी तरह से ज्ञात होता है कि मजदूर की एकता मजदूर के शोषण को उखाड़ने में सहायक होती है और यही पूंजीवादी व्यवस्था को तहस-नहस कर देती है। इसीलिए सदैव मालिकों का यह प्रयास रहता है कि मजदूरों के बीच एकता न बनी रहे। वे आपस में लड़ते रहें। किसान मुकदमे बाजी में फंसा रहे और मध्यम वर्ग आराम की जिन्दगी भी जिये पर पूरी तरह से नहीं। इसी कारण से मजदूर एकता स्थापित नहीं हो पाती, संचालकों और कार्यकर्त्ताओं की पूरी शक्ति एकता स्थापित करने में लग जाती है। शोषण और दमन की नीति का सामना करने से पहले वे शक्तिहीन हो जाते हैं। तब मालिक मजदूर वर्ग के नेताओं को खरीदता है। इसके बाद मजदूर संगठन आपस में ही लड़ने लगते हैं और अंत में मालिक के शोषण में ज्यों के त्यों पुन: शिकार हो जाते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि कर्मचारियों के आपसी सम्बंध अच्छे नहीं रहेंगे, उनमें एकता नहीं बनी रहेगी तो देश के उद्योग धंधे कभी उन्नति नहीं कर सकते हैं, यह संभव हो सकता है कि मिल-मालिक और मंडियों के संचालक अमीर हो जायें। व्यक्तिगत पूंजी में वृद्धि हो सकती है लेकिन राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट होती चली जाएगी।

13.6 औद्योगिक मनोविज्ञान के लक्ष्य (Objectives of Industrial psychology)

मालिक और मजदूर की समस्याओं को और अधिक स्पष्ट करने के लिए विशिष्ट लक्ष्यों की अभिव्यक्ति की जा सकती है-

1. विभिन्न व्यवसायों की आवश्यता का अध्ययन करना।
2. कर्मचारियों के वैज्ञानिक चयन के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं एवं अन्य सुविकसित विधियों का प्रयोग करना।
3. मानवीय ऊर्जा (Human Energy) के उपयोग हेतु सर्वश्रेष्ठ विधियों की खोज करना।
4. मानवीय योग्यताओं का समुचित उपयोग तथा पूर्ण विकास के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को संगठित एवं क्रमबद्ध करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. कार्य की अनिवार्य दशाओं को निश्चित करना।
6. औद्योगिक संगठनों के आर्थिक, सामाजिक तथा मानवीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संगठनों की विशेषताओं का विश्लेषण करना।
7. कर्मचारी तथा प्रंबंध के बीच उचित सम्बंध बनाने हेतु प्रेरणात्मक शक्तियों का परीक्षण करना।

13.7 औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र (Fields of Industrial Psychology)

औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत कर्मचारियों से सबन्धित विकास का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् कर्मचारी वर्ग विभाग की पूरी जानकारी और वर्गीकरण में औद्योगिक महत्त्व से सम्बन्धित वर्णन औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र होता है। कार्य के अनुसार निम्नलिखित विभाग निश्चित किए गए हैं—

विभाग

कर्मचारी विभाग	**सलाहकार समिति**
1. नियुक्ति विभाग	1. विभाग का प्रबन्धन
2. प्रशिक्षण विभाग	2. उत्पादन मैनेजर
3. कर्मचारी सुरक्षा विभाग	3. फोरमैनों या सुपरवाइजरों का प्रतिनिधि
4. कर्मचारी हित विभाग	4. कर्मचारियों का प्रतिनिधि
5. शोध विभाग	
6. अन्य विभाग	

13.7.1 नियुक्ति विभाग

इसके अर्न्तगत निम्न कार्य आते हैं-

1. कार्यविश्लेषण और वेतन
2. कर्मचारियों का स्थानन्तरण और पदोन्नति
3. काम छोड़कर चले जाने वाले कर्मचारियों की समस्या के कारणो का विश्लेषण करना।
4. कर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण करना।

13.7.2 प्रशिक्षण विभाग

इस विभाग के निम्नलिखत कार्य है-

1. अधिकारियों, फोरमैनों, सुपरवाइजरों तथा कर्मचारियों का प्रशिक्षण।
2. जिन कर्मचारियों का स्थानान्तरण तथा पदोन्नति हुई हो, उनको प्रशिक्षण देना।
3. कर्मचारियों के ज्ञानार्जन तथा मानसिक विकास हेतु पत्र-पत्रिकाओं का प्रबंध करना।
4. शिक्षण समस्याओं का प्रबंध करना।
5. समाचार पत्र और सूचनाएं देने का प्रबंध करना।

13.7.3 कर्मचारी सुरक्षा विभाग

कर्मचारी की बहुपक्षीय समस्या से संबन्धित कार्य निम्न है-

1. कर्मचारियों के स्वास्थ्य परीक्षण और चिकित्सा का समुचित प्रबंध करना।
2. कर्मचारियों के लिए नि:शुल्क चिकित्सा व्यवस्था करना।
3. चिकित्सक की सलाह के अनुसार कर्मचारी को अवकाश देना।
4. दुर्घटना के शिकार कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति देना।
5. कर्मचारियों को साप्ताहिक अवकाश देना।
6. कर्मचारियों की अनुपस्थिति के कारणों का विश्लेषण करना।
7. कर्मचारियों के आक्रोश और लड़ाई-झगड़ों का निपटारा करना।

13.7.4 कर्मचारी हित विभाग

कर्मचारियों के हित संबंधी कार्य निम्न प्रकार हैं-

1. कर्मचारियों के लिए मनोरंजन के साधनों को उपलब्ध कराना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. कर्मचारियों के निवास की समुचित व्यवस्था करना।

3. विश्राम हेतु कारखाने में विश्रामालय की व्यवस्था करना।

4. मध्यान्तर के समय कर्मचारियों के लिए भोजन करने के स्थान की व्यवस्था करना।

5. कर्मचारियों को बीमा की सुविधा देना।

6. आवश्यकता के समय कर्मचारियों को उपकरण उपलब्ध कराना।

7. सभी प्रकार की कानूनी सलाह का प्रबंध करना।

13.7.5 कर्मचारी स्वास्थ्य विभाग

इस विभाग के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो कर्मचारियों के स्वास्थ्य से संबंधित होते है। जिससे उनके स्वास्थ्य की अच्छी तरह से देखभाल हो सके। सभी प्रकार की चिकित्सा सुविधाएँ नि:शुल्क हों तथा अच्छे अस्पताल तथा उपकरण तथा यंत्रों की अच्छी व्यवस्था हो, कर्मचारियों के पक्ष पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि कर्मचारी मानसिक स्तर पर असन्तुष्ट तथा असमायोजित रहेगा तो उसका मन कार्य में नहीं लगेगा। इससे वह दुर्घटनाओं का शिकार भी हो सकता है, मशीनों की क्षति हो सकती है तथा उत्पादन में गिरावट आ सकती है। इसलिए यदि स्वास्थ्य संबंधी उचित व्यवस्था हो तो कर्मचारी भी सन्तुष्ट रहेगा और उत्पादन भी बढ़ेगा।

13.7.6 शोध विभाग

इस विभाग के अन्तर्गत निम्न कार्य हैं-

1. कर्मचारियों को कार्यकाल मे होने वाली थकान एवं एकरसता का अध्ययन करना।

2. कर्मचारियों के रहन-सहन तथा अन्य स्तरों पर होने वाले कार्य का अध्ययन करना।

3. कर्मचारियों के कार्य-विश्लेषण का अध्ययन करना।

4. कार्य विशिष्टीकरण से सम्बंधित अध्ययन करना।

5. समय तथा गति का अध्ययन करना।

13.7.7 अन्य विभाग (Other departmentrs)

इस विभाग के अन्तर्गत वे कार्य आते है, जैसे कर्मचारियों की शिकायतें सुनना, उनकी समस्या का समाधान करना, उनकी बर्खास्तगी से सम्बन्धित मामलों का अध्ययन करना।

13.8 औद्योगिक मनोविज्ञान में मानवीय पक्ष (Human view point in Industrial psychology)

सरकार, मिल-मालिकों तथा प्रबंधकों का ध्यान सदैव उत्पादन में वृद्धि करना तथा व्यक्तिगत पूंजी को बढ़ाना है। वे मजदूर को इंसान नहीं, मशीन समझते हैं। मजदूर की भी अपनी आवश्यकताएं होती हैं, अपना व्यक्तित्व होता है। इसलिए वह भी अच्छा जीवन जीना चाहता है। लेकिन उद्योगपति उसकी महत्त्वाकांक्षा का सम्मान नहीं करते है। उन्हें हीन समझा जाता है, मजदूरों की रोजी-रोटी और हक को नकार दिया जाता है। यही अमानवीय दृष्टिकोण है। मजदूरों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने वाला उद्योगपति देश का सबसे बड़ा अपराधी समझा जाता है। उद्योगपतियों के मजदूरों के प्रति इस प्रकार के दुर्व्यवहार से मजदूर असन्तुष्ट हो जाता है, इससे उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए आवश्यक है कि उद्योग में मानवीय पक्ष को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए।

13.9 औद्योगिक मनोविज्ञान की उपयोगिता (Utility of Industrial psychology)

जैसा कि 20वीं शदी के प्रारंभ में उद्योगपति और मजदूरों मे संबंध अच्छे नहीं थे। इसके अलावा भी कई अन्य कारण थे जो औद्योगिक व्यवस्था में बाधक बनते थे। लेकिन मनोविज्ञान के प्रयोग से उद्योगों की स्थिति में परिर्वतन आया जिससे इस क्षेत्र मे अच्छे परिणाम आए। बहुत से सुधार उद्योगों में हुए। पहले उद्योगपति कर्मचारियों की इच्छाओं और आवश्यकताओं को महत्त्व नहीं देते थे। वर्तमान में ऐसा नहीं है। कर्मचारियों के जीवन को सुखमय बनाने के लिए कई सुविधाएँ उन्हें प्रदान की गई है। भले ही यह अल्पमात्रा में हों लेकिन पहले से बेहतर है।

एक समय था जब कर्मचारी को कोई भी काम दे दिया जाता था, भले ही उसकी योग्यता उसके कार्य को करने की हो या न हो। परन्तु वर्तमान में व्यावसायिक चयन के द्वारा व्यक्ति को काम दिया जाता है। व्यक्ति को मार्गोपदेशन की विधियों द्वारा कार्य हेतु योग्य कर्मचारी का चयन किया जाता है इसी तरह से कार्य विश्लेषण की विधि द्वारा कर्मचारी के लिए उचित कार्य की व्यवस्था की जाती है। प्रारंभ में थकान, अरोचकता आदि अवस्थाओं में भी कर्मचारी की ओर ध्यान नहीं दिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाता है। परन्तु वर्तमान में विविध प्रयोगों द्वारा इस स्थिति मे सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। पहले दुर्घटना को दैवी प्रकोप माना जाता था, लेकिन वर्तमान मे इसे अव्यवस्था में हुई त्रुटियों का परिणाम माना जाता है। दिन-प्रतिदिन ऐसे प्रयास किए जा रहे हैं जिससे औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं का निवारण किया जा सके। नई-नई विधियों की खोज जारी है। पूर्व की तरह वर्तमान में कर्मचारी की नियुक्ति बिना योग्यता एवं अनुभूति से नहीं होती है। प्रत्येक के लिए पूर्व अनुभव तथा प्रशिक्षण एक निश्चित समय तक लेना आवश्यक हो जाता है। विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों का प्रयोग आवश्यक हो गया है जिससे यह ज्ञात किया जा सके कि कर्मचारी की योग्यताएं, क्षमताएं तथा शीलगुण किस प्रकार के हैं। अर्थात् इनकी स्थिति कर्मचारी में किस प्रकार से हैं। इसका आभास हो जाता है। अन्त में यह कहा ज सकता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान व्यापार, उद्योग, कर्मचारी तथा उद्योगपति से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण करता है। वर्तमान में औद्योगिक जगत् में मानवीय सम्बन्धों पर विशेष जोर दिया जा रहा है। सभ्य व प्रगतिशील देश यह मानने लगे हैं कि मजदूर के कल्याण में ही उद्योगपति का कल्याण निहित होता है। जहां समाजवादी व्यवस्था है, वहां राष्ट्रीयकरण के द्वारा इस प्रकार की समस्या को समाप्त कर दिया गया है। इन सभी परिणामों की उपयोगिता का महत्त्व तथा श्रेय औद्योगिक मनोविज्ञान को है। औद्योगिक दृष्टि से बीसवीं सदी में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए वे हैं-यांत्रिक परिवर्तन, जैविक परिवर्तन तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन। वर्तमान में मजदूर की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। नौकरी की सुरक्षा, पेंशन, उचित वेतन, लाभांश तथा जीवन बीमा सम्बन्धित अनेक प्रबंध किए हैं। उद्योगपतियों को कानून तथा मानवीय दृष्टिकोण के आधार पर मजदूरों के प्रति आत्मीयता का व्यवहार करने के लिए बाध्य किया जाता है। यह सब औद्योगिक मनोविज्ञान से संभव हुआ है। इससे मजदूर के सामाजिक स्तर में सुधार आया है। उसे राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण इकाई होने का श्रेय मिला है जिससे उत्पादन में भी कई गुना वृद्धि हुई है।

13.10 औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता

विद्यार्थी चाहे वह किसी भी विषय में पढ़ा हो, किसी भी क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त की हो, आखिर उसे किसी न किसी उद्योग की शाखा में ही काम मिलता है। जब वह अपने कार्यक्षेत्र में प्रवेश करता है तभी से वह मानवीय समस्याओं से पूर्ण वातावरण में प्रवेश करता है। इस नए काम में कम्पनी व व्यक्ति दोनों के लिए आगमन व प्रशिक्षण मिलकर एक संबद्ध मानवीय समस्या का निर्माण करते हैं। उद्योग में प्रवेश से पूर्व यह ज्ञात करना आवश्यक होता है कि विद्यार्थी किस क्षेत्र में अपना पदार्पण कर रहा है। वर्तमान में व्यवसाय योजना का महत्त्व बढ़ा है। सर्वेक्षणों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि विद्यार्थी अपने कार्य क्षेत्र के बारे में जानना चाहता है अर्थात् वह यह जानना चाहता है कि वह किस कार्य क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। यहीं पर औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन की बात सामने आती है। कार्य की व्यवस्था का मनोवैज्ञानिक वातावरण जानने के लिए आवश्यक है कि उस वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों का वैज्ञानिक व नैदानिक अध्ययन ही सर्वोत्तम उपाय है। व्यापार में नेतृत्व की मांग बढ़ती जा रही है लेकिन व्यापार संगठन में ज्ञान के बिना व्यक्ति ऊंचा पद प्राप्त नहीं कर सकता। प्रबंध और निरीक्षण का मानवीय पक्ष मनोविज्ञान का विषय है। यह मनुष्य के अध्ययन के एक भाग के रूप में काम करता है। तकनीकी विद्यार्थियों, इंजीनियर आदि के लिए भी मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। अध्ययनों से पता चलता है कि इन विद्यार्थियों में कई विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो अपना पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाते हैं, इसलिए वे अपना कार्य क्षेत्र भी बदल देते हैं। फिर भी वे उद्योग में मानवीय पक्ष से ही संबद्ध रखना चाहते हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति उद्योग में प्रत्यक्षत: कोई काम करे अथवा नहीं लेकिन फिर भी उपभोक्ता और नागरिकों की हैसियत से उसके जीवन का प्रत्येक पक्ष औद्योगिक परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होता है। श्रमिकों तथा मालिकों के मध्य संघर्षों का भी प्रभाव व्यक्ति विशेष पर पड़ता है। तकनीकी प्रगति व वस्तु के उत्पादन के प्रभाव पर भी व्यक्ति का संबंध रहता है। क्योंकि इनके द्वारा ही व्यक्ति का भौतिक पक्ष जुड़ा होता है। औद्योगिक जीवन के समस्त पक्षों का प्रभाव मानव व्यवहार पर पड़ता है। इसलिए औद्योगिक मनोविज्ञान के महत्व से व्यक्ति को भी अवगत होना चाहिए।

13.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. औद्योगिक मनोविज्ञान का परिचय देते हुए इसकी विषय सामग्री पर प्रकाश डालिये।
2. औद्योगिक मनोविज्ञान की क्या समस्याएं हैं?
3. औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र की चर्चा कीजिए।
4. औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता क्यों है?

13.12 संदर्भ ग्रन्थ - 1. औद्योगिक मनोविज्ञान : डॉ. आर. के. ओझा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 14 कार्मिक परामर्श और दिग्दर्शन

संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 परामर्श की परिभाषाएं
14.3 समस्याएं एवं परामर्श
14.4 परामर्श प्रक्रिया
  14.4.1 व्यवहारिक सामंजस्य
  14.4.2 संप्रेषण या संचार
  14.4.3 परामर्शदाता प्रशिक्षित हो
  14.4.4 कर्मचारी विचारों को न छुपाएं
  14.4.5 साक्षत्कार संरचित हो
14.5 परामर्श प्रक्रिया के चरण
14.6 परामर्श दाता की भूमिका
  14.6.1 सूचना संकलित करना
  14.6.2 कर्मचारी के व्यक्तित्व की जानकारी लेना
  14.6.3 समस्याओं का कारण तथा निदान ज्ञात करना
  14.6.4 कर्मचारी के लिए भावी योजनाएं बनाना
  14.6.5 समायोजन की जानकारी देना
  14.6.6 आर्थिक सहायता के स्रोत बताना
  14.6.7 स्वास्थ्य की जानकारी देना
  14.6.8 निश्चित क्षेत्र की जानकारी देना
  14.6.9 अपने विचार न थोपना
  14.6.10 कर्मचारी को नए मार्गों की जानकारी देना
  14.6.11 अन्तिम निर्णय कर्मचारी पर छोड़ना
  14.6.12 परामर्श सम्बन्धी कार्य करना
14.7 परामर्श दाता के गुण
  14.7.1 परामर्श दाता की व्यक्तिगत योग्यताएं
  14.7.2 परामर्श दाता का अनुभव
  14.7.3 प्रशिक्षण
14.8 परामर्श की विधियां
  14.8.1 कर्मचारी की बातें ध्यान से सुनना
  14.8.2 स्वीकृति
  14.8.3 पुनरावृत्ति
  14.8.4 मान्यता देना
  14.8.5 स्पष्टीकरण
  14.8.6 प्रोत्साहन
  14.8.7 विश्लेषण एवं विवेचना
  14.8.8 विश्वास दिलाना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.9 परामर्श सेवाओं के प्रकार
14.9.1 निदेशात्मक परामर्श
14.9.2 अनिदेशात्मक परामर्श
14.10 समस्याओं के विभिन्न पक्ष
14.11 मार्गोपदेशन
14.11.1 मार्गोपदेशन की आवश्यकता
14.12 मार्गोपदेशन के प्रकार
14.12.1 व्यक्तिगत मार्गोपदेशन
14.12.2 शैक्षिक मार्गोपदेशन
14.12.3 व्यवसायिक मार्गोपदेशन
14.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.0 प्रस्तावना

उद्योग के क्षेत्र में कर्मचारियों का व्यवहार औद्योगिक प्रगति में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कर्मचारी का व्यवहार भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न हो सकता है। उद्योग का वातावरण, कार्य दशाएं और कर्मचारी की व्यक्तिगत समस्याएं भी कर्मचारी को प्रभावित करती हैं। ऐसी स्थितियों में कर्मचारी का व्यवहार परिवर्तित हो सकता है और उसका प्रभाव औद्योगिक उत्पादन तथा उद्योग के अन्य कई क्षेत्रों में पड़ सकता है। अत: कर्मचारी और औद्योगिक उत्पादन से संबंधित कारकों में समन्वय बनाए रखने के लिए समय-समय पर कर्मचारी को परामर्श दिया जाता है। कर्मचारी परामर्श में व्यक्ति और उद्योग से संबंधित सूचनाओं का सही उपयोग करना होता है।

14.1 उद्देश्य

1. परामर्श की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. परामर्श प्रक्रिया को जान सकेंगे।
3. परामर्श दाता की भूमिका से परीचित हो सकेंगे।
4. परामर्श सेवाओं के प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।
5. मार्गोपदेशन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
6. मार्गोपदेशन के प्रकारों को पढ़ सकेंगे।

14.2 परामर्श की परिभाषाएं (Definitions of counselling)

कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) के अनुसार "परामर्श व्यक्ति से सीधा संबंध बनाने की एक श्रृंखला है जिसका उद्देश्य व्यक्ति को उसकी अभिवृत्तियों और व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए सहायता दिया जाना है।"

रेन (Wrenn) के अनुसार "परामर्श प्रक्रिया दो व्यक्तियों के बीच में शक्तिशाली संबंध हैं जिसमें एक अनुभव युक्त व्यवहार कुशल होता है जो परामर्श देता है और दूसरा जो परामर्श लेता है जिसे अनुभव कम मात्रा में होता है और अधिक बुद्धिमान नहीं होता है।"

विले एवं एण्ड्रयू (Willey & Andrew) के विचार में "परामर्श आपस में सीखने की प्रक्रिया है। इनमें दो व्यक्ति होते हैं-परामर्श लेने वाला तथा परामर्श देने वाला। परामर्श देने वाला प्रशिक्षित होता है तथा परामर्श लेने वाले को उसके लक्ष्य तक पहुंचने में मदद करता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्न तथ्य सामने आते हैं-

1. परामर्श प्रक्रिया दो व्यक्तियों के बीच होती है।
2. परामर्श प्रक्रिया का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की सहायता करना होता है जिससे परामर्श लेने वाला व्यक्ति स्वयं समस्या समाधान कर सके।
3. परामर्श का कार्य केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि कर्मचारी परामर्श प्रक्रिया में उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों को सलाह-मशविरा दिया जाता है जिसके द्वारा वे अपने कार्य के प्रति सही जानकारी प्राप्त करते हैं। इससे उन्हें उचित-अनुचित का ज्ञान होता है। उन्नति किस प्रकार से की जा सकती है, सुखी जीवन कैसे जीया जा सकता है, समस्याओं का समाधान कैसे खोजा जा सकता है आदि बातों के लिए दूरदर्शिता उन्हें परामर्श के द्वारा ही प्राप्त होती है।

14.3 समस्याएं एवं परामर्श (Problems and Counselling)

उद्योग में कार्यरत कर्मचारी की अपनी समस्याएं होती हैं। चाहे वह बड़ा हो या छोटा यदि इन समस्याओं का समाधान किया जा सके तो कर्मचारी भी अपने कार्यक्षेत्र में सफल हो सकता है। परामर्श एक ऐसी प्रक्रिया है जो इस प्रकार की समस्याओं का समाधान कर सकती है। कर्मचारियों की समस्याएं उनके साथ कार्यरत अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधों एवं अन्य दशाओं पर भी निर्भर करती है। जैसे–

1. कर्मचारियों का आपसी संबंध
2. कर्मचारियों का अधिकारी के साथ संबंध
3. अपने कार्य के साथ संबंध
4. यूनियन के साथ संबंध
5. कार्यदशाएं
6. वेतन, पदोन्नति आदि।

समस्याएं वहां उत्पन्न होती हैं जहां संबंधों में मधुरता नहीं होती है। यदि कर्मचारी की समस्या खराब संबंधों के कारण होती है तो अपना संतुलन खो बैठता है जिसका सीधा असर उत्पादन पर पड़ता है। इसलिए कर्मचारी की समस्याओं को परामर्श के माध्यम से भी दूर किया जा सकता है। परामर्शदाता और कर्मचारी का आपसी विचार-विमर्श समस्याओं के द्वारा कम करने में मदद करता है।

14.4 परामर्श प्रक्रिया (Processes of coun-selling)

कोटल (Cottle) नामक विद्वान के परामर्श के लिए पांच तत्त्वों का वर्णन किया है। उनके अनुसार इन तत्त्वों के बिना परामर्श सेवाएं क्रियान्वित नहीं हो सकती है। वे पांच तत्त्व निम्न हैं-

14.4.1 व्यवहारिक सामंजस्य

व्यवहारिक सामंजस्य के बिना परामर्श प्रक्रिया संभव नहीं हो सकती है। परामर्शदाता और परामर्श ग्रहण करने वाले व्यक्ति के बीच व्यवहारिक सामंजस्य होना चाहिए। दोनों में एक दूसरे के प्रति आदर का भाव हो, सम्मान और सहानुभूति की भावना हो। इससे परामर्श ग्रहण करने वाला अपनी समस्याओं को सही तरह से रख सकेगा। साथ ही परामर्श दाता भी उसकी समस्याओं का समाधान कर सकेगा।

14.4.2 सम्प्रेषण या संचार (Communication)

सम्प्रेषण परामर्श प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए आवश्यक होता है। यह सम्प्रेषण दोनों व्यक्तियों के बीच होता है। प्रथम चरण में सम्प्रेषण वार्तालाप द्वारा स्थापित किया जाता है। वार्तालाप का उपयुक्त साधन है—साक्षात्कार लेकिन सिर्फ साक्षात्कार तक ही संप्रेषण सीमित नहीं होता है। आवश्यकता इस बात की होती है कि परामर्शदाता और परामर्श लेने वाला कर्मचारी एक दूसरे की बातों को अच्छी तरह से समझ सके। यदि आपसी बातचीत सही ढंग से होगी तो समस्या का समाधान भी सही ढंग से हो सकेगा इसलिए दोनों के बीच का संचार अर्थात् सम्प्रेषण स्पष्ट होना चाहिए। अस्पष्टता परामर्श प्रक्रिया में बाधक बनती है। इसलिए स्पष्ट व सही शब्दों का प्रयोग होना चाहिए।

14.4.3 परामर्शदाता प्रशिक्षित हो

परामर्श प्रक्रिया तब सफल हो सकती है, जब परामर्शदाता प्रशिक्षित एवं अनुभवी हो इसके लिए उसे व्यवहारकुशल होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व उत्तम होना चाहिए। इससे सामने वाला व्यक्ति उससे प्रभावित होता है। उसके इन गुणों को देखते हुए कर्मचारी अपनी बातों को नि:संकोच पूर्वक कह सकता है और एक सही समाधान पा सकता है।

14.4.4 कर्मचारी विचारों को न छुपाएं

परामर्श प्रक्रिया के समय कर्मचारी के मन में जो विचार उठते हैं, उसे उन विचारों को छुपाना नहीं चाहिए। उन्हें परामर्शदाता को बताना चाहिए। इससे परामर्श लेने वाला व्यक्ति अपनी शंकाओं का सही समाधान पा सकता हैं। परामर्शदाता को भी सारी समस्याएं ज्ञात हो सकती हैं और वह सही तरह से कर्मचारियों का मार्गदर्शन कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.4.5 साक्षात्कार संरचित हो

साक्षात्कार से पूर्व कर्मचारी यह निश्चित कर ले कि उसे क्या कहना है, क्या पूछना है। इससे कोई आवश्यक बात छूटेगी भी नहीं तथा साथ में समय की बचत भी होती है।

इस प्रकार परामर्श प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएं निहित होती हैं। इन्हीं के आधार पर परामर्श सेवा के उद्देश्यों को पूर्ण किया जा सकता है। यदि ये प्रक्रियाएं न हों तो परामर्श सेवा के परिणाम निरर्थक सिद्ध हो सकते हैं। परामर्श प्रक्रिया द्वारा निम्न निष्कर्ष ज्ञात होते हैं—

1. परामर्श प्रक्रिया में दो व्यक्ति होते हैं—परामर्शदाता व परामर्शग्रहण करने वाला
2. परामर्श के स्वरूप का निर्धारण कर्मचारी की आवश्यकता पर निर्भर करता है।
3. परामर्श का मुख्य उद्देश्य होता है—कर्मचारी को सही सलाह देना, समस्या सुलझाना और इस योग्य बनाना कि कर्मचारी अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं भी कर सके।

14.5 परामर्श प्रक्रिया के चरण (Steps of counselling)

जैसा ज्ञात है कि परामर्श प्रक्रिया में दो व्यक्तियों के संबंधों का आदान-प्रदान होता है। अर्थात् परामर्शदाता एवं परामर्श लेने वाले कर्मचारी के बीच क्रिया-प्रतिक्रियाओं का संचालन होता है। परामर्श प्रक्रिया का उद्देश्य यह होता है कि कर्मचारी की समस्याओं का सही तरह से समाधान हो सके। उसे सुख एवं संतोष की अनुभूति हो सके। कर्मचारी को अपनी समस्या का स्वतंत्र रूप से वर्णन करने का पूरा अवसर मिलना चाहिए। विचारों के आदान-प्रदान से कर्मचारी की अंतर्दृष्टि विकसित होती है। परामर्श के प्रभाव से वह अपने भविष्य के प्रति सजग होने लगता है। वह अपनी योजना बनाने तथा उनके क्रियान्वयन के लिए परिश्रम में विश्वास करने लगता है। संक्षेप में परामर्श प्रक्रिया के निम्न चरण हैं-

1. परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता व कर्मचारी के बीच क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं होती हैं। इसमें परामर्शदाता कर्मचारी की सहायता करता है।
2. परामर्श प्रक्रिया में कर्मचारी अपने विचारों, अपने भावों को स्वतंत्र रूप से परामर्शदाता के समक्ष रखता है।
3. परामर्श प्रक्रिया में कर्मचारी अपनी अंतर्दृष्टि विकसित करता है।
4. परामर्श प्रक्रिया के उपरान्त कर्मचारी अपने भविष्य के लिए जागरूक हो जाता है। वह अपनी सफलता के लिए योजनाएं बनाना आरंभ कर देता है।
5. परामर्श प्रक्रिया संपन्न होने के बाद कर्मचारी तथा परामर्शदाता के बीच संबंध विच्छेद हो जाता है।

14.6 परामर्श दाता की भूमिका या कार्य (Role of the Counsellor)

परामर्श दाता के लिए परामर्श प्रक्रिया में बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। उपयुक्त कर्मचारी के लिए उपयुक्त कार्य हेतु परामर्श देना उद्योग की सफलता के लिए आवश्यक माना जाता है। इसलिए परामर्श दाता की कार्यप्रणाली सुनियोजित एवं प्रभावकारी हो। इससे परामर्श प्रक्रिया में आसानी रहती है तथा कर्मचारी भी इससे लाभान्वित होता है। परामर्शदाता के निम्न कार्य होते हैं-

14.6.1 सूचना संकलित करना

परामर्शदाता को चाहिए कि वह सर्वप्रथम कर्मचारी से संबंधित सूचनाएं संकलित करे। इससे परामर्श प्रक्रिया में कठिनाई नहीं आएगी साथ ही कर्मचारी को सही परामर्श दिया जा सकता है।

14.6.2 कर्मचारी के व्यक्तित्व की जानकारी लेना

प्राप्त सूचनाओं के आधार पर परामर्शदाता कर्मचारी के भीतर निहित बुद्धि का स्तर, समायोजन का स्तर आदि योग्यताओं के बारे में निष्कर्ष निकालता है। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कर्मचारी से संबंधित सभी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने पर परामर्शदाता को कर्मचारी के बारे में सही जानकारी प्राप्त हो जाती है। इससे पता लगता है कि कर्मचारी की रूचियां, अभिरूचियां आदि क्या हैं?

14.6.3 समस्याओं का कारण तथा निदान ज्ञात करना

परामर्श दाता कर्मचारी की समस्याओं के बारे में जानकारी ज्ञात करता है कि उसकी इन समस्याओं का कारण क्या है और किस तरह से इनका निदान किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.6.4 कर्मचारी के लिए भावी योजनाएं बनाना

परामर्शदाता कर्मचारी की भावी योजना बनाने में सहायता प्रदान करता है। वह उसकी सफलता तथा असफलताओं की पूर्व में ही जानकारी दे सकता है तथा पूर्वानुमान के द्वारा कर्मचारी को परामर्श देता है। इससे कर्मचारी को एक दिशा मिल जाती है।

14.6.5 समायोजन की जानकारी देना

परामर्शदाता कर्मचारी को समायोजन संबंधी जानकारी देता है जिससे वह उद्योग में अपने आप को अच्छी तरह से समायोजित करना सीख जाए। यदि कर्मचारी अच्छी तरह से समायोजित हो जाएगा तो कार्य में उसे कठिनाई नहीं आएगी।

14.6.6 आर्थिक सहायता के स्रोत बताना

परामर्शदाता कर्मचारी को आर्थिक सहायता प्रदान करने वाले स्रोतों की जानकारी देता है जिससे कर्मचारी उन स्रोतों का लाभ उठाकर अपने जीवन को एक नई दिशा दे सकता है। वह कोई नया उद्योग स्थापित कर सकता है।

14.6.7 स्वास्थ्य की जानकरी देना

परामर्शदाता यदि कर्मचारी को स्वास्थ्य संबंधी जानकरी देता है तो इससे कर्मचारी अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होगा। कर्मचारी किस तरह अपना शारीरिक व मानसिक स्तर सही रख सकता है, इनकी जानकारी उन्हें प्राप्त होती है। साथ में उन्हें यह भी जानकारी दी जाती है कि ये स्वास्थ्य सेवाएं कहां से प्राप्त की जा सकती है? जिससे कि कर्मचारी बीमारी की स्थिति में अपना सही उपचार करवा सके।

14.6.8 निश्चित क्षेत्र की जानकरी देना

परामर्शदाता को परामर्श के समय अपने क्षेत्र का सही ध्यान होना चाहिए। यदि वह क्षेत्र सीमा से बाहर जाता है तो समस्या समाधान सही तरह से नहीं हो पाएगा।

14.6.9 अपने विचार न थोपना

परामर्शदाता को किसी भी कर्मचारी के ऊपर अपने विचारों को अनावश्यक नहीं थोपना चाहिए। इससे कर्मचारी उलझ सकता है। कर्मचारी की समस्याओं का समाधान वह कर पा रहा है या नहीं, इस बात का उसे पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

14.6.10 कर्मचारी को नए मार्गों की जानकारी देना

परामर्शदाता को यह ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारी को नए-नए रास्तों की जानकारी दी गई है या नहीं। कर्मचारी को यह अनुभूति न हो कि व्यवसाय संबंधी जानकारी उसे पूरी नहीं मिल रही है अन्यथा वह अपने भविष्य के प्रति निराश हो जाएगा। परामर्शदाता यथासंभव उसका मार्ग निर्देशन करता है तो वह निराशा से बच जाता है।

14.6.11 अंतिम निर्णय कर्मचारी पर छोड़ना

परामर्शदाता जब कर्मचारी के सामने सभी समाधान या सुझाव रखता है तो उसे यह भी समझा देना चाहिए कि अंतिम निर्णय कर्मचारी स्वयं ले। इससे कर्मचारी के ऊपर एक बोझ की स्थिति भी नहीं आएगी और वह मनचाहा निर्णय प्रस्तुत कर सकेगा।

14.6.12 परामर्श संबंधी कार्य करना

परामर्शदाता को परामर्श के लिए साक्षात्कार, सामाजिक संबंध स्थापित करना तथा व्यवसाय से संबंधित सभी सूचनाओं को एकत्रित करना चाहिए। जिससे कि परामर्श क्रिया आसानी से संपन्न हो सके।

इस प्रकार यदि परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता उपरोक्त बातों का सही तरह से ध्यान रखे तो कर्मचारी इससे लाभान्वित होगा। इससे उद्योग में भी सफलता मिलेगी, इस तरह परमर्शदाता की परामर्श प्रक्रिया में विशेष भूमिका रहती है।

14.7 परामर्शदाता के गुण (Qualities of Counsellor)

परामर्शदाता को परामर्श प्रक्रिया के अनुसार ही कार्य करने पड़ते हैं। परामर्शदाता कर्मचारी को उसके व्यवसाय, उसकी आवश्यकता, उद्योग संबंधी दशाओं, सामाजिक पर्यावरण आदि के अनुरूप ही परामर्श देना होता है। इसलिए परामर्शदाता के गुणों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. परामर्शदाता की व्यक्तिगत योग्यताएं
2. परामर्शदाता का अनुभव
3. प्रशिक्षण

14.7.1 परामर्शदाता की व्यक्तिगत योग्यताएं (Personal Abilities of Cousellor)

परामर्शदाता के गुणों के विषय में विद्वान अपने भिन्न-भिन्न विचार देते हैं। एन्ड्रू तथा विली (Andrew & Willey) ने परामर्शदाता के निम्न गुण बताए हैं-

14.7.1.1 व्यवहार कुशलता– परामर्श दाता को व्यवहार कुशल होना चाहिए, परामर्श सेवाओं के लिए उसमें रूचि होनी चाहिए, उसे कर्मचारियों की समस्याओं के प्रति जागरूक होना चाहिए। कर्मचारियों की आवश्यकताओं को सर्वोपरि समझना चाहिए, उसमें सामान्य ज्ञान के द्वारा सुझाव देने की क्षमता होनी चाहिए।

14.7.1.2 आत्मनिर्भरता के गुण– परामर्शदाता में आत्मनिर्भरता के गुण होने चाहिए, उसमें सामान्य व्यक्ति से अधिक निर्णय क्षमता होनी चाहिए, उसमें नेतृत्व के सभी गुण होने चाहिए तथा हर प्रकार का नेतृत्व करने की उसमें योग्यता होनी चाहिए।

14.7.1.3 प्रभावशाली व्यक्तित्व– परामर्शदाता के व्क्तित्व का प्रभाव कर्मचारियों पर पड़ता है। व्यक्तित्व में निहित शीलगुण कर्मचारी को सुझाव ग्रहण कराने के लिए विवश करते है। व्यक्तित्व के द्वारा ही अन्य गुणों की जानकारी भी प्राप्त होती है। उसके व्यक्तित्व से ही उसकी समग्रता का परिचय होता है। इसलिए परामर्शदाता को अपना व्यक्तित्व प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

14.7.1.4 मैत्रीपूर्ण व्यवहार– परामर्शदाता को मैत्रीपूर्ण होना चाहिए। सबके साथ समान व्यवहार करना उसका नैतिक दायित्व होता है। किसी भी कमजोर पक्ष से उसे समझौता नहीं करना चाहिए। यथार्थ बातों में विश्वास कर अनावश्यक वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

14.7.1.5 आत्मविश्वास– आत्मविश्वास में ही जीवन की सफलता निहित होती है। परामर्श देते समय परामर्शदाता का यह उद्देश्य होना चाहिए कि कर्मचारी में आत्मविश्वास पैदा हो। इसके लिए आवश्यक होता है कि यदि परामर्शदाता स्वयं आत्मविश्वासी हो तो कर्मचारियों में भी आत्मविश्वास उत्पन्न कराएगा।

14.7.2 अनुभव (Experience)

सुझाव, सलाह, मार्गोपदेशन, परामर्श, सेवाओं आदि में अनुभव की आवश्यकता होती है। यदि परामर्शदाता को पर्याप्त अनुभव होता है तो वह महत्त्वपूर्ण समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकता है। हर प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, आदि की जानकारी बिना अनुभव के संभव नहीं होती है। इसलिए परामर्शदाता और परामर्श सेवाओं के मूलभूत आधारों एवं तत्त्वों की विस्तृत जानकारी देनी चाहिए।

14.7.3 प्रशिक्षण (Training)

औद्योगीकरण के आधुनिक सिद्धान्तों से यह सिद्ध हो चुका है कि नया-नया व्यक्ति किसी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होगा। कार्य देने से पूर्व उसे कार्य की जानकारी देनी चाहिए फिर अनुभव करना चाहिए। उसके बाद उसे नियुक्त करना चाहिए। कार्य की संपूर्ण जानकारी ही प्रशिक्षण है। कर्मचारी से ज्यादा प्रशिक्षण की आवश्यकता परामर्शदाता को होती है। प्रशिक्षित परामर्शदाता अच्छी तरह से परामर्श प्रक्रिया में सफल हो सकता है। प्रशिक्षण के द्वारा ही परामर्शदाता मानव व्यवहार को समझ सकता है। सीखने संबंधी, समायोजन संबंधी तथा नियम परिस्थितियों में समस्या समाधान संबंधी ज्ञान का विकास होता है। प्रशिक्षण द्वारा ही निर्देशन की विधियों का ज्ञान होता है। परामर्शदाता विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का ज्ञान रखता है। कर्मचारी पर उपकरणों के प्रयोग की सही जानकारी रखता है। परीक्षणों से प्राप्त निष्कर्षों के संपादन की जानकारी भी वह रखता है।

14.8 परामर्श की विधियां (Techniques of counselling)

परामर्श देने की अनेक विधियां होती हैं। किस विधि का कब और कैसे कर्मचारी पर प्रयोग किया जाए, यह कर्मचारी एवं कार्य पर निर्भर रहता है। कभी तो एक विधि काम में लायी जाती है तो कभी बहुत-सी विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कर्मचारी का कार्य किस प्रकार का है। सभी विधियों का प्रयोग एक साथ करने की आवश्यकता कम ही पड़ती है। यदि यह कार्य किया भी जाए तो वह निरर्थक ही होता है। परामर्श की कुछ महत्त्वपूर्ण विधियां निम्न हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.8.1 कर्मचारी की बातें शांतिपूर्वक सुनना (Listen to worker Silently)

इस विधि के अंतर्गत परामर्शदाता कर्मचारी की बातों को ध्यान से सुनता है। वह मौन एवं गंभीर रहकर कर्मचारी की समस्याओं को सुनता है। इससे कर्मचारी को यह लगता है कि परामर्शदाता उनकी बातों को ध्यान से सुन रहा है, उनमें रूचि ले रहा है और उनकी समस्याओं को सुलझाना चाहता है। परामर्शदाता का मौनपूर्वक रहकर उनकी बातों को सुनना कर्मचारी को संतुष्ट कर देता है।

14.8.2 स्वीकृति (Acceptance)

कर्मचारी जब अपनी समस्याएं परामर्शदाता के बीच में रखता है तो परामर्शदाता बीच-बीच में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिससे कर्मचारी आश्वस्त हो जाता है कि उनकी समस्याएं अच्छी तरह से सुनी जा रही हैं। यदि कर्मचारी की बातें सुनते समय परामर्शदाता हाँ, ठीक है आदि शब्दों का प्रयोग करता है तो कर्मचारी यह अनुभव करने लगता है कि परामर्शदाता उन्हें महत्त्व दे रहा है। परामर्शदाता के हाव-भाव भी ऐसे हों जो कर्मचारी को आश्वस्त करें अर्थात् उसका प्रकटीकरण का तरीका अच्छा होना चाहिए।

14.8.3 पुनरावृत्ति (Restatement)

पुनरावृत्ति में परामर्शदाता परामर्शग्राही द्वारा की गई बातों को दोहराता है। इससे कर्मचारी अपनी चर्चा को ज्ञानपूर्ण और समाधान योग्य समझने लगता है। परामर्शदाता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पुनरावृत्ति वाली बातों में किसी प्रकार संशोधन नहीं करे और न कोई स्पष्टीकरण।

14.8.4 मान्यता देना (Approval)

कर्मचारी को इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह कर्मचारी के प्रत्येक विचारों को मान्य करे। कर्मचारी को इस बात का भी बोध न कराए कि वह उसके अमुक विचारों को निरर्थक मानता है। जिन विचारों को मान्यता दी जाए, इसका बोध कर्मचारी को करा देना चाहिए। इससे कर्मचारी परामर्शदाता के प्रति प्रभावित होता है। विचार विमर्श में उसकी रूचि बनी रहती है। इस बात का ध्यान परामर्शदाता को रखना चाहिए कि विचारों के आदान-प्रदान के बीच मान्यता नहीं हो। इससे मान्यता प्रभावहीन होने की संभावना रहती है।

14.8.5 स्पष्टीकरण (Classification)

परामर्शदाता का यह कार्य होता है कि वह कर्मचारी को इस बात का बोध करा दे कि वह कर्मचारियों की बातों पर ध्यान दे रहा है, उनकी समस्याओं को समझ रहा है। वह अनुभव कर रहा है कि वास्तव में कर्मचारी की समस्याएं विचारणीय हैं। साथ में परामर्शदाता को भी अपने वर्णन को स्पष्ट करते रहना चाहिए लेकिन कर्मचारी यह अनुभव करे कि उस पर कोई भी स्पष्टीकरण थोपा नहीं जा रहा है। परामर्शदाता संक्षेप में अपने वर्णन को स्पष्ट कर सकता है।

14.8.6 प्रोत्साहन (General Lead)

इस प्रक्रिया द्वारा परामर्शदाता कर्मचारी को विचार विमर्श के लिए सामान्य बढ़ावा देता है। परामर्शदाता कर्मचारी के विचार अभिव्यक्ति के बाद उससे उसकी योजना के बारे में पूछ सकता है। इससे कर्मचारी द्वारा अधिक से अधिक विचारों को व्यक्त कराया जा सकता है। इससे कर्मचारी से संबंधित उलझनों की विस्तृत जानकारी ज्ञात हो सकती है।

14.8.7 विश्लेषण एवं विवेचना (Analysis and Interpretation)

इस विधि के द्वारा परामर्शदाता कर्मचारी के सम्पूर्ण विचारों और वक्तव्यों को विश्लेषित करता है। इसके उपरान्त निष्कर्षों के आधार पर विवेचना की जाती है। कर्मचारी अपने को इस कार्य में असमर्थ पाता है। परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा निष्कर्षों की विवेचना करता है। उसके पश्चात् कर्मचारी को उसके परिणामों की जानकारी देता है।

14.8.8 विश्वास दिलाना (Assurance)

इस विधि के अंतर्गत इस बात का विश्वास दिलाया जाता है कि कर्मचारी द्वारा रखी समस्याओं के निष्कर्षों के परिणाम परामर्शदाता को समझा चुका है। इसलिए कर्मचारी को यह विश्वास दिलाया जाता है कि उनकी समस्याओं का निराकरण और महत्त्वपूर्ण योजनाएं कर्मचारी के समक्ष रखी जायेंगी जो कर्मचारी के लिए मददगार होगी। परामर्शदाता यह भी विश्वास दिलाते हैं कि वे कर्मचारी की समस्याओं को शीघ्रता से दूर करने में सहायता करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.9 परामर्श सेवाओं के प्रकार (Types of Counselling)

परामर्श प्रक्रिया के तीन प्रकार बताए गये हैं जिन्हें परामर्श की विचार धाराएं भी कहा जा सकता है। परामर्श कैसे, कब और किन परिस्थितियों में करना चाहिए, यह कर्मचारी की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। परामर्श की प्रमुख तीन विचार धाराएं निम्न हैं-

14.9.1 निदेशात्मक परामर्श (Directive counselling)

इस विचारधारा का विली एवं एन्ड्रू ने वर्णन किया है। इस वर्ग के अंतर्गत परामर्शदाता परामर्शग्राही से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। परामर्शदाता की यह जिम्मेदारी होती है कि वह कर्मचारी की सभी समस्याओं का निराकरण करे। समस्याओं को ज्ञात करना, उनका कारण पता करना और उनका निराकरण करना, यह परामर्शदाता की जिम्मेदारी होती है। अन्त में वह कर्मचारी को उपचारात्मक निर्देश देता है। यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित होता है कि परामर्शदाता एक निपुण और योग्य व्यक्ति होता है। उसे व्यावसायिक व शैक्षिक क्षेत्रों के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों का ज्ञान होता है। वह अच्छा मार्गदर्शक हो सकता है, उलझी हुई समस्याओ का आसानी से निराकरण कर सकता है। इसके विपरीत कर्मचारी अपनी समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ होता है। साथ ही उसमें योग्यता व निपुणता की भी कमी होती है। निदेशात्मक परामर्श के प्रमुख लक्षण हैं-

1. परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता का ध्यान पूर्णत: समस्या के समाधान पर केन्द्रित रहना है।
2. इस प्रक्रिया में परामर्शदाता सक्रिय तथा कर्मचारी क्रियाशील होता है।
3. परामर्शदाता सभी कार्य सूचना का वर्णन, निष्कर्ष निकालना आदि करता है जबकि कर्मचारी को निर्णय लेने पड़ते हैं।

14.9.2 अनिदेशात्मक परामर्श (Non-directive counselling)

इस विचारधारा के प्रवर्तक कार्ल रोजर्स हैं। इस विधि में कर्मचारी (परामर्शग्राही) सक्रिय रहता है। परामर्शदाता कम से कम वार्तालाप करता है। कर्मचारी की बातों और उसकी भावनाओं का आदर करता है। परामर्श ग्राही ही अधिक योजनाएं बनाता है। वह स्वयं निर्णय लेता है, परामर्शदाता का मार्गदर्शक बनता है। हालांकि वह परामर्शदाता के सुझावों को मानता है। परामर्शदाता न कोई निर्णय लेता है और न ही योजनाएं बनाता है। परामर्शदाता का कार्य परामर्शग्राही की अर्न्तदृष्टि को विकसित करना होता है। इस विधि की कुछ विशेषताएं हैं-

1. व्यक्ति स्वयं ही परामर्शदाता के पास समस्या समाधान के लिए आता है।
2. परामर्शदाता मुक्तसाहचर्य विधि के द्वारा कर्मचारी की भावनाओं का आदर करता है तथा उन्हें समझने का प्रयास करता है।
3. परामर्शदाता कर्मचारी से कहता है कि वह उसका मार्गदर्शन कर सकता है।
4. इस विधि में कर्मचारी अधिक मदद की आवश्यकता नहीं समझता है।

14.10 समस्याओं के विभिन्न पक्ष (Different aspects of the problems)

व्यक्ति की अनगिनत समस्याएं होने से उनका समाधान खोजना भी सरल कार्य नहीं है क्योंकि जीवन के अनेक क्षेत्र होते हैं, इसलिए समस्याएं भी अनेक हैं। कर्मचारी की कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं-

1. साथियों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखना।
2. परिवार, समाज, सहकर्मियों के साथ अधिकाधिक मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाए रखने के लिए अनुकरण करना।
3. हीनभावनाओं से मुक्ति पाने के लिए सदैव तत्पर रहना।
4. वैवाहिक समस्याओं से परेशान न होना।
5. सन्तान संबंधी समस्याओं पर विचारपूर्वक चिंतन और उनका सही हल खोजना।
6. उपयुक्त व्यवसाय का चुनाव करना।
7. असामाजिक तत्त्वों से दूरी बनाए रखना।
8. जीवन दर्शन पर मनन करना।
9. उत्तरदायित्व निभाने में विश्वास रखना।
10. स्वयं संतुष्ट रहने की प्रवृत्ति का विकास करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. समय का सही उपयोग करना।

12. मान-सम्मान, शिष्टता, सहृदय आदि गुणों में विश्वास रखना।

इस प्रकार परामर्श प्रक्रिया उद्योग में अपना विशिष्ट स्थान रखती है जिससे परामर्शदाता द्वारा कर्मचारी की समस्त समस्याओं, उनके उलझनों का ज्ञान किया जाता है। उन समस्याओं का कारण क्या है, कैसे उनका निवारण हो सकता है- उन उपायों को कर्मचारी को बताना, उसका सही मार्गदर्शन करना आदि परामर्श प्रक्रिया की महत्त्वपूर्ण विधि है।

14.11 मार्गोपदेशन (Guidance)

इस युग में वैज्ञानिक विकास के साथ ही औद्योगीकरण का विकास भी तेजी से हो रहा है। जहां एक ओर औद्योगिक समस्याओं का समाधान हो रहा है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति की समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं। इससे व्यक्ति अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं कर पा रहा है। सुखी जीवन यापन के लिए वह अपने जीवन पथ को देख नहीं पा रहा है। आपाधापी की इस दौड़ में कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करने से वह अपनी निर्णय क्षमता को भी खो बैठता है क्योंकि इन्हीं निर्णयों पर उसके भावी जीवन के सुख-दु:ख निर्भर रहते हैं। इसीलिए समस्याओं को सुलझाने, कठिन परिस्थितियों पर विजय पाने तथा भावी जीवन को सुखमय बनाने के लिए समय-समय पर व्यक्तियों को दूसरों की सहायता की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार की जो सहायता व्यक्ति को उसके जीवन पथ का उपयुक्त दिशा का बोध कराती है, उसे ही मार्गोपदेशन कहा जाता है। इस विधि के द्वारा कुसमायोजन (Maladjustment) की स्थिति पर नियंत्रण किया जाता है।

14.11.1 मार्गोपदेशन की आवश्यकता (Necessity of Guidance)

जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक व्यवस्था तथा घोर आर्थिक असमानता के कारण व्यक्ति की छोटी से छोटी समस्या भी इतनी उलझ गई है कि वह उन्हें सुलझाने में असमर्थ है। विज्ञान की प्रगति के साथ ही व्यक्ति का आकांक्षा स्तर भी ऊंचा उठा है। इससे उसका सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक जीवन पूर्णत: अव्यवस्थित हो गया है। जीवन में केवल जटिलता ही शेष बची है। प्रत्येक विद्वान इस प्रकार की प्रगति तथा स्थितियों का अनुभव कर रहा है। इस प्रकार की समस्याओं के निराकरण हेतु मनोवैज्ञानिकों ने मार्गोपदेशन की व्यवस्था को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है। मार्गोपदेशन की आवश्यकता के मुख्य आधार निम्न कारण माने जा सकते हैं-

14.11.1.1 उद्योग का वैज्ञानिक विकास (Scientific Development of Industry)- विज्ञान की प्रगति के साथ ही उद्योग धंधों में भी वैज्ञानिक प्रगति हुई है। प्रत्येक कार्य मशीन के द्वारा होता है। इसलिए मनुष्य की खपत भी कम होने लगी है। मशीनी युग के कारण प्रत्येक कर्मचारी के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह अपने कार्य की पूरी जानकारी रखता हो तथा वह पूर्णत: प्रशिक्षित भी हो। मशीन के लिए इस प्रकार के उपर्युक्त व्यक्ति की तलाश के लिए ही उपयुक्त परामर्श की आवश्यकता होती है जिसे मार्गोपदेशन कहा जाता है।

14.11.1.2 पूंजीवादी व्यवस्था (Capitalism System)- देश में प्रगति के बावजूद पूंजी का दायरा कम होता गया और गरीबी बढ़ती जा रही है। देश की संपत्ति चंद लोगों के हाथों में आ गई है। इससे वे लोग श्रम नहीं करेंगे और श्रमिक श्रम करता रहेगा। इस पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभुत्व प्रत्येक व्यवसाय तथा नौकरी पर है। अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति इस व्यवस्था में समायोजन न कर पाने के कारण उपयुक्त व्यवसाय प्राप्त नहीं कर सकते। औद्योगिक व्यवस्था वर्तमान में पूर्णत: अव्यवस्थित हो रही है। इसी से छुटकारा पाने के लिए मार्गोपदेशन की आवश्यकता पड़ती है।

14.11.1.3 अनुपयुक्त शिक्षा (Unwanted Education)- शिक्षण संस्थाएं फैक्ट्रियां बन गई हैं। वर्तमान में शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं है। विद्यार्थी की पढ़ाई उद्योगों के अनुकूल नहीं है। उपयुक्त कार्य के लिए अनुपयुक्त व्यक्तियों को रखा जाता है। इस प्रकार की शिक्षा से छुटकारा पाने के लिए मार्गोपदेशन की आवश्यकता पड़ती है।

14.11.1.4 व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास (Ha-rmonious Development of the Personality)- समाज में कुछ व्यक्तियों का व्यक्तित्व आवश्यकतानुसार विकसित नहीं हो पाता है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जिनका स्वस्थ व्यक्तित्व भी असमायोजन और प्रतिकूल वातावरण के कारण अस्त-व्यस्त हो जाता है। इसका एक मुख्य कारण व्यवसायिक कुसमायोजन है। व्यक्तित्व की अस्वस्थता को रोकने के लिए तथा व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए शैक्षिक मार्गोपदेशन की आवश्यकता रहती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण तथा संतुलित विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रारंभ से ही मार्गोपदेशन का सहारा लेना चाहिए। परिवार, पड़ौस, शिक्षालय, समाज तथा देश का कल्याण इसी में निहित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.11.1.5 व्यक्तिगत संपर्क का अभाव (Lack of personal contact)– उद्योग में अप्रत्यक्ष सामाजिक संबंधों के कारण वहां कर्मचारी में प्रतियोगिता एवं तनाव की स्थिति बनी रहती है। इससे कर्मचारी अपने लिए उपयुक्त पथ का चुनाव नहीं कर पाता है। इससे कई लोग निराशा के शिकार हो जाते हैं। सारा जीवन असफलता में ही बीतता है। इस प्रकार भयानक रोगों से बचाये रखने के लिए नवयुवकों को व्यक्तिगत मार्गोपदेशन की आवश्यकता पड़ती है।

14.11.1.6 व्यवसायों की अधिकता (Multiplicity of profession)– व्यवसायों की वृद्धि से प्रशिक्षित और विशेषीकरण (Training and specialization) की समस्या भी जटिल हो गई है। पढ़ाई पूरी करने के बाद एक नवयुवक के सामने यह समस्या रहती है कि वह किस व्यवसाय को चुने और कैसे उसके लिए प्रशिक्षण ग्रहण करे। इस प्रकार ऐसी जटिल स्थिति में व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक मार्गोपदेशन की आवश्यकता रहती है।

14.11.1.7 व्यक्तिगत समस्याएं (Personal problems)– मार्गोपदेशन के द्वारा व्यक्ति को उनकी योग्यतानुसार कार्य दिलाने के लिए मार्ग दिखाया जा सकता है।

14.11.1.8 मनोनुकूल व्यवसाय का न मिलना (Not selected for a desired job)– प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख एवं ऐश्वर्य की चाह रखता है। भले ही उनमें इतनी योगयताएं हैं या नहीं। देश की आवश्यकतानुसार एवं विकास के लिए वे कार्य भी करने होंगे, जिन्हें समाज में निकृष्ट समझा जाता है। इस कुसमायोजन की स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिए मार्गोपदेशन की आवश्यकता पड़ती है। चयन के लिए एक निश्चित पथ का ज्ञान होना चाहिए।

14.12 मार्गोपदेशन के प्रकार (Kinds of guidance)

मार्गोपदेशन के प्रकारों के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। आवश्यकतानुसार विद्वानों ने मार्गोपदेशन को वर्गीकृत किया है—

प्रोक्टर (Proctor) नामक विद्वान ने मार्गोपदेशन के छः प्रकार बताए हैं:

1. शैक्षिक मार्गोपदेशन (Educational guidance)
2. व्यावसायिक मार्गोपदेशन (Vocational guidance)
3. सामाजिक तथा नगरीय कार्य-कलाप से संबंधित मार्गोपदेशन (Guidance in social and civic activities)
4. स्वास्थ्य तथा भौतिक क्रिया-कलाप से संबंधित मार्गोपदेशन (Guidance in health and physical activities)
5. अवकाश के समय का ठीक उपयोग करने से संबंधित मार्गोपदेशन (Guidance in the worthy use of leisure time)
6. चरित्र निर्माण कार्य-कलाप संबंधी मार्गोपदेशन (Guidance in character-building activities)

जोन्स (Jones) ने 1930 में छः प्रकार के मार्गोपदेशनों का वर्णन किया है—

1. व्यावसायिक मार्गोपदेशन (Vocational guidance)
2. पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्री तथा स्कूल मार्गोपदेशन (Course, curiculum and school guidance)
3. नगरीय तथा चारित्रिक मार्गोपदेशन (Civic and moral guidance)
4. अवकाश का समय, अव्यवसायिक या सांस्कृतिक मार्गोपदेशन (Leisure time, Avocational or Cultural guidance)
5. स्कूल मार्गोपदेशन (School guidance)
6. नेतागिरी के लिए मार्गोपदेशन (Leadership guidance)

कूज तथा केवर (Kous and Keauver), पैटरसन, शनीडलर तथा विलियमसन ने भी उपरोक्त प्रकार के मार्गोपदेशनों से मिलते-जुलते ही प्रकार बतलाए हैं।

इस प्रकार विद्वानों की अलग-अलग मान्यताएं मार्गोपदेशनों के प्रकारों में दिखाई देती है। मुख्यत: मार्गोपदेशन के तीन प्रकार है—1. व्यक्तिगत मार्गोपदेशन, 2. शैक्षिक मार्गोपदेशन, 3. व्यावसायिक मार्गोपदेशन।

14.12.1 व्यक्तिगत मार्गोपदेशन (Personal guidance

प्रगति के इस युग में व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन नहीं बना पाता है। इससे उसका पारिवारिक जीवन भी सुखमय नहीं रह पाता है। चिंता, तनाव, उत्तेजना, उदासी आदि कई समस्याएं पैदा हो जाती हैं। धीरे-धीरे असामान्यता की स्थिति बढ़ती जाती है। इस असामान्यता के कारण असमायोजन की स्थिति पैदा हो जाती है। इसलिए उसकी इन व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के लिए एक प्रकार की सहायता की आवश्यकता पड़ती है, जिसे व्यक्तिगत मार्गोपदेशन कहते हैं। मार्गोपदेशन से पूर्व असमायोजित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यक्ति का वैयक्तिक परीक्षा के द्वारा बुद्धि स्तर, मानसिक योग्यताएं एवं क्षमताएं, व्यक्तित्व संबंधी विशेषताएं आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है। उसका कई बार साक्षात्कार भी लिया जाता है। उसकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विद्यालय और व्यवसाय से संबंधित घटनाओं आदि की जानकारी ली जाती है। इसके बाद असामान्यताओं को दूर करने हेतु निदान एवं उपचार की खोज की जाती है। उपचार हेतु सुझाव (Suggestion), उन्नयन (Sublimation), पुनर्शिक्षण (Re-education), सामूहिक चिकित्सा (Group-therapy), मनोविश्लेषण (Psycho-analysis), खेल चिकित्सा (Play-therapy) तथा व्यावसायिक चिकित्सा (Vocational therapy) आदि विधियों को उपयोग में लिया जाता है।

14.12.2 शैक्षिक मार्गोपदेशन (Educational guidance)

यह मार्गोपदेशन एक प्रकार की व्यक्तिगत सहायता है जिसके द्वारा विद्यार्थी अपनी योग्यतानुसार उपयुक्त शिक्षालय तथा पाठ्यक्रम का चयन कर सके। इस सहायता से वह शैक्षिक वातावरण के साथ अपना समायोजन स्थापित करता है। इस प्रकार की सहायता से विद्यार्थी को उसके भविष्य की जानकारी प्राप्त हो जाती है। यह भी जान लेता है कि किस प्रकार के व्यवसाय के लिए किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता पड़ेगी। फलस्वरूप वह अपने रूचि के पाठ्यक्रम का चयन करता है ताकि अपने व्यावसायिक जीवन को सुखी बना सके।

इस प्रकार बौद्धिक विकास के लिए शैक्षिक मार्गोपदेशन की आवश्यकता पड़ती है। सीखने की प्रत्येक क्रिया मार्गोपदेशन का ही स्वरूप होती है। इस मत की पुष्टि ब्रेवर (Brewer) ने की है–

मायर्स (Myers) ने शैक्षिक मार्गोपदेशन को एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया माना है जिसका संबंध विद्यार्थी की प्रभेदी विशेषताओं तथा उसके सामूहिक विकास से होता है।

14.12.2.1 शैक्षिक मार्गोपदेशन के उद्देश्य (Aims of Educational guidance)

संयुक्त राज्य अमेरिका ने सन् 1918 में राष्ट्रीय शिक्षा संघ (National Educational Association) ने एक कमीशन नियुक्त किया था। जिसमें इस बात की सलाह दी कि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहायता करना होना चाहिए। अत: व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताएं जिनका संबंध स्वास्थ्य (Health), मूलभूत कुशलता (Citizenship), मनोरंजन की क्रियाएं (Recreational activities) तथा नीति शास्त्रीय चरित्र (Ethical character) से है, उनका समावेश शिक्षा में होना चाहिए। मार्गोपदेशन का उद्देश्य विद्यार्थियों को उपरोक्त सभी कार्यों में उनकी शक्ति के अनुसार समायोजित करना है। शैक्षिक मार्गोपदेशन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. विद्यार्थियों की रूचि, मानसिक योग्यता तथा भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम का चयन करना।
2. अध्ययन के साथ कार्य करने की आदत की उन्नति करना जिससे संतोषजनक सफलता मिल सके।
3. विद्यार्थी अपनी रूचि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी ज्ञान प्राप्त करने का अनुभव प्राप्त कर सके।
4. विद्यार्थी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के संबंध में विद्यालय के उद्देश्यों तथा कार्य को भली भांति समझ सके।
5. विद्यार्थी इस बात की अनुभूति कर सके कि उसका विद्यालय उसकी आवश्यकताओं के अनुसार ही विभिन्न योजनाएं बनाता है।
6. अग्रिम शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी अग्रिम शिक्षा क्षेत्रों के उद्देश्यों तथा कार्यों को समझ सके।
7. विद्यार्थी को इस बात का सुअवसर प्रदान किया जाये कि वह भविष्य के अध्ययन के लिए परीक्षात्मक पद्धति या अन्वेषणात्मक पद्धति (Try out or Explorative) से ज्ञानार्जन में अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सके।
8. स्व कक्षा से बाहर के क्रियाकलापों में विद्यार्थी को भाग लेने का सुअवसर प्रदान हो जिससे उसमें नेतृत्व (Leadership) का विकास हो।
9. विद्यार्थी को सतत अध्ययन करना तथा विशिष्ट व्यवसाय आदि की उपयुक्तता से उसे अवगत कराना।
10. विद्यार्थी में अध्ययन के प्रति जागरूकता बनी रहे, ऐसी प्रवृत्ति का विकास करना।
11. विद्यालय की शिक्षा-प्रणाली में विद्यार्थी को पूर्ण रूप से समायोजित करना।

14.12.3 व्यावसायिक मार्गोपदेशन (Vocational guidance)

नेशनल वोकेशनल गाइडेंस एसोसिएशन (National vocational guidance association) ने सर्वप्रथम व्यावसायिक मार्गोपदेशन की परिभाषा प्रस्तुत की। अनेक संशोधनों के बाद 1737 में व्यावसायिक मार्गोपदेशन की निम्न परिभाषा दी है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"Vocational guidance is a process of assisting the individual to choose an occupational prepare for it, enter upon the progress in it. It is concerned primarily with helping individuals made decisions and choices involved in planning a future and a building a career-decisions and choices necessary in effecting satisfactory vocational adjustment."

उपयुक्त परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मार्गोपदेशन अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवसाय का चयन, उसके हेतु प्रशिक्षण एवं उस व्यवसाय में प्रगति का प्रयत्न करता है। मूलभूत उद्देश्य है व्यक्ति विशेष को सहायता पहुंचाना जिसके द्वारा वह अपनी भावी जीव्न की सुनिश्चित रेखा बना सके। अपने लिए उपयुक्त व्यवसाय का निर्णय कर सके तथा संतोषपूर्ण व्यावसायिक समायोजन को प्रभावित करने वाले आवश्यक निष्कर्षों का निर्माण कर सके। इस प्रकार व्यावसायिक मार्गोपदेशन में व्यक्ति को वह सहायता दी जाती है जिससे व्यक्ति अपनी व्यावसायिक समस्याओं का समाधान करता है। योजनाओं के अनुसार अपने लक्ष्य प्राप्त करने की विधियों में परिवर्तन करता है तथा अपनी क्षमताओं द्वारा समस्याओं का समाधान करता है। इस संदर्भ में मायर्स के विचार इस प्रकार हैं-

"It includes helping the individual to work out for himself an adaptable vocational plan and to proceed in accordance with that plan. It includes aiding the individual to acquire a method of procedure in leading with this vocational problems that will enable him to make wise changes in his vocational plan at any time in his life when changes become necessary or desirable."

व्यावसायिक मार्गोपदेशन के द्वारा व्यक्ति स्वयं का मार्ग खोज निकालता है। वह समस्या समाधान को स्वयं ढूंढने तथा अपने उत्तरदायित्व को समझने लगता है। व्यावसायिक मार्गोपदेशन के द्वारा वह पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक जीवन को सुखी बनाता है तथा व्यावसायिक कुसमायोजन से बच जाता है।

14.12.3.1 व्यावसायिक मार्गोपदेशन का अर्थ तथा परिभाषा (Meaning and definitions of vocational guidance)

"National vocational guidance is the giving of information, experience and advice in regard to choosing an occupation, preparing for it, enterning it and progressing in it."

व्यावसायिक मार्गोपदेशन उपयुक्त कार्य की खोज में सहायता पहुंचाने वाला साधन है जो क्षमताओं और योग्यताओं के अनुकूल व्यवसाय संबंधी योजनाओं के निर्माण में सहायक होता है। इसके द्वारा व्यक्ति व्यावसायिक समस्याओं का समाधान कर सकता है और आवश्यकता पडने पर दूसरे व्यवसाय की योजना को बनाकर क्रियान्वित करने लगता है।

व्यावसायिक मार्गोपदेशन संबंधी समस्याओं का वर्णन मायर्स ने इस प्रकार किया है- "The problem of vacational guidance is that of assisting an individual who possesses certain assets, liabilities and posibilities to select from these many occupations one that is suited to himself and then to aid him in preparing for it, entering upon and progressive in it."

व्यावसायिक मार्गोपदेशन एक ऐसा माध्यम है जो प्रत्येक नवयुवक को उसकी योग्यताओं के अनुकूल अमूल्य भविष्य निर्माण में सहायक होता है। समायोजन, सन्तोष और सुख इसी पर आधारित होते हैं। व्यावसायिक मार्गोपदेशन का मूल उद्देश्य व्यक्ति को एक विशेष पथ की ओर अग्रसर करने से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना व्यावसायिक जीवन-लक्ष्य निश्चित कर सके। वह अपनी योग्यताओं, अभिरूचियों, शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं के अनुकूल व्यवसाय प्राप्त कर अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का भी समाधान कर सके जिससे उसका आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पूर्णत: सुखी बन जाये तथा उसकी व्यक्तिगत उन्नति के साथ ही समाज की उन्नति भी हो।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने 1924 में अपनी परिभाषा प्रस्तुत की- "Vocational guidance is an assistance given to an individual in solving problem related to occupational choice and progress with due regard for the individuals characteristics and their relation to occupational opportunity."

14.12.3.2 व्यावसायिक मार्गोपदेशन के उद्देश्य (Aims of vocational Guidance)

व्यावसायिक मार्गोपदेशन का मुख्य उद्देश्य है उपयुक्त व्यक्ति के लिए उपयुक्त व्यवसाय और उपयुक्त व्यवसाय के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन करना। व्यावसायिक मार्गोपदेशन के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार है-

1. विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों के कार्य (Fuctions), कर्त्तव्य (Duties), उत्तरदायित्व (Responsibility), वेतन (Pay) आदि बातों से अवगत कराना।
2. विद्यार्थियों को मानसिक शक्तियों, योग्यताओं तथा रूचियों के मूल्यांकन मे सहायता करना तथा उसका सामाजिक मूल्य समझना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. व्यक्ति को कार्य के महत्त्व को समझाना ताकि व्यवसाय में उन्नति कर सके।
4. विद्यार्थी को विद्यालयी शिक्षा, क्षेत्रों में अनुसंधान का अवसर देना, विभिन्न कार्यों के ज्ञान हेतु विभिन्न व्यवसायों का ज्ञान कराना।
5. व्यवसाय की अच्छाई और बुराईयों को समझ सकने की प्रवृत्ति को विकसित करना।
6. शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक दृष्टि से छात्रों में ऐसी प्रवृत्ति को विकसित करना जिससे समाज में स्वयं को समायोजित कर व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण प्राप्त कर सके।
7. अध्यापक तथा निर्देशक के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास पैदा करना जिससे स्वतंत्रतापूर्वक व्यावसायिक चयन के लिए विचार-विमर्श कर सके।
8. छात्रों को व्यावसायिक शिक्षालयों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं से अवगत कराना।
9. विद्यार्थी को अध्ययन काल में सहपाठियों से पूर्ण समायोजित करना।
10. समुदाय में कार्यशील बनाना।
11. लंबी अवधि का प्रशिक्षण।
12. दूसरों पर संदेह तथा दूसरों की मिथ्या निन्दा न करना।
13. तत्परता तथा कुशलता से कार्य करना।

14.12.3.3 व्यावसायिक मार्गोपदेशन की विधियां (Methods of Vocational Guidance)–इन विधियों द्वारा व्यक्ति का सही पथ प्रदर्शन किया जा सकता है। अनुकूल व्यावसायिक चयन के लिए निम्न विधियों का अनुसरण करना चाहिए-

1. मार्ग निर्धारित करने की बातचीत
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण
3. शिक्षालय से जानकारी
4. परिवार से सूचना
5. साक्षात्कार

1. मार्ग निर्धारित करने की बातचीत (Orientation talks)- इसमें व्यक्ति को सर्वप्रथम व्यावसायिक सूचना दी जाती है। इससे व्यक्ति को उत्साहित किया जाता है। उचित व्यावसायिक मार्गोपदेशन के लिए चलचित्रों, भ्रमण, निरीक्षण, जीवनवृत्त पुस्तिकाएं (Career pamphlets), विशेषज्ञों के व्याख्यान मालाएं आदि जानकारियों को साधन के रूप में लाया जा सकता है। इन पहलुओं की जानकारी के बाद व्यक्ति को उसके व्यवसाय के प्रति उत्साहित किया जाता है जिसे वह जीविकोपार्जन हेतु चयन करने वाला है। उसमें प्रवेश से पूर्व वह अपनी योग्यता, क्षमता एवं अभिरूचियों को जान लेता है।

2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological testing)–मनोवैज्ञानिक परीक्षण में व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के परीक्षणों से गुजरना होगा। बुद्धि परीक्षण (Intelligence tests) अभिरूचि परीक्षण (Interest tests) व्यक्तिगत परीक्षण (Personality tests) और अभिक्षमता परीक्षण (Aptitude tests) आदि का प्रयोग किया जाता है। संपूर्ण मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा व्यक्ति को उपयुक्त व्यवसाय की जानकारी दी जाती है।

3. शिक्षालय से जानकारी (Information from school)– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निष्कर्ष तब सही निकल सकते हैं जब उसके शिक्षा संबंधी तथ्यों का संकलन किया जाए । इससे यह ज्ञात होता है कि शिक्षा काल में किन विषयों तथा परिस्थितियों में अधिक रूचि थी।

4. परिवार से सूचना (Information from family)– व्यक्ति के पारिवारिक व्यवसाय की जानकारी उसी से न होकर परिवार से भी प्राप्त की जानी चाहिए। इससे मार्गोपदेशन में बहुत सहायता मिलती है जिससे व्यक्ति को उचित राय दी जा सकती है।

5. साक्षात्कार (Interview)– इन सारी जानकारियों और प्रोत्साहन देने के बाद व्यक्ति को साक्षात्कार के लिए तैयार करना चाहिए। इस प्रकार के शिक्षण के साक्षात्कार की समस्त विधियों, नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग करना चाहिए। साक्षात्कार की कसौटी पर उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.12.3.4 व्यावसायिक मार्गोपदेशन में वैज्ञानिक क्रम (Scientific steps in Vocational Guid-ance)– व्यावसायिक मार्गोपदेशन में निर्देशन देने वाले व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक जानकारी प्राप्त की जाती है। इसमें कई चरण संकलित किए जाते हैं। ये व्यक्तिगत सूचना संबंधी मार्गोपदेशन के वैज्ञानिक क्रम हैं। इस प्रकार सूचना के लिए दो प्रकार की सूची तैयार की जाती है। पहली सूची आवश्यकता, योग्यताएं, क्षमताएं तथा रूझान आदि होती हैं तथा दूसरी सूची व्यक्ति के समायोजन से संबंधी तथ्यों पर आधारित होती है। इस प्रकार व्यावसायिक मार्गों के लिए कई चरण (Steps) कई प्रकार की सूची पर आधारित होती हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक क्रम जो प्रमुख सूचना से संबंधित हैं, इस प्रकार हैं–

1. शारीरिक सूचना (Physical inform-ation)– इसके अंतर्गत शरीर के विभिन्न अंगों, आंख, कान, नाक, फेफड़ों, हृदय आदि अंगों की कार्यक्षमता का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार रक्तचाप, तापक्रम और अन्य संस्थान संबंधी सूचना का अंकन किया जाता है। इस प्रकार की सूचना के लिए चिकित्साशास्त्री व विशेषज्ञ सहायक होते हैं।

2. व्यक्तिगत सूचना (Personal inform-ation)–इसमें व्यक्ति की व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं। इस संबंध में कुछ क्रम इस प्रकार हैं–व्यक्ति का नाम, आयु, लिंग, पारिभाषिक क्रम, माता–पिता की आयु, आर्थिक स्थिति, सामाजिक, धार्मिक स्थिति, वंशानुक्रमिक रोग, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य आदि।

3. मनोवैज्ञानिक परीक्षण संबंधी सूचना (Infor-mation related to psychological tests)– इन परीक्षणों के व्यक्ति की मानसिक स्थिति का पता लगता है। इन परीक्षणों के दो भाग हैं–बौद्धिक परीक्षण और व्यक्तिगत परीक्षण। बौद्धिक परीक्षणों में विभिन्न योग्यताओं का मापन करने वाले परीक्षण तथा व्यक्तिगत परीक्षण में रूचि परीक्षण, मूल्य परीक्षण, अभिवृत्ति तथा समायोजन परीक्षण आदि हैं। इनका अलग–अलग वर्णन इस प्रकार है–

(i) बुद्धि परीक्षण (Intelligence tests)– बुद्धि एक सामान्य योग्यता है पर इसका उपयोग जटिल परिस्थितियों में किया जाता है। बुद्धि परीक्षणों के द्वारा ही व्यक्ति को मार्गोपदेशन दिया जाता था। मनोवैज्ञानिकों ने देखा कि विविध व्यवसायों का संबंध बुद्धि से होता है। बुद्धि परीक्षणों की महत्ता मे स्मिथ (May smith) ने इस प्रकार लिखा है–

"Experience has shown that if no other information is available then the intelligence test is for practical purposes the most useful measures of a person one can have."

बुद्धि परीक्षण के बिना व्यावसायिक मार्गोपदेश की भावना नहीं हो सकती है। वर्तमान में बुद्धि परीक्षण के साथ अभियोग्य परीक्षण माला (Differential aptitude battery) को भी प्रयोग में लिया जाता है।

(ii) यांत्रिक योग्यता तथा अन्य अभियोग्यता परीक्षण (Tests of mechanical ability and other aptitudes)–अभियोग्यता वह दशा है जो व्यक्ति को भविष्य की कार्यक्षमताओं की ओर संकेत करती है। अभियोग्यता का अर्थ किसी कार्य को सफलतापूर्वक करने की क्षमता से है। मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न योग्यताओं का पता लगाकर उनके मापन हेतु परीक्षण बनाए। ये परीक्षण हैं–यांत्रिक योग्यता, लिपिक योग्यता, संगीत योग्यता, कला योग्यता।

(iii) गति तथा परिशुद्धता (Speed and accuracy)–कुछ व्यवसायों में गति की तथा कुछ में शुद्धता की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यवसायों में गति तथा शुद्धता दोनों की आवश्यकता होती है। गति का मापन पात्रीवर्या काल तंत्र (R.T. apparatus) तथा परिशुद्धता का मापन (Hand dexterity test) या निराकरण परीक्षण द्वारा किया जाता है।

(iv) अन्य मानसिक गुण (Other mental qualities)–अन्य मानसिक प्रक्रियाओं के मापन हेतु दूसरे प्रकार के मानसिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत जिन मानसिक योग्यताओं का मापन किया जाता है वे हैं–स्मृति एवं ध्यान। कुछ व्यवसायों में तीव्र स्मृति, तुरन्त स्मृति तथा स्थायी स्मृति की आवश्यकता होती है। व्यवसाय में कुछ कार्यों के संपादन हेतु ध्यान की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण होती है। कुछ व्यवसायों में एक साथ अनेक कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करना होता है।

(v) रूचि परीक्षण (Interest inventory)– रूचि मापन हेतु भी अनेक परीक्षण बनाए गये हैं।

(vi) व्यक्तित्व समायोजन का मापन (Measurment of personality adjustment)– कुसमायोजन को दूर करने हेतु समायोजन परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

(vii) अभिवृत्ति तथा मूल्य परीक्षण (Attitude and values tests)–अभिवृत्ति व्यक्ति की पसंद या नापसंद की अभिव्यक्ति होती है। मूल्य व्यक्ति के विश्वासों की अभिव्यक्ति है। स्पैंजर (Spenger) ने 6 मूल्य बताए जो इस प्रकार हैं–धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सैद्धान्तिक तथा सौन्दर्यात्मक। आलपोर्ट बर्नन ने एक मूल्य परीक्षण का निर्माण किया। इसकी उपयोगिता और सफल निष्कर्षों को देखकर अन्य विद्वानों ने अपनी मातृभाषा के अनुरूप मूल्य परीक्षणों का निर्माण किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.12.3.5 व्यावसायिक मार्गोपदेशन की सीमाएं (Limitations of vocational guidance)– वर्तमान में व्यावसायिक मार्गोपदेशन के लिए मापन संबंधी योग्यताओं को प्रधानता दी जाती है। वर्तमान अवस्था में जो अयोग्यताएं पाई जाती हैं, उनका मापन किया जाता है। व्यक्ति की वर्तमान अवस्था का मापन कोई आसान कार्य नहीं है क्योंकि मार्गोपदेशन की अपनी कठिनाइयां होती हैं, इन कठिनाइयों के चार पक्ष इस प्रकार हैं–

1. कुछ योग्यताएं वंशानुगत होती हैं लेकिन उचित वातावरण के अभाव में उनका प्रदर्शन नहीं हो पाता है। इसलिए उनका मापन भी सही तरीके से नहीं हो पाता है। इससे मार्गोपदेशन भी प्रभावित होता है।

2. आर्थिक कठिनाइयों में मार्गोपदेशन संबंधी सेवाएं नहीं चलाई जाती। इसके संचालन हेतु योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तथा मापन के लिए परीक्षणों की आवश्यकता रहती है। इन सबके लिए धन की आवश्यकता होती है। जिन देशों में आर्थिक पिछड़ापन है, वहां इस प्रकार के कार्यों का संपादन नहीं हो पाता है।

3. व्यावसायिक मार्गोपदेशन का अर्थ है कि योग्य व्यक्तियों को विभिन्न व्यवसायों में काम करना चाहिए। व्यवसाय और जनसंख्या की वृद्धि के कारण व्यक्ति इन सभी व्यवसायों के संबंध में मार्गोपदेशन प्राप्त नहीं कर पाता है।

4. व्यवसायों की वृद्धि के साथ उनकी विशिष्टताओं और आवश्यकताओं का निर्धारण नहीं हुआ है। जब तक इनके निर्धारण तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण नहीं होगा, उनका मापन संभव नहीं है। इनका निर्धारण होने पर मार्गोपदेशन भी दिया जा सकता है।

14.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न:–

1. कार्मिक परामर्श को परिभाषित करते हुए परामर्शदाता के गुणों की व्याख्या कीजिए।
2. परामर्श की क्या विधियां है।
3. मार्गोपदेशन की क्यों आवश्यकता पड़ती है?
4. व्यावसायिक मार्गोपदेशन की विधियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 15 कार्मिक चुनाव प्रक्रिया

संरचना

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 कार्मिक चुनाव प्रक्रिया

15.2.1 आवेदन पत्र

15.2.2 साक्षात्कार

15.2.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण

15.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। शिक्षा की अभिवृद्धि सराहनीय है। किंतु इसके बावजूद भी सामाजिक संतुलन, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक शांति में कमी आ रही है तथा शोषण में वृद्धि हो रही है। घिराव, धरना, तालाबंदी आदि अनेक समस्याएं पैदा हो रही हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान की दृष्टि से इस समस्या का समाधान है-उचित व्यक्ति की उचित कार्य पर नियुक्ति। उद्योग में इसे ही व्यावसायिक चयन के नाम से जाना जाता है। व्यावसायिक चयन कार्य की आवश्यकताओं को विस्तारपूर्वक जाने बिना सफल नहीं हो सकता है अथवा कार्य विश्लेषण के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। इसके बाद दूसरी समस्या है कार्यकर्त्ता विश्लेषण की। इसमें व्यावसायिक अनुकूलता के लिए विभिन्न आयामों के निर्धारण की आवश्यकता होती है। सभी कार्यों की आवश्यकताएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं। फिर भी इन आयामों को मुख्य चार वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. सामर्थ्य (Compitency) : बुद्धि अर्थात् सामान्य एवं विशिष्ट योग्यताएं
2. प्रवीणता (Proficiency) : विशिष्ट क्षेत्रों में की गई उपलब्धियां
3. अभिवृत्ति एवं अभिरूचि (Aptitude and Interest) : विशिष्ट क्षेत्रों में मानसिक झुकाव एवं रूचि
4. चित्र प्रकृति तथा चरित्र संबंधी शीलगुण (Temprament & Character Traits) अपूर्ण अभि- योजनात्मक विशेषताएं।

15.1 उद्देश्य

1. कार्मिक चुनाव प्रक्रिया में आवेदन पत्र के महत्व के समझ सकेंगे।
2. कार्मिक चुनाव प्रक्रिया में साक्षात्कार विधि को समझ सकेंगे।
3. कार्मिक चुनाव प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के महत्व को समझ सकेंगे।

15.2 कार्मिक चुनाव प्रक्रिया

कार्यकर्त्ता-विश्लेषण से संबंधित उपरोक्त चार शीलगुणों के संदर्भ में व्यक्ति की व्यावसायिक अनुकूलता संबंधी सूचना प्राप्ति हेतु तीन मुख्य स्रोतों तथा विधियों का उल्लेख किया जा सकता है। इनका उपयोग समय-समय पर उद्योगों में किया जाता है। ये विधियां हैं-

1. आवेदन पत्र (Application Blank)
2. साक्षात्कार (Interview)
3. मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)

15.2.1 आवेदन पत्र (Application Blank)

उद्योगों में कार्य करने हेतु आवेदक को सर्वप्रथम आवेदन पत्र भरना पड़ता है। इसमें उसके शैक्षिक प्रशिक्षण, कार्यानुभव आदि का उल्लेख होता है। विस्तृत आवेदन पत्रों में आवेदक की रूचियों, अभिरूचियों, प्रवीणता आदि का भी उल्लेख होता है। साधारणतया आवेदन पत्र प्रमाणित होते हैं। इसके दो मुख्य उद्देश्य हैं-

1. भविष्य में जानकारी प्राप्त करने हेतु उपयोग
2. आवेदन पत्रों द्वारा भरपूर जानकारी प्राप्त करना

15.2.1.1 आवेदन पत्र के गुण (Merits)—यदि आवेदन पत्र का प्रयोग सजगता और सूझबूझ से किया जाए तो व्यावसायिक चयन के लिए बहुमूल्य उपादान सिद्ध हो सकता है। आवेदन पत्रों का उपयोग बहुत रूपों में किया गया है। वर्णोच्चार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तथा हस्तलेखन जैसे कार्य के लिए उम्मीदवारों के चयन में महत्त्वपूर्ण यथा-प्रदर्शन का कार्य करते हैं। आवेदन पत्र आवेदन को एकरसता (Anotomy) जैसी समस्या से बचाने में सहायक होते हैं। क्योंकि साक्षात्कार की प्रतीक्षा करते हुए आवेदक अग्रिम रूप से न भेजे गए आवेदन पत्रों को उस समय भर सकते हैं। आवेदन भरते समय कुशल निरीक्षक आवेदक के व्यवहारों एवं मनोभावों को समीप से जानकर बहुमूल्य सूचनाएं प्राप्त कर सकता है। अनुसंधानों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि कार्य की सफलता हेतु आवेदन पत्र के कुछ विवरणों का भविष्य सूचक मूल्य (Predicate Value) बहुत होता है। इससे दुर्बल आवेदकों को प्रारंभ में ही छांटने में सहायता मिलती है।

15.2.1.2 आवेदन पत्र की सीमाएं (Limitations of application)– उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर आवेदन पत्रों की सीमाएं निम्न प्रकार की गई हैं– 1. अतिरंजित दावे करना, 2. पूर्व ग्रहित विवरण, 3. फोटो से मिथ्या धारणाएं।

1. अतिरंजित दावे करना (Putting exaggerated Claims)–आवेदन पत्र भरते समय उम्मीदवार अपनी योग्यताओं, उपलब्धियों तथा अनुभवों आदि को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। यह तरीका सभी जगह लागू नहीं होता है। ऐसे आवेदन पत्रों का उपयोग साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक तथा पारिस्थितिकी संबंधी परीक्षणों आदि के रूप में किया जा सकता है।

2. पूर्वग्रहित विवरण (Biased items)– आवेदन पत्रों की एक त्रुटि यह भी होती है कि कभी-कभी इसके विवरण द्वारा पूर्व धारणाओं को बढ़ावा मिलता है। नियुक्ति कामों में ऐसे आवेदनपूर्ण विवरणों के उपयोग से भारी त्रुटियां उत्पन्न हो सकती हैं।

3. फोटो से मिथ्या धारणाएं (Photographs leading to wrong notions)– फोटो से आवेदक के चेहरे अथवा वस्त्र आदि के बारे में साक्षात्कारकर्ता के मन में मिथ्या धारणाएं पैदा हो जाती हैं। इस कारण से भी आवेदन पत्र का महत्त्व एक चयन विधि के रूप में घट जाता है।

15.2.2 साक्षात्कार (Interview)

उद्योगों में कार्मिक चयन हेतु साक्षात्कार का प्रचलन रहा है। यह एक प्राचीनतम एवं सर्वमान्य विधि के रूप में प्रयुक्त होता आया है। वर्तमान युग में सभी क्षेत्रों में साक्षात्कार को अनिवार्य साधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। यह उम्मीदवार तथा उसकी अनुकूलता (Fitness) को जांचने-परखने की एक जीवन्त सामाजिक स्थिति है। इसमें दो पक्ष होते हैं। इन पक्षों के बीच की वार्ता ही अन्तिम निर्णय का आधार बनती है।

बिंघम तथा मूर (Bingham & Moore, 1924) ने साक्षात्कार को एक उद्देश्यपूर्ण वार्ता माना है। इन्होंने साक्षात्कार को एक ऐसा चित्र माना जिसके द्वारा साक्षात्कारार्थी को कार्य विशेष के योग्य अथवा अयोग्य घोषित किया जा सकता है। वर्तमान में साक्षात्कार के उद्देश्य की भिन्नता को लेकर कई परिवर्तन हुए हैं। भिन्नता के आधार पर साक्षात्कार कभी चयन, कभी मनोवृत्ति, कभी सलाह तो कभी मूल्यांकन आदि हुआ करता है। वाइटेलेस ने साक्षात्कार को आवेदक एवं सेवायोजन पदाधिकारियों के बीच प्रत्यक्ष बातचीत माना है।

वर्तमान में साक्षात्कार केवल सूचना प्राप्ति का ही साधन नहीं बल्कि मापन (Measurement) का भी प्रधान साधन बन गया है। वर्तमान में व्यावसायिक अनुकूलता (Vocational fitness) ज्ञात करने की एक विधि के रूप में इसके कई उद्देश्य प्रकट हुए हैं-सीधा संपर्क का अवसर मिलना, परिकल्पनाओं का स्रोत बनना, गुणात्मक तथ्यों को एकत्रित करना, व्यक्ति की मौखिक अभिव्यक्तियों का अध्ययन करना इत्यादि। वर्तमान के संदर्भ में साक्षात्कार की भूमिका एक शिक्षक तथा साक्षात्कारार्थी के व्यवहार में प्रचलनकर्त्ता एवं वार्तालाप के सुकोमल प्रोत्साहनकर्त्ता के रूप में उभरने लगी है। साक्षात्कार पद्धति से यह लाभ होता है कि आवेदक गलत प्रतिक्रियाएं (Take responses) सरलता से नहीं दे पाते हैं। साक्षात्कार की परिस्थिति यदि सुगठित होती है तो यह एक उत्प्रेरक (Big motivator) का भी काम कर सकती है। सूचना प्राप्ति का यह एकमात्र स्रोत है। साक्षात्कार के समय आवेदक यह संकेत खोजता रहता है कि बातचीत से उस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और साक्षात्कारकर्त्ता उसके बारे में क्या सोच रहे हैं? इन संकेतों द्वारा आवेदक को प्रबलीकरण (Reinforment) मिलता है। उसका हर अगला व्यवहार इसी प्रत्यक्षीकरण से निर्दिष्ट होने लगता है। इस प्रकार साक्षात्कार परिस्थिति में व्यवहार (Cercular behavior) हुआ करते हैं। इस तथ्य का प्रायोगिक समर्थन वर्पलैंक तथा ग्रीनस्पून (Verplank & Greenhspoon, 1955) के अध्ययन में मिलता है। काह्न तथा कॅनेल (Kahn and Cannel, 1957) ने साक्षात्कार के अभिप्रेरणात्मक पहलू को विशेष महत्त्व दिया है। इन्होंने साक्षात्कार की सफलता के लिए इन शर्तों को आवश्यक बताया है-पहुंच (Accessibility), संज्ञान (Congnition) तथा अभिप्रेरण (Motivation)। यदि साक्षात्कार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के दौरान ये शर्तें प्रश्न निर्माण, वास्तविक संचालन, उम्मीदवार के मानसिक स्तर, उसकी तत्परता और भाग लेने की इच्छा आदि विविध स्तरों पर पूरी हो जाती है तो इसके फलस्वरूप दिया गय मापन और निर्णय भी बेजोड़ होगा। एक सफल साक्षात्कारकर्त्ता मृदुभाषी के साथ धैर्यपूर्वक सुनने वाला भी होता है। सारी सूचनाएं साक्षात्कारकर्त्ता से होकर ही गुजरती है। इसलिए साक्षात्कारकर्त्ता का यह धर्म है कि वह काम की सूचनाओं को एकत्र करे, सूचना-संकेतों की तौल करे, उन्हें सही रूप से समन्वित करे और अन्त में आवेदक के चयन के बारे में निर्णय पर पहुंचे। साक्षात्कार की रचना वार्तालाप (Conservation) से ही होती है। इसलिए इसकी सफलता भी दोनों पक्षों की वार्तालापीय कौशल से निर्धारित होगी। किसी अप्रत्याशित घटना द्वारा कभी-कभी साक्षात्कार के दौरान स्थापित अनुबंध बिगड़ जाये तो ऐसी स्थिति में पुनः नए सिरे से संतुलन खोजने की स्थिति आ जाती है। उद्योगों में साक्षात्कार का चिकित्सात्मक उपयोग भी होने लगा है। सभी जगह संरचित साक्षात्कार (Structured interview) का उपयोग किया जाता है। वर्तमान में साक्षात्कार के सिद्धान्त (Theory) और व्यवहार (Practice) में अपार परिवर्तन हुए हैं। सायमंड्स (Symonds, 1939) ने साक्षात्कार की सफलता हेतु चार कारकों को महत्त्व दिया है-

1. आवेदन में निहित कारक
2. साक्षात्कारकर्त्ता में निहित कारक
3. साक्षात्कार के परिस्थिति संबंधी कारक
4. साक्षात्कार में प्रपत्र (फॉर्म) और विषय संबंधी कारक

साक्षात्कार विधि की अंतिम सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कर्मचारी संरक्षण (Personnel's protectionory), दूसरों की गोपनीयता के लिए आदर तथा प्राप्त सूचनाओं क सही उपयोग किया जाए। यदि ऐसा होता है तो साक्षात्कार विधि औद्योगिक समस्याओं के अध्ययन हेतु अमूल्य धरोहर सिद्ध हो सकती है।

15.2.2.1 साक्षात्कार की प्रमुख त्रुटियां—साक्षात्कार विधियों में त्रुटियों के कारण इस प्रणाली में पूरा भरोसा करना कठिन है। निरीक्षण से स्पष्ट है कि उम्मीदवारों का मूल्यांकन करने में विभिन्न साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा प्रचुर भिन्नताएं सामने आती हैं। साक्षात्कार एक सर्वाधिक आत्मनिष्ठ विधि है। चूंकि मूल्यांकनों में सतत अनुरूपता नहीं होती, इसलिए इस विधि को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। जो विधि विश्वसनीय नहीं है, वह सत्य होने का दावा भी नहीं कर सकती है। स्कॉट (Scott) हालिंगवर्थ (Holling wroth, 1922) वैनगर (Wanger, 1949) आदि ने इस पर अध्ययन किया। सभी ने इस विधि की विश्वसनीयता पर भरोसा पूर्ण रूपेण नहीं किया है। साक्षात्कार की कुछ प्रमुख त्रुटियां इस प्रकार हैं-

1. अनुकूलित प्रतिक्रियाएं (Conditioned Reactions)- अधिकांश साक्षात्कारकर्त्ता अनजाने में व्यर्थ की बातों के प्रति पूर्व स्थापित अनुकूलित प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होते हैं। जैसे-उम्मीदवार की ध्वनि, बोलने का ढंग आदि। अनुकूलित प्रतिक्रिया में हर व्यक्ति अपनी पसंदगी, नापसंदगी व्यक्त करता है किंतु वह इस बात से अवगत नहीं रहता कि उसे किस प्रकार विशिष्ट व्यवहार रुचिकर तथा अरुचिकर प्रतीत होते हैं।

2. आदतों का विश्वास में सामान्यीकरण (Belief in the generalisation of habits)- व्यक्ति की यह धारणा रहती है कि उम्मीदवार साक्षात्कार के समय अपनी जो आदत प्रकट करेगा, वही हर जगह प्रकट करेगा। लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से इसका कोई ठोस आधार नहीं है। इसलिए सामान्यीकृत आदत में विश्वास के फलस्वरूप किसी निर्णय पर पहुंचना कठिन है। साक्षात्कारकर्त्ता को इस प्रकार की आदतों से मुक्त रहने की चेष्टा करनी चाहिए अन्यथा इसके निर्णय दोषपूर्ण हो सकते हैं तथा सारे चयन कार्य पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

3. साक्षात्कारकर्त्ताओं का अचेतन पूर्वाग्रह (Uncouncious bias of Interviewer)- साक्षात्कारकर्त्ता यथासंभव स्वयं को पूर्वाग्रह से मुक्त रखने का प्रयत्न करता है। लेकिन हर संभव ईमानदारी के बावजूद कुछ ऐसी अचेतन मनोवृत्ति रचता है जिसके फलस्वरूप वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं के प्रति उसका प्रत्यक्षीकरण और व्यवहार विशेष रूपेण प्रभावित होता है। इसलिए साक्षात्कारकर्ता पूर्णरूपेण इन पूर्वाग्रहों से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकता है।

4. साक्षात्कार के समय सामान्य घबराहट (General Nervousness in Interview)- साक्षात्कार के समय आवेदक पूर्णतः उन्मुक्त न रहकर अधिकांश भयभीत दिखते हैं। यह भी संभव हो सकता है कि कोई उम्मीदवार घबराकर अपनी योग्यताओं और विचारों को बोर्ड के समक्ष सही रूप में नहीं रख पाता है। इसके विपरीत दुर्बल आवेदक बार-बार साक्षात्कार देने के कारण बोर्ड को प्रभावित कर लेते हैं। उम्मीदवार की योग्यता और उपलब्धि पर ही साक्षात्कार की सफलता निर्भर नहीं करती है बल्कि इस प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने की चतुराई और कौशल पर निर्भर करती है। योग्य व्यक्ति भी साक्षात्कार की कला में प्रवीण न होने पर असफल रहता है। इस प्रकार साक्षात्कार प्रणाली पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. अनुकरण प्रवृत्तियां (Minertic Tendencies)– इसमें व्यक्ति दूसरों के व्यवहारों तथा शिष्टाचारों का अनुकरण करता है। साक्षात्कार के समय यह प्रवृत्ति बार-बार देखने में आती है क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता का स्थान उच्च होने के कारण उम्मीदवार अनजाने में उसका अनुकरण कर उससे अपना तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करता है। साक्षात्कारकर्त्ता के मित्रता व्यक्त करने पर आवेदक में भी ऐसी प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होने लगती हैं। इन्हीं अनुकरणात्मक प्रवृत्तियों को गलत रूप से लेते हैं। फलत: साक्षात्कार में इसके निर्णय भी अयथार्थ होते हैं।

6. साक्षात्कार में व्यर्थ शब्दावलियों को परिभाषित करने की असमर्थता (Incompetency in Detaining Unuseful Vocabulary in Interview) – साक्षात्कार में त्रुटियों का सबसे बड़ा स्रोत संभवत: व्यर्थ शब्दावलियों का पूरा-पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं किया जाना है। साधारणत: साक्षात्कारकर्त्ताओं को उम्मीदवारों के शीलगुणों से संबंधित कोई सूची नहीं दी जाती है। यदि यह सूची दी भी जाती है तो शायद ही इन्हें स्पष्ट परिभाषित किया जाता है। स्वभावत: व्यक्तिगत निर्णय तथा व्याख्याओं के लिए रास्ता अधिक खुल जाता है। जिस कारण एक उम्मीदवार के चयन के प्रश्न पर साक्षात्कारकर्ताओं में घोर मतभेद हो जाता है। निर्णय संबंधी अशुद्धियों की संभावना बढ़ जाती है। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन कठिनाईयों के बावजूद भी साक्षात्कार की लोकप्रियता कम नहीं होती है। परस्पर आमने-सामने की इस प्रक्रिया में उम्मीदवार के व्यक्तित्व तथा व्यवहार संबंधी अनेक बहुमूल्य रहस्यों का भी उद्घाटन हो सकता है।

15.2.2.2 साक्षात्कार प्रणाली में सुधार के उपाय (Suggestions to improve interview)–साक्षात्कार एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा उम्मीदवारों को उनके भावों तथा विचारों को मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है। यह एक उपयोगी प्रणाली है लेकिन इसको उपयोगी चयन-प्रणाली घोषित करने में मुख्यतया दो प्रकार की कठिनाइयां आती हैं-

1. अपेक्षाकृत अधिक समय लगना
2. आत्मनिष्ठ प्रणाली होना जिसमें निर्णय संबंधी अंक प्रदान करने की वस्तुनिष्ठ पद्धति का न होना।

कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए सुधार संबंधी सुझाव निम्न हो सकते हैं–

1. साक्षात्कारकर्त्ता का सतर्कतापूर्ण चयन तथा समुचित प्रशिक्षण (Proper selection & training of interviewers)– साक्षात्कारकर्ता की कुशलता ही साक्षात्कार की सफलता पर आधारित होती है। इसलिए आवश्यक है कि साक्षात्कार समिति के सदस्यों का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को योग्य होना चाहिए। उसमें प्रत्यक्षीकरण की तीक्ष्णता, परिवर्तनशीलता, समायोजनशीलता तथा विविध साक्षात्कार लेने का अनुभव होना चाहिए। उसे साक्षात्कार कला में विशिष्ट प्रशिक्षण भी मिलना चाहिए। इसके बिना साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार को सफलतापूर्वक संपन्न नहीं कर सकता है। साक्षात्कार के समय इन्हें कोई एक ही प्रणाली अपनाने तथा समान आचार संहिता का पालन करने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। बिंघम तथा मूर (Bingham and Moor) ने भावी साक्षात्कारकर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु निम्न परामर्श दिए हैं-

1. साक्षात्कारकर्ता को आत्मविश्वास जीतने की रीतियों की जानकारी।
2. उम्मीदवार को तनावमुक्त तथा सहज स्वाभाविक बनाए रखने में प्रवीणता रखना।
3. उम्मीदवारों को बातचीत हेतु प्रेरित करना।
4. उम्मीदवार के दृष्टिकोण तथा चिंतन प्रकृति की शीघ्रता से परख।
5. साक्षात्कार के समय वक्ता अभिनय कम तथा श्रोता का अधिक करना।
6. पूर्वधारणाओं से अवगत रहना एवं उसी अनुरूप छूट देना।
7. उम्मीदवार की बातचीत से सूत्र निकालना तथा स्वत: उसी से उपयुक्त प्रश्न निकालना।

2. साक्षात्कारकर्ता के समक्ष मापने वाली शीलगुण सूची का होना (A list of traits to be measured should be given in advance)– शीलगुणों के मापन हेतु वस्तुनिष्ठ पद्धति होनी चाहिए। इसके लिए प्रामाणिक मूल्यांकन मानदंड का प्रयोग अपेक्षित है। मानदंड में जितने भी उपखंड दिखाए जाएं, निर्णय की सत्यता भी उतनी ही अधिक होती है। शीलगुणों की सूची को अनुभव द्वारा, कर्मचारी प्रबंधकों द्वारा व पर्यवेक्षकों द्वारा या तो अग्रिम रूप से तैयार कर लेना चाहिए अथवा सूची का निर्माण कार्य विश्लेषण पद्धति द्वारा होना चाहिए।

3. साक्षात्कार के प्रश्नों का स्पष्ट व पारदर्शी होना (Questions should be clear and transeparent)– प्रश्नों का निर्माण दोषपूर्ण नहीं होना चाहिए, जिससे उम्मीदवार को उसका अर्थ समझने में मुसीबत आती हो। साक्षात्कार में सामाजिक प्रश्नों का पूछना वांछनीय है जो इच्छित शीलगुणों से संबद्ध हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. साक्षात्कार मात्र बैठक न होकर इसका आयोजन अधिक (Sitting should be more than once)– साक्षात्कारकर्त्ताओं को विभिन्न समूहों में विभक्त होना चाहिए। प्रत्येक उम्मीदवार के समक्ष एक समूह कम से कम एक बार अवश्य साक्षात्कार करे। इससे निर्णय संबंधी अशुद्धियों को कम किया जा सकता है। साथ ही साक्षात्कार की विश्वसनीयता भी बढ़ सकती है। उपयोगी होते हुए भी यह सुझाव शायद ही व्यावहारिक रूप में प्रयुक्त होता है। कठिनाई इस बात की है कि साक्षात्कार में पहले से ही समय अधिक लगता है जो इस विधि की महत्त्वपूर्ण त्रुटि है।

5. उम्मीदवारों को वस्तुष्ठि क्रिया करने का प्रचुर अवसर प्रदान करना (Providing ample scope for objective performence)– साक्षात्कार का विचार विनिमय ही नहीं है। साक्षात्कार में साक्षात्कार्थी के बाह्य व्यवहारों को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इस स्थिति में साक्षात्कार व्यवहार अथवा परिस्थिति परीक्षणों (Situational Tests) की भांति कार्य करता है।

6. साक्षात्कार प्रमाणीकृत हो (Interview should be Authenticated – आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने अपने अनुभवों के आधार पर यह व्यक्त किया है कि साक्षात्कार विधि में वस्तुनिष्ठ पदों को सम्मिलित किया जा सकता है। अंक प्रदान करने की विधि भी इसी के सदृश अपनायी जा सकती है। साक्षात्कार में प्रयुक्त पदों के प्रामाणीकरण हेतु प्रत्येक उम्मीदवार से एक ही तरह के प्रश्न किए जायें तो इससे साक्षात्कार का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है। साक्षात्कार परस्पर मौलिक वार्तालाप की पद्धति है जिसमें बातचीत में नए विचार तथा चिंतन पैदा होते हैं। लेकिन बातचीत की दिशा की पूर्ण भविष्यवाणी करना कठिन होता है। साक्षात्कार को प्रामाणिक बनाने हेतु विवरण सूची (Check list) की एक मानवीकृत प्रति समिति के सदस्यों को दी जाये ताकि उसी के अनुरूप व्यवहार किया जा सके। इस सूची में वांछित शीलगुणों की सूची को अग्रिम बनाकर उम्मीदवार से मिलने वाले गुणों को ही चिन्हित करते हैं। इसे साक्षात्कार-कर्मचारी मूल्यांकन प्रपत्र कहते हैं।

गियन नामक विद्वान ने साक्षात्कार के लिए निम्न व्यावहारिक सुझाव दिए हैं–

1. साक्षात्कार प्रामाणिक हो। इसमें यथासंभव मैत्रीपूर्ण तथा सौहार्दपूर्ण वातावरण होना चाहिए।
2. साक्षात्कारकर्त्ता के समक्ष मूल्यांकन मानदंड अग्रिम रूप से हो।

यदि साक्षात्कार में सही तरीकों को अपनाया जाये तो इसे व्यावसायिक चयन का महत्त्वपूर्ण साधन बनाया जा सकता है। ब्लम तथा नेलर के शब्दों में साक्षात्कार हेतु अत्यधिक वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक इसकी सत्यता तथा उपयोग हेतु सर्वोत्तम साक्षात्कार विधि में संबंधित बहुत से प्रश्न अनुत्तरित होंगे।

15.2.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological tests)

आर. एन. गियन के अनुसार मनोवैज्ञानिक परीक्षण वे हैं जो कौशल, योग्यताओं अथवा व्यक्तिगत विशेषताओं का माप मनोमितीय प्रामाणिक व्यवहार के प्रतिचयनों द्वारा किये जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आगमन से उद्योगों को एक नई दिशा उपलब्ध हुई है। यों तो इनका उपयोग अधिकाधिक मात्रा में होता है किन्तु सबसे अधिक उपयोग कार्यकर्त्ता के चुनाव में होता है। वर्तमान में व्यावसायिक चयन में प्राथमिक साधन के रूप में ये महत्त्वपूर्ण रूप से सिद्ध हुए हैं। साक्षात्कार प्रणाली की आत्मनिष्ठता से जब प्रबंधकों को निराशा मिली तब लोगों का ध्यान मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की ओर गया। इन परीक्षणों के फलस्वरूप उम्मीदवार के चयन, स्थानान्तरण, प्रोन्नति, प्रशिक्षण तथा निर्देशन हेतु मूल्यांकन का विशुद्ध वस्तुनिष्ठ आधार प्राप्त हुआ। व्यावसायिक चयन में आवेदन-पत्रों तथा साक्षात्कार की तुलना में इन परीक्षणों का लाभ निश्चित है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा आवेदन-पत्र तथा साक्षात्कार की समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसमें व्यक्तिगत निर्णय का अवसर नहीं रहता है। इसमें सत्यता तथा विश्वसनीयता भी अधिक रहती है।

15.2.3.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के गुण (Merits)—मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रारंभ में ही दुर्बल उम्मीदवार की छंटनी कर देते हैं। ये परीक्षण भविष्य सूचक भी होते हैं। इनके द्वारा आवेदक की सफलता हेतु भविष्यवाणी की जा सकती है। इन परीक्षणों द्वारा किया गया चयन कुशलता वृद्धि में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। इन परीक्षणों द्वारा निम्न लाभ हो सकते हैं—

1. असफलता की संभावना में कमी (Reduced Possibility of Failures)—मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा चयन होने पर असफलता अपेक्षाकृत कम हो जाती है। वाड्सवर्थ (Wadsworth) तथा हैपनर (Hapner) ने अपने परीक्षणों में पाया कि इन परीक्षणों के बाद असफल होने वाले उम्मीदवारों की संख्या में अपेक्षाकृत कमी आ जाती है। स्ट्रामबर्ग (Stromberg) ने अपने अध्ययन में पाया कि इन परीक्षणों के उपयोग से चयन विधि के रूप में करने से योग्य आवेदन आकृष्ट होते हैं। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक अर्थ, सम्मोहनकारी महत्त्व भी होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. समुन्नत उत्पादन (Improved qualitative out put)– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उपयोग से उत्पादन के गुणपक्ष को बढ़ाया जा सकता है। वाइटेलेस (Viteles) ने अपने अध्ययन में पाया कि इन परीक्षणों के उपरांत पूर्व में होने वाली त्रुटियों में कमी आयी, जो क्रमशः घटती ही गई। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में वह क्षमता है कि जिसके द्वारा योग्य उम्मीदवार की खोज की जा सकती है।

3. दुर्घटनाओं में कमी (Reduced chances of accidents)– इन परीक्षणों के उपयोग से दुर्घटनाओं की संख्या में महत्त्वपूर्ण कमी होती है। दृष्टि रोग, शारीरिक अस्वस्थता, मांसपेशीय नियंत्रण क्षमता की दुर्बलता आदि विकृतियां किसी न किसी रूप में दुर्घटना के लिए जिम्मेदार होती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा इस प्रकार की विकृतियों का पूर्व में ही पता लग जाता है। जिससे भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं के प्रति सचेत हुआ जा सकता है तथा इन दुर्घटनाओं की संख्या में भी कमी लायी जा सकती है।

4. प्रशिक्षण खर्च में कमी (Limited cost of training)– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा चयनित तथा नियुक्त किए गए कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण में भी कमी आती है। बर्लिन नामक विद्वान ने अपने अध्ययन में पाया कि रेल चालकों को इन प्रयोगों के पश्चात पहले से आधा प्रशिक्षण ही देना पड़ा।

5. श्रम निर्गमन की घटी हुई संभावना (Reduced chances of labour turn over)– मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से श्रम निर्गमन की मात्रा में कमी आती है। वाड्सवर्थ तथा हेपनर (Wadsworth and Hepner) ने इन निष्कर्षों की संपुष्टि की है। कूक (Cook) नामक विद्वान् ने अपने अध्ययन से यह सिद्ध किया है कि जो कर्मचारी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में असफल होते हैं वे अन्ततः दस सप्ताह के भीतर अपना कार्य छोड़ देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इन परीक्षणों से उम्मीदवार की प्रवृत्तियों के पहले से ही ज्ञात होने पर आरंभ में ही उस कर्मचारी की छंटनी हो सकती है। कारखाने में श्रम-निर्गमन की समस्या से मुक्ति मिल सकती है।

15.2.3.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के दोष (Defects of psychological testing)– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का जहां एक ओर चयन आधार के रूप में कुशलता की वृद्धि कर अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी सीमाएं हैं जो इन परीक्षणों के साथ जन्मजात जुड़ी हुई है। जिन्हें अनदेखी भी नहीं किया जा सकता है। इस विधि की कुछ प्रमुख त्रुटियां हैं–

1. अपर्याप्तता (Inadequate)– कोई भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण अपने आप में इतना पूर्ण नहीं है कि उसे दूसरे अन्य प्रविधियों की सहायता ही न लेनी पड़े। ये परीक्षण मात्र विभिन्न प्रकार के कार्य संपादनों का निरीक्षण ही कर सकते हैं किंतु कारखाने की सहज स्वाभाविकता, संजीदगी आदि को परीक्षणों द्वारा पुनः उसी रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। इन परीक्षणों का उपयोग इन विधियों को पूर्ण बनाने में किया जा सकता है। कार्य की सफलता की भविष्यवाणी मात्र इन परीक्षणों के द्वारा ही सन्तोषप्रद रूप में नहीं की जा सकती है। क्योंकि यह तथ्य सामने आया है कि कार्य की सफलता और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्राप्तांकों का सह संबंध अधिक नहीं होता है।

2. प्रशिक्षित कर्मचारी वर्ग की कमी (Want of trained staff)– मनोवैज्ञानिक परीक्षण अधिकांशतः उन व्यक्तियों के हाथ में प्रयुक्त होते हैं जो या तो करणीय कार्य हेतु अयोग्य हों या जिन्हें ऐसे परीक्षणों के संचालन का पूर्व अनुभव नहीं होता है। नए परीक्षकों हेतु यह मनोरंजक कार्य है। इसलिए संभव है कि इसके परिणाम भी अतिरंजित ही हों। इस स्थिति में इन परीक्षणों का सही उपयोग नहीं होता है।

3. अनावश्यक भरोसा (Undue trust)– उद्योग में हर प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग करना सही नहीं है। क्योंकि प्रत्येक समस्या इन परीक्षणों से हल नहीं हो सकती है।

4. कार्यपालकों द्वारा आदर्श प्राप्तांक का गलत उपयोग (Wrong use of critical scores by executives) गैर मनोवैज्ञानिक कार्यपालकों द्वारा प्राप्तांक के बार-बार गलत प्रयोग से खतरा बना रहता है। कुछ कार्यकलाप इन प्राप्तांकों का इसी रूप में अनुसरण करने पर बल देते हैं। कुछ उम्मीदवार निर्धारित आदर्श प्रतिमान से अधिक प्राप्तांक उपलब्ध करने वालों का ही चयन करते हैं। आदर्श प्राप्तांक उपलब्ध न करने वाले उम्मीदवारों की छटनी कर दी जाती है। इससे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को कुख्याति ही मिलती है। श्रम निर्गमन की समस्या पहले से विकट हो जाती है।

5. अत्यधिक व्यय (Excessive cost)– इन परीक्षणों को जारी करने से व्यय अधिक होता है। इसके लिए प्रशिक्षित कार्य तथा सुसज्जित प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। सीमित साधन वाले उद्योगों के लिए यह कम संभव है।

4.0 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. साक्षात्कार पर प्रकाश डालिए।
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के गुण-दोषों की व्याख्या कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 16 जीवन विज्ञान, व्यवसाय संतुष्टि, विश्लेषण और औद्योगिक उपार्जन/उत्पादन

संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 कार्य-संतोष की परिभाषा
16.3 कार्य-संतोष के कारक
16.3.1 वैयक्कि कारक
16.3.2 कार्य सम्बन्धी कारक
16.3.3 प्रबंधकों से सम्बन्धित कारक
16.4 कार्य विश्लेषण
16.4.1 कार्य विश्लेषण की परिभाषाएं
16.4.2 कार्य विश्लेषण के उद्देश्य
16.4.3 कार्य विश्लेषण का उपयोग तथा मूल्य
16.4.4 नौकरी के लिये कार्य विश्लेषण
16.4.5 कार्य विश्लेषण की मनोवैज्ञानिक विधियां
16.5 कार्य विश्लेषण और जीवन विज्ञान की उपयोगिता
16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.7 संदर्भ ग्रंथ

16.0 प्रस्तावना (Introduction)

कार्य संतोष को औद्योगिक लक्ष्यों में सर्वोपरि लक्ष्य माना गया है। इसकी कामना सिर्फ कर्मचारी ही नही करता वरन् प्रबंधक एवं उद्योगपति भी करता है। जो व्यक्ति जिस कार्य का संपादन करता है, यदि उसमें उसे पर्याप्त सन्तोष मिलता है तो यह स्थिति संपूर्ण उद्योग के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है। इससे कार्य का गुण तथा मात्रा दोनों ही पक्ष अनुकूलतम रूप से प्रभावित होते हैं। इसलिए कार्य संतोष को उद्योग का साधन तथा साध्य माना जा सकता है।

कार्य-संतोष एक प्रकार की अभिप्रेरणा है जिसके फलस्वरूप कार्यकर्ता को अपना कार्य संपादन करने में आनंद की अनुभूति होती है। कार्य-संतोष सामूहिक न होकर व्यक्तिगत होता है। मनोवैज्ञानिक भाषा में सन्तोष एक ऐसी साधारण अनुभूति की अवस्था होती है जो व्यक्ति को अनुकूल उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार सन्तुष्टि वहीं होती है जहां उद्देश्य होता है। कार्य-सन्तोष व्यक्ति में निहित मनोवृत्तियों का परिणाम है। ये मनोवृत्तियां सिर्फ कार्य से ही संबंधित नहीं होती वरन् विशिष्ट तत्त्वों से भी होती हैं-जैसे पारिश्रमिक पर्यवेक्षण, प्रोन्नति आदि।

16.1 उद्देश्य (Objectives)

1. कार्य-संतोष की परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
2. कार्य विश्लेषण के बारे में समझ सकेंगे।
3. नौकरी के लिये कार्य विश्लेषण की उपयोगिता को जान सकेंगे।
4. कार्य विश्लेषण में जीवन विज्ञान की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

16.2 कार्य-संतोष की परिभाषा (Definition of Job-satisfaction)

कार्य-संतोष की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

ब्लम तथा नेलर के अनुसार-''कार्य-संतोष कर्मचारी की उन विविध मनोवृत्तियों का परिणाम है, जिन्हें कर्मचारी अपने व्यवसाय से संबद्ध कारकों तथा संपूर्ण जीवन के प्रति बनाये रखता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्य से सन्तुष्ट रहने वाला कर्मचारी स्वस्थ मानसिक सन्तुलन बनाए रखता है। स्वस्थ मानसिक सन्तुलन ही कर्मचारी को कार्य के लिए प्रेरित करता है। अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि जो कर्मचारी अपने कार्य से सन्तुष्ट नहीं रहता है उसकी उत्पादन क्षमता भी कम होती जाती है।

इस प्रकार कार्य सन्तोष व्यक्ति तथा उत्पादन दोनों को प्रभावित करता है। कर्मचारियों में सन्तुष्टि का भाव जागृत करने की आवश्यकता पर लगभग सभी अध्ययनों पर समान रूप से बल दिया गया है।

वाल्चिन (1947) का मत है कि ''ऐसा प्रयास होना चाहिए ताकि प्रत्येक औसत कार्यकर्ता को एक ऐसा व्यवसाय मिले जो मात्र जीविकोपार्जन का साधन न हो बल्कि जिसके अन्तर्गत स्वत: जीवन के सभी तत्त्व समाविष्ट हों।''

अत: यह कहा जा सकता है कि कार्य सन्तुष्टि व्यक्ति की एक ऐसी सुखद और धनात्मक सांवेगिक अनुभूति है जो स्वत: व्यक्ति को अपने ही कार्य अथवा कार्य अनुभवों के मूल्यांकन से उत्पन्न होती हो।

16.3 कार्य-संतोष के कारक (Factors of Job Satisfection)

कार्य-संतोष संबंधी कारकों को तीन वर्गों में बांटा गया है-व्यक्तिगत कारक, कार्य संबंधी कारक और प्रबंधकों से संबन्धित कारक।

16.3.1 वैयक्तिक कारक (Individual Factors)

इन कारकों का संबंध कर्मचारी से होता है। कर्मचारी के शीलगुण तथा भौतिक पक्ष उसके कार्य-संतोष को निश्चित ही प्रभावित करते है। ये प्रमुख हैं—

16.3.1.1 लिंग (Sex)-अनेक अनुसंधानों के निष्कर्षों से यह ज्ञात हुआ है कि प्राय: स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा सन्तुष्ट रहती हैं। मौर्स (Morse-1953) ने इस प्रकार का अध्ययन किया। स्त्रियों की आकांक्षाएं भी पुरुषों की अपेक्षा कम होती हैं साथ ही उत्तरदायित्व की अनुभूति भी कम होती है।

16.3.1.2 आयु (Age)-आयु का कार्य सन्तुष्टि पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन कुछ अध्ययन इसको उचित नहीं मानते हैं। सुपर नामक विद्वान का मत है कि 25-34 तथा 40-45 वर्ष तक की आयु वाले लोग अपने कार्य से असन्तुष्ट नहीं रहते हैं। मौर्स का मत है कि आयु की वृद्धि के साथ कार्य सन्तोष भी बढ़ता जाता है।

16.3.1.3 बुद्धि (Intelegence)-प्रत्येक कार्य के लिए बुद्धि आवश्यक होती है। बुद्धि के अभाव में किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण संभव नहीं होता है। अनुसंधानों द्वारा यह निष्कर्ष निकला है कि बुद्धि लब्धि और कार्य कुशलता में विशेष संबंध होता है। बुद्धि लब्धि और कार्य कुशलता का संबंध प्राय: अधिक पाया गया है। उद्योग में कार्य सन्तुष्टि व बुद्धि में घनिष्टता होती है।

16.3.1.4 आकांक्षा स्तर (Inspiration)-कर्मचारी में असमायोजन तथा असन्तोष की समस्या का मूल कारण आकांक्षा स्तर है। इस आकांक्षा के कारण वह अपनी क्षमताओं, साधनों आदि को नहीं देखता, सिर्फ उच्च शिखर पर पहुंचना चाहता है। वह अपनी परिस्थितियों को नजर अन्दाज करता है। जिसमें आकांक्षा का स्तर जितना अधिक होगा, सन्तोष भी उतना ही कम होता है।

16.3.1.5 शिक्षा (Education)-मौर्स का मत है कि शिक्षित व्यक्ति के कार्य सन्तोष की मात्रा भी अधिक होती है। किन्तु सैद्धांतिक पक्ष यह भी है कि पढ़े लिखे कर्मचारी अधिक असंन्तुष्ट रहते हैं।

16.3.1.6 व्यक्तित्व (Personality)-व्यक्तित्व दर्पण होता है। व्यक्ति की समग्रता का विकास व्यक्तित्व से ही होता है। मनस्तापी व्यक्ति अपने कार्य से असन्तुष्ट रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य मानसिक दोष भी कर्मचारी को असन्तुष्ट रखने में सहायक होते हैं। कार्य असन्तुष्टि के लिए कर्मचारी के शीलगुण उत्तरदायी होते हैं।

16.3.1.7 समायोजन (Adjusment)-कर्मचारी के लिए अपनी क्षमताओं का अवलोकन करना अति आवश्यक होता है। यह अवलोकन समायोजन का प्रथम चरण होता है। मानसिक असन्तुलन तथा अन्य विकृतियों से स्वयं को बनाने के लिए समायोजन क्षमता की आवश्यकता होती है। जो कर्मचारी जितना अधिक समायोजन स्थापित करता है वह उतना ही सन्तुष्ट रहता है।

16.3.1.8 पारिवारिक उत्तरदायित्व (Family responsibility)-यदि किसी कर्मचारी पर पारिवारिक भार ज्यादा होता है तो वह उतना ही ज्यादा परेशान रहता है। उसकी आमदनी सीमित हो आश्रितों की संख्या अधिक हो तो वह दबाव में चला जाता है। अधिक जिम्मेदारी से उसका मानसिक असन्तुलन होने लगता है। कर्मचारी चिन्तित रहने लगता है और असन्तुष्टि की भावना बढ़ती जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.3.2 कार्य संबंधी कारक (Factor related to job)

16.3.2.1 कार्य की प्रकृति (Nature of work)–यदि एक सा कार्य लगातार किया जाता है तो उससे अरोचकता, थकान आदि उत्पन्न होती है साथ ही असन्तोष भी बढ़ता है। यदि कार्यों में परिवर्तन किया जाय तो कर्मचारी का कार्य सन्तोष भी अधिक होता है। इसलिए कार्य सन्तोष को बढ़ाने के लिए कार्य की विविधता भी आवश्यक है।

16.3.2.2 कारखाने की रचना (Stucture of the factory)–अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि बड़े कारखाने की अपेक्षा छोटे कारखाने के कर्मचारी में कार्य सन्तोष अधिक पाया जाता है। कारण कि छोटे कारखाने में सुविधाएं तथा अवसर अधिक मिलते हैं। इसमें कर्मचारी पदोन्नति की आशा रखता है। मालिकों तथा कर्मचारियों से कर्मचारी अपने विचार प्रकट कर सकता है। कारखाने में छोटे आकार के कारण कर्मचारियों का आपसी संबंध भी अच्छा होता है। वे एक दूसरे की मनोवृत्तियों को प्रभावित कर सकते है। इसके विपरीत बड़े कारखाने में ये बातें कम प्रभावी होती हैं।

16.3.2.3 भौगोलिक दशाएं (Geographical Conditions)–छोटे लोग बड़े शहरों में रहने वालों की अपेक्षा ज्यादा सन्तुष्ट रहते हैं। बड़े शहरों में रहने वाले कुंठा के अधिक शिकार रहते हैं। इसी प्रकार समुद्री तटों पर रहने वाले पहाड़ों पर रहने वाले लोगों की अपेक्षा ज्यादा सन्तुष्ट होते हैं। बड़े औद्योगिक शहरों में कार्य करने वाले कर्मचारियों की अपेक्षा छोटे औद्योगिक शहरों में रहने वाले कर्मचारी ज्यादा सन्तुष्ट रहते हैं। छोटे शहरों में कर्मचारी को एक विशेष प्रकार का मनोवैज्ञानिक वातावरण मिलता रहता है। यही सन्तुष्टि का मूल स्रोत है।

16.3.2.4 व्यावसायिक प्रतिष्ठा (Job prestige) –जिन कार्यों का प्रतिष्ठा मूल्य अधिक होता है, कर्मचारी भी उन्हीं कार्यों के प्रति ज्यादा सन्तुष्ट रहते हैं। अनेक कार्य ऐसे हैं जिनमें वेतन, भविष्य की सुरक्षा, कार्य के कम घंटे तथा आवश्यक सुविधाएं मिलती तो हैं लेकिन उनकी सामान्य प्रतिष्ठा नहीं होती है। इसके विपरीत कम वेतन, अधिक परिश्रम तथा अपर्याप्त सुविधाएं मिलने पर भी यदि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा हो तो फिर भी कर्मचारी उसे अपनाना चाहता है। इस प्रकार समाज में जिन कार्यों की प्रतिष्ठा होती है, प्रत्येक व्यक्ति उन्हीं को अपनाना चाहता है। उसी में कर्मचारी सन्तुष्ट रहता है।

16.3.3 प्रबंधकों से संबन्धित कारक (Factor related to the Management)–इसके अन्तर्गत निम्न पक्ष हैं–

16.3.3.1 वेतन (Salary)–वर्तमान आर्थिक युग में जहां धन को एकमात्र माध्यम माना गया है वहां वेतन भी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष बन गया है। वेतन कभी कार्य सन्तोष का प्रधान कारक होता है तो कभी नहीं होता है। कुछ उद्योगपति तथा प्रबंधक मानते हैं कि वेतन की जागरूकता झगड़ों की जड़ है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि अन्य सुविधाएं प्राप्त होने पर भी यदि कर्मचारी का वेतन कम है तो वह असंन्तुष्ट रहता है। इसके विपरीत अधिक वेतन, कम सुविधाएं प्राप्त होने पर कर्मचारी सन्तुष्ट रहते है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि अधिक वेतन से कर्मचारि का सामाजिक प्रतिष्ठा का मूल्य अधिक होता है। इसलिए वह सन्तुष्ट रहता है।

16.3.3.2 पदोन्नति (Promotion)–पदोन्नति के अधिक अवसर होने पर कर्मचारी अधिक सन्तुष्ट रहता है। वेतन तथा भविष्य कर्मचारी की सन्तुष्टि की रीढ़ होती है। अधिक सुविधाएं होने पर भी यदि पदोन्नति के अवसर नहीं होते हैं तो कर्मचारी का मनोबल कम हो जाता है। ब्लम (Blum) का कहना है कि कम उम्र के कर्मचारी पदोन्नति के लिए अधिक चिन्तित रहते हैं। बौद्धिक व्यवसायों में कार्य करने वाले कर्मचारी भी पदोन्नति की इच्छा रखते हैं। पदोन्नति के लिए अयोग्य कर्मचारी भी पदोन्नति न होने पर असन्तुष्ट रहता है। इसलिए प्रत्येक कर्मचारी पदोन्नति की भावना रखता है। यदि कर्मचारी को ऐसा अवसर नहीं मिलता तो उसकी मनोवृत्तियां बदलती हैं जो सन्तोष में बाधक बनती हैं।

16.3.3.3 सहकर्मी की प्रकृति (Nature of the Colleogue)–मानिसक तनाव कर्मचारी के कार्य सन्तोष को कम कर देता है। यदि कर्मचारी का सह कर्मियों के साथ अच्छा संबंध है तो वह मानसिक सन्तुलन में सहायक बनता है। यदि सहकर्मी गुमराह करे और कर्मचारी उसमें फंस जाय तो इससे वह असन्तोष का अनुभव करता है।

16.3.3.4 उत्तरदायित्व की भावना (Felling of Responsibility)–वॉटसन (Watson) ने अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि कर्मचारियों को कम उत्तरदायित्व का कार्य दिया जाता है तो वह अधिक सन्तुष्ट रहता है। इसके विपरीत अधिक उत्तरदायीपूर्ण कार्य सौंपने पर कर्मचारी असन्तुष्ट रहता है। उत्तरदायित्व एक प्रकार की प्रकृत्ति बल प्रदान करता है। उत्तम मनोबल से कर्मचारी में सन्तोष की भावना बनी रहती है। यही सन्तोष भावना कर्मचारी को कार्य के प्रति सक्रिय रखती है। सक्रियता ही कार्य सन्तोष के लिए उत्तरदायी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.4 कार्य विश्लेषण (Job Analysis)

औद्योगिक मनोविज्ञान का मूल उद्देश्य यह है कि उचित कर्मचारी के लिए उचित कार्य निश्चित करना। यह कार्य केवल मनोवैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा कर्मचारी के चयन करने मात्र से संभव नहीं होता है बल्कि चयन किए जा रहे कर्मचारी के पर्याप्त ज्ञान पर भी निर्भर करता है। उद्योग में उन्नति के लिए कर्मचारी के गुण और योग्यताओं के अतिरिक्त कार्य के प्रत्येक पक्ष का ज्ञान होना भी अपेक्षित है। कार्य की आवश्यकताओं और विशेषताओं का अध्ययन ही कार्य विश्लेषण कहलाता है।

उपयुक्त कर्मचारी की नियुक्ति कर्मचारी विश्लेषण पर हो निर्भर नहीं करती वरन् व्यावसायिक क्रियाओं की आवश्यकता के अध्ययन पर भी आधारित होती है। वाइटल्स (Viteles) ने अपने विचार दिए हैं- The first step in the fitting men to jobs and in maintaining fitness at work, is to make comprehensive study of occupational activities and requirement."

कर्मचारी का चयन तब तक नहीं होता है जब तक उसे कार्य की दशाओं का अच्छी तरह से ज्ञान नहीं होता है। अनावश्यक थकान कम करना, दुर्घटनाओं को रोकना, प्रेरणाओं की तीव्रता को बढ़ाना आदि के लिए कार्य दशाओं का ज्ञान आवश्यक है जो इन सभी पक्षों को प्रभावित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस विधि के द्वारा उपयुक्त पक्षों से संबंधित सूचनाएं प्राप्त होती हैं, वह कार्य विश्लेषण है।

16.4.1 परिभाषाएं (Definitions)

कुछ विद्वानों द्वारा कार्य विश्लेषण की निम्न परिभाषाएं दी गई हैं-

वाइटल्स (Viteles) ने टीड, मेटकॉफ तथा हैकेट के विचारों को निम्न प्रकार से समझाया है-

टीड तथा मेटकॉफ-कार्य विश्लेषण कार्य के संपूर्ण तथ्यों का एक वैज्ञानिक वर्णन एवं अध्ययन है जो उन कारकों को अभिव्यक्त करता है जिन पर कार्य के क्रियात्मक पक्ष निर्भर करते हैं।

हैकेट (Heckett)-इस विधि के द्वारा कार्य के आवश्यक तत्त्वों का निर्धारण किया जाता है और कर्मचारियों को उनके गुणों का पता लगाया जाता है। जिसके द्वारा वह अपने कार्य को सफलता पूर्वक करता है।

वाइटल्स के अनुसार-कार्य विश्लेषण का संबंध उन विधियों से होता है जिनके द्वारा कार्य संबंधी सूचनाओं को संकलित किया जाता है और कर्मचारी की आवश्यकताओं के ज्ञान की प्राप्ति की जाती है।

16.4.2 कार्य विश्लेषण के उद्देश्य (Purposes of Job Analysis)

माइन के विचार में कार्य के चार लक्ष्य हैं—उन्होंने इन्हीं लक्ष्यों के आधार पर कार्य विश्लेषण को चार भागों में बांटा है—

1. कार्य करने की विधियों में सुधार के लिए
2. स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के लिए
3. कर्मचारियों के प्रशिक्षण हेतु
4. नौकरी के लिए कार्य विश्लेषण जैसे—चयन स्थानान्तरण, पदोन्नति, वेतन आदि।

16.4.3 कार्य विश्लेषण का उपयोग तथा मूल्य (Uses and value of Job Analysis)

लोश तथा सेल्टर (Lawhe and Salter) के अनुसार कार्य विश्लेषण के चार प्रमुख उपयोग हैं-

1. प्रशिक्षण सामग्री का अनुमान   2. कर्मचारी विवरण की स्थापना
3. कार्य क्षमता का सुधार   4. वेतन मापदंड का निर्धारण।

जेग्रा (Zegra) ने कार्य विश्लेषण संबन्धित साहित्य के 401 लेखों को जांच करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि कार्य विश्लेषण के लगभग 24 उपयोग हो सकते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है-

1. कार्य की श्रेणी तथा वर्गीकरण
2. वेतन निर्धारण तथा मानकीकरण
3. अन्य विवरण संबंधी प्रश्न
4. कार्य के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का स्पष्टीकरण
5. हस्तांतरण तथा पदोन्नति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. उचित मांगों का समायोजन

7. कर्मचारियों और प्रबंधकों के विभिन्न स्तरों के मध्य सर्व साधारण समझ की स्थापना

8. पदोन्नति चरण की परिभाषा तथा रूपरेखा

9. दुर्घटनाओं की खोज करना

10. त्रुटिपूर्ण कार्यों एवं विधियों की ओर संकेत करना या अधिक प्रयास करना

11. मशीन की उचित देखभाल, कार्य तथा समायोजन

12. समय तथा गति अध्ययन

13. उच्चाधिकारी की सीमाओं की परिभाषा

14. वैयक्तिक योग्यता स्तर की ओर संकेत करना

15. शिक्षा तथा प्रशिक्षण

16. कार्य स्थानत्व की सुगमता प्रदान करना

17. थकान और स्वास्थ्य अध्ययन

18. वैज्ञानिक मार्गोपदेशन

19. व्यावसायिक उपचार के लिए कार्यों का पता लगाना।

इन उपयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विश्लेषण एक ऐसी आधारशिला है जिस पर कार्य क्षमता पद्धति आधारित होती है। यदि इन प्रांरभिक नियमों का पालन नहीं किया जाए तो औद्योगिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है।

16.4.4 नौकरी के लिए कार्य विश्लेषण (Job Analysis for Employment Purpose)

नौकरी के लिए कार्य विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य कार्य के उन तत्वों का विश्लेषण करना है जो नये कर्मचारी की नियुक्ति तथा पुराने कर्मचारी का स्थानान्तरण या पदोन्नति में उपयोगी हो। कार्य विश्लेषण के दो पक्ष होते हैं-कार्य पक्ष और कर्मचारी पक्ष। कार्यपक्ष में कार्य की आवश्यकताएं, अन्य बातें तथा कर्मचारी की योग्यताएं देखी जाती हैं। इन्हीं दो पक्षों का संयुक्त रूप कार्य विश्लेषण होता है। वाइटल्स ने कार्य विश्लेषण हेतु निम्न सूची को काम में लिया जिसमें कार्य और कर्मचारी से संबन्धित वर्णन दिए गए हैं-

1. कार्य का अभिज्ञान
2. कर्मचारियों की संख्या
3. कर्त्तव्यों का वर्णन
4. मशीन का विवरण
5. क्रियाओं का विश्लेषण
6. कार्य की दशाएं
7. वेतन व अनार्थिक प्रलोभन
8. दूसरे अन्य कार्यों से संबन्ध
9. स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के अवसर
10. प्रशिक्षण की अवधि तथा स्वरूप
11. कर्मचारी से संबन्धित योग्यताएं-

(I) सामान्य-आयु, लिंग, राष्ट्रीयता, वैवाहिक स्थिति

(II) शारीरिक (Physical),

(III) शैक्षिक (Educational),

(IV) पूर्व अनुभव (Previous Experience)

(V) सामान्य तथा विशेष योग्यताएं (General and Special Abilities)

(VI) स्वभाव तथा चरित्र (Temperament and character)

12. विशेष लाभदायक तथा हानिकारक गुण दोष (Special Advantageous or Disadvantageous Features)

13. नौकरी की शर्तें (Employment Conditions)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अधिकतर उद्योगों में कार्य विश्लेषण किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों की इन कार्यों के लिए कोई आवश्यकता नही समझी जाती है। फलस्वरूप कार्य विश्लेषण के दोनों पक्षों में किसी पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। परम्परानुसार कर्मचारियों हेतु कर्त्तव्य की सूची बनाई जाती है।

16.4.5 कार्य विश्लेषण की मनोवैज्ञानिक विधियां (Psychological Techniques of Job Analysis)

वाइटल्स के अनुसार कार्य विश्लेषण की मुख्य सात विधियां मानी गई हैं। जो इस प्रकार हैं-

16.4.5.1 वैयक्तिक मनोरेखांकन विधि (The Individual Psychographic Method)–अपनी इच्छानुसार चुने व्यवसाय में कार्यरत पूर्वोत्तर सफल व्यक्ति की सफलता को आधार मानकर एक मापदंड तैयार किया जाता है। ऐसे सफल व्यक्ति के गुणों की सूची रेखाचित्र द्वारा दर्शायी जाती है। व्यवसाय में सफलता हेतु मनोवैज्ञानिक आधारों को निर्मित करने के लिए पारिवारिक इतिहास, वैयक्तिक विकास, स्मृति, भाषा, योग्यता, प्रतिक्रिया काल, आदतें आदि को ध्यान में रखा जाता है। इन्हीं पक्षों के आधार पर सफल व्यक्ति में गुणों और मानसिक प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण होता है। विश्लेषण हेतु साक्षात्कार, निरीक्षण और परीक्षणों को भी प्रयोग में लिया जाता है। परिणामों को वैयक्तिक मनोरेखांकन द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस मनोरेखांकन द्वारा एक मापदंड तैयार किया जाता है, जिसके द्वारा व्यवसाय में सफलता हेतु गुणों का पता चलता है। व्यक्ति के चयन के समय इन्हीं गुणों की आवश्यकता पर ध्यान दिया जाता है।

16.4.5.2 प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)–कार्य विशेष गुणों तथा आवश्यकताओं की जानकारी हेतु यह विधि सबसे उपयुक्त मानी गयी है। 1916 में लिपमैन (Lipmann) नामक विद्वान ने 86 प्रश्नों की प्रश्नमाला तैयार की, ये प्रश्न ऐसे हैं जिनसे कार्य के आवश्यक तत्त्वों को मापा जा सकता है। इस प्रश्नावली का उपयोग व्यक्तियों, कर्मचारियों के संगठनों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण में लगे व्यक्तियों पर किया गया। 1947 में इसके 105 तथा कुछ समय बाद 148 प्रश्न रखे गये। अलरिच्स (Alurichs) नामक विद्वान ने भी ऐसा ही प्रयास किया। उनकी प्रश्नावली उच्च व्यवसायों के लिए मानसिक विशेषताओं तथा आवश्यक गुणों का मापन करने के लिए बनाई गई थी। इस प्रश्नावली के प्रश्नों को चार भागों में बांटा गया-भौतिक योग्यताएं (Physical Aptitudes), मनोभौतिक अभियोग्यताएं (Psychophysical Aptitudes), मानासिक अभियोग्यताएं (Mental Aptitudes), अनुकूलनशीलता (Adaptibility)। इस विधि के भी अनेक दोष हैं। यह विधि आत्मगत होती है। प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक व्यक्ति के लिए परिवर्तनर्शल होता है। विशिष्ट गुणों को सही रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता है। कर्मचारी के उत्तर पूर्णत: सही नहीं माने जाते हैं। यदि अच्छे निरीक्षक के निर्देशन में प्रश्नावली भरवाई जाए तो उत्तरों को वैध माना जा सकता है।

16.4.5.3 कार्य मनोरेखांकन विधि (The Job Psychographic Method)–व्यावसायिक योग्यताओं के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु तीन बातें आवश्यक हैं-विशिष्ट मानसिक गुणों क वर्गीकरण, मूल्यांकन की मापन विधि तथा प्रशिक्षित निरीक्षकों द्वारा कार्य की क्रियाओं का प्रत्यक्ष परीक्षण। वाइटल्स ने इन तीनों आधारों को कार्य विश्लेषण हेतु कार्य मनोरेखांकन विधि में प्रयोग किया। ये तीन आधार इस प्रकार हैं-

1. विशिष्ट मानसिक गुणों का साधारण वर्गीकरण
2. मूल्यांकन की मानक विधि
3. प्रशिक्षित निरीक्षकों द्वारा क्रियाओं का प्रत्यक्ष परीक्षण।

इस विधि का प्रयोग करते हुए प्रत्येक गुण का मूल्यांकन 'पांच बिन्दुओं के मान' (Five Point Scale) पर किया जाता है। जो इस प्रकार हैं-

1. अनावश्यक या नगण्य (Negligible)
2. विशेष महत्त्वपूर्ण (Barely Significant)
3. महत्त्वपूर्ण या आवश्यक (Significant)
4. बहुत आवश्यक (Of great Importance)
5. बहुत अधिक आवश्यक (of at most Importance)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपर्युक्त मापदंड पर व्यक्ति विशेष के गुणों को रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है तो उसे कार्य मनोरेखांकन कहा जाता है। इसे इस प्रकार दर्शाया गया है-

कार्य-खराद की मशीन चलाना-

1. शक्ति
2. नियंत्रण
3. ध्यान
4. एकाग्रता
5. स्फूर्ति
6. दृष्टि
7. स्मृति
8. समझ एवं सूझ
9. निरीक्षणात्मक योग्यता
10. बुद्धि
11. निर्णय
12. तार्किक विश्लेषण
13. प्रत्यक्षीकरण
14. धैर्य

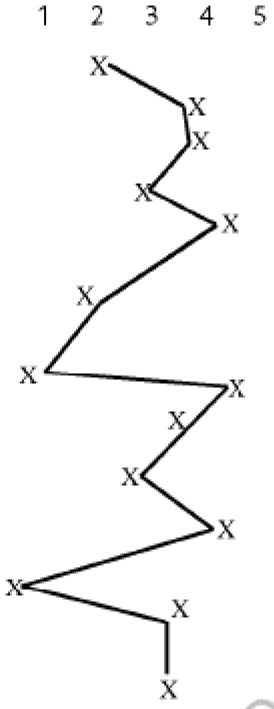

उपर्युक्त रेखाचित्र द्वारा यह ज्ञात होता है कि जिन गुणों के सामने पांचवे कालम का चिह्न है वे एक खराद मशीन चलाने वाले के लिए अनिवार्य होने चाहिए, जैसे-नियंत्रण, ध्यान, स्फूर्ति, समझ एवं सुझ में चार गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए। इस विधि द्वारा कार्य के घातक तथा पोषक तत्त्वों को ज्ञात किया ज सकता है। लेकिन इस विधि का यह दोष है कि इससे कुशल प्रशिक्षित निरीक्षक का लगभग अभाव रहता है। यदि कोई हो भी तो वे इतने निपुण नहीं होते हैं।

16.4.5.4 परीक्षण द्वारा कार्य विश्लेषण (Job Analysis by Test)-कार्य संपादन हेतु मानसिक योग्यता आवश्यक होती है। उनका विश्लेषण अनेक प्रकार की विधियों पर आधारित होता है। जिन विधियों का वर्णन किया गया है, वे सब आत्मगत हैं। इस दोष को दूर करने हेतु परीक्षण विधि को उपयुक्त माना गया है।

लिंक (Link) ने कार्य विश्लेषण से संबन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण परीक्षणों का निर्माण किया। इन परीक्षणों के प्रयोग के पश्चात् चुने हुए परीक्षणों को अधिक सफल माने जाने वाले कर्मचारियों पर किया। सबसे अधिक आए फलांकों को कार्य की योग्यता मापन के लिए छांटा गया। इस प्रकार जो परीक्षण माला बनी, उसी आधार पर नये कर्मचारी चुने जाने लगे।

ओ कोनर (O'Counor) नामक विद्वान ने भी इस प्रकार के अनेक परीक्षणों को निर्मित किया। हल द्वारा बनाई गयी 30-40 परीक्षणों की परीक्षण-माला बनाई गई जिसका कार्य सराहनीय था पर व्यावहारिक नहीं।

16.4.5.5 क्रिया विधि द्वारा कार्य विश्लेषण (Job Analysis by Activity)-क्रिया विधि द्वारा कर्मचारी की कार्य के समय की शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है इस विधि के द्वारा चार्टर्स (Charters) तथा ह्विटले (Whitley) ने सचिवालय में कार्यरत कर्मचारियों के गुण एवं जिम्मेदारियों का विश्लेषण किया। इनके अलावा अन्य विद्वानों ने भी भिन्न-भिन्न क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों पर इस विधि का प्रयोग किया।

16.4.5.6 समय एवं गति अध्ययन (Time and Motion Study)-क्रियाविधि द्वारा कार्य विश्लेषण विधि को टेलर द्वारा विकसित किया गया था। कुछ समय पश्चात् गिलब्रेथ पति-पत्नी ने इस विधि को और अधिक वैज्ञानिक बना दिया था। क्रमबद्धता के कारण टेलर की क्रियाविधि समय एवं गति अध्ययन के रूप में प्रकट हुई। उसने प्रत्येक कार्य को छोटे-छोटे अंशों में बांट दिया। इससे उसने यह देखा कि प्रलोभन दिए जाने पर कर्मचारी की कार्योत्पादन में पहले की अपेक्षा कितना समय लगता है। इसके पश्चात् गति का अध्ययन किया। अर्थात् कार्य को छोटे अंशों में बांट देने पर व्यक्ति कितनी गतियों को करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गिलब्रेथ का कार्य इस दिशा में महत्त्वपूर्ण रहा। उसे ही समय एवं गति अध्ययन का जन्मदाता माना जाता है। इसमें कार्य को छोटे अंशों में बांटकर शारीरिक गतियों का विश्लेषण करने के पश्चात् आवश्यक गतियों को समाप्त कर दिया जाता है। सर्वप्रथम गिलब्रेथ ने विराम घड़ी, फिर कैमरा का उपयोग इस कार्य के लिए किया। तदुपरान्त कुछ मशीनों द्वारा यह कार्य होने लगा। इस विधि का प्रयोग करके कम समय तथा कम शक्ति से अधिक लाभ उठाया जा सकता है।

16.4.5.7 प्रवीणता का विश्लेषण (Analysis of Skill)–यह पद्धति समय तथा गति का ही विस्तृत रूप है। इसमें गति तथा समय का अध्ययन कार्य की परिस्थितियों में पाई जाने वाली मनोवैज्ञानिक योग्यताओं के आधार पर किया जाता है। इस पद्धति को फेअरचाइल्ड (Fairchild) ने विकसित किया। इस विधि का उपयोग उसने धातु व्यापार (Metat Trades) में कार्यरत कर्मचारियों की प्रवीणता या कौशल तथा विशेषताओं का विश्लेषण करने के लिए किया। उपर्युक्त सभी विधियां दोषपूर्ण तथा विभिन्न कार्यों के लिए समान उपयोगी न होने पर भी इन सभी विधियों का उपयोग उद्योग में किसी न किसी रूप में किया जाता है।

16.5 जीवन विज्ञान की उपयोगिता (Utiligy of Science of Living)

व्यक्ति अपने जीवन में सुख एवं शांति की आवश्यकता महसूस करता है। इसी के लिए वह प्रयत्नशील रहता है। यदि कार्य में वह सफल हो जाता है तो उसे संतुष्टि की अनुभूति होती है। इसके विपरीत असफल होने या मनोनुकूल न होने पर वह दु:खी एवं असंतुष्ट हो जाता है। यह असंतुष्टता यदि लंबे समय तक बनी रहे तो व्यक्ति इसमें प्रभावित हो जाता है। परिणामस्वरूप निषेधात्मक मनोवृत्तियां उत्पन्न होती हैं जो व्यक्ति के लिए अच्छा लक्षण नहीं है। इसी तरह उद्योगरत कर्मचारी भी अपने कार्य क्षेत्र में किसी भी पक्ष से असंतुष्ट रहे तो इसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है क्योंकि कर्मचारी ही उद्योग की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। कर्मचारी की संतुष्टता और असंतुष्टता सीधे उत्पादन को प्रभावित करती है। इसलिए औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने हेतु यह आवश्यक है कि कर्मचारी संतुष्ट रहे। कर्मचारी की असंतुष्टता उद्योग से संबंधित भी हो सकती है और उसके व्यक्तिगत स्तर पर भी। आवश्यकता है कि कर्मचारी का आंतरिक पक्ष मजबूत हो। उसकी अन्तर्दृष्टि जागृत हो। इसका परिणाम होगा विधायक भावों का विकास।

जीवन विज्ञान के प्रायोगिक पक्ष द्वारा अन्तर्दृष्टि को जागृत किया जा सकता है। जब व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि जागृत होती है तो बाहरी आकर्षण उसे प्रभावित नहीं करते हैं। समस्याएं उसे प्रभावित नहीं करती हैं। उसकी अनेक इच्छाएं, आवश्यकताएं स्वतः ही नियंत्रित हो जाती हैं। इसलिए अन्तर्दृष्टि का जागरण महत्त्वपूर्ण उपाय है। अन्तर्दृष्टि जागृत होने पर परिणति होगी–मानसिक शांति, प्रसन्नता, धैर्य, अनासक्ति, विवेक, चेतना का जागरण आदि। यदि उद्योगरत कर्मचारी में ये परिवर्तन हों तो कर्मचारी अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहेगा। निष्ठापूर्वक अपना हर कार्य करेगा। इसी का परिणाम होगा–औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि। उत्पादन बढ़ाने के लिए कर्मचारी की संतुष्टि आवश्यक होती है क्योंकि कर्मचारी उद्योग में एक महत्त्वपूर्ण इकाई होता है। कर्मचारी का आंतरिक पक्ष मजबूत है तो कर्मचारी अपने कार्य पर विचलित नहीं हो सकता है। इसलिए कर्मचारी की संतुष्टि उद्योग के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह औद्योगिक विकास के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है। अत: कहा जा सकता है कि उत्पादन की गति में वृद्धि के साथ ही औद्योगिक विकास भी होगा।

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्य संतोष क्या है? कार्य संतोष के प्रमुख कारक कौन-से हैं?
2. कार्य विश्लेषण क्या है? इसका उद्देश्य एवं उपयोग क्या है?
3. कार्य विश्लेषण की मनोवैज्ञानिक पद्धतियां कौन-सी हैं?

16.7 संदर्भ पुस्तकें

1. औद्योगिक मनोविज्ञान-डॉ. आर. के. ओझा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 5–जीवन विज्ञान और औद्योगिक जगत–II

इकाई : 17 औद्योगिक उत्साह और जीवन विज्ञान प्रशिक्षण

संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 मनोबल की प्रकृति तथा परिभाषा
17.3 मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक
17.3.1 वेतन
17.3.2 पदोन्नति
17.3.3 कार्य दशाएं
17.3.4 अपने कार्य के विषय में जानने की इच्छा
17.3.5 पद स्थिति
17.3.6 सामाजिक कारक
17.4 मनोबल के निर्धारक
17.4.1 सामूहिक सहयोग की भावना
17.4.2 लक्ष्य की आवश्यकता
17.4.3 लक्ष्य की प्रकृति
17.5 औद्योगिक मनोबल की वृद्धि की पद्धतियां
17.5.1 विशेषज्ञ विधि
17.5.2 औद्योगिक जासूस विधि
17.5.3 औद्योगिक परामर्शदाता विधि
17.5.4 कर्मचारी समस्या विधि
17.6 औद्योगिक मनोबल का मापन
17.7 औद्योगिक मनोबल और जीवन विज्ञान की उपयोगिता
17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.9 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.0 प्रस्तावना (Introduction)

उत्साह या मनोबल शब्द का प्रयोग प्राय: औद्योगिक क्रांति के विकास से पूर्व सेना के कार्यों तथा सैनिक क्षेत्र में किया जाता था। सामाजिक क्षेत्रों में कभी–कभी इसका उपयोग किया जाता था। वर्तमान में मनोबल की इतनी महत्ता हो गई है कि स्कूल और उद्योग में सार्वजनिक रूप से प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग भले ही किसी भी क्षेत्र में किया जाय पर इसका केन्द्रीय अर्थ सभी लोगों द्वारा पूर्ण सहयोग की भावना के संदर्भ में होता है। समूह संरचना में ही मनोबल की प्रक्रिया संचालित होती है। मनोबल समूह की देन है। समूह के व्यावहारिक पक्ष के अध्ययन होने पर मनोबल को महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में विशिष्ट स्थान प्राप्त होगा।

कभी उद्योग में उत्पादन वृद्धि के लिए मशीनों को महत्त्व दिया जाता था तो कभी कर्मचारी की क्षमता, उसका रहन–सहन तथा मानसिक सन्तोष को मशीन से अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया। वर्तमान में प्रोत्साहन को आवश्यक माना जाने लगा है जो मनोबल का आधार है। जब कर्मचारी में रूचि होगी वह सुख की अनुभूति करेगा तो उत्पादन में स्वत: ही वृद्धि होगी, इसलिए मनोबल उत्पादन की वृद्धि में सहायक होता है।

17.1 उद्देश्य (Objectives)

1. मनोबल की प्रकृति तथा परिभाषा के बारे में जान पायेंगे।

2. औद्योगिक मनोबल की वृद्धि की पद्धतियां पढ सकेंगे।

3. औद्योगिक मनोबल में जीवन विज्ञान की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

17.2 मनोबल की प्रकृति तथा परिभाषा (Nature and Definition of Morale)

औद्योगिक मनोबल का तात्पर्य उद्योग में कर्मचारी की उस अनुभूति से है जिसमें वह समूह के सामान्य उद्देश्यों में विश्वास करता है। कार्य के प्रति निष्ठापूर्वक तथा सहयोग की भावना, धैर्य तथा विषम परिस्थितियों में व्यक्तिगत लाभ को छोड़कर समूह की आचार- संहिता के अनुरूप कार्य करता है। यदि इस प्रकार के विचार कर्मचारी के होंगे तो औद्योगिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु उसमें अदम्य साहस बना रहेगा। इसे ही कर्मचारी का मनोबल कहा जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में यही मनोबल औद्योगिक मनोबल के नाम से जाना जाता है।

ब्लम के अनुसार ''औद्योगिक मनोबल कर्मचारी की वह भावना होती है जो उसे इस बात की अनुभूति कराती है कि वह अपने कर्मचारी समूह का एक सदस्य है तथा समूह के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वह अपने समूह में पूरा विश्वास करता है।''

गियन (1958) के अनुसार ''व्यक्ति की आवश्यकताओं की तृप्ति उस सीमा तक होती है जहां वह अपनी कार्य परिस्थिति से सन्तुष्टि की आशा करता है, वही मनोबल है।''

औद्योगिक मनोबल पर अनुसंधान करने वालों ने इसे अनेक रूपों में परिभाषित किया। किसी ने मनोबल को समूह एकता का प्रतीक माना तो किसी ने व्यक्तिगत समायोजन, किसी ने मनोबल को कार्य में संलग्नता के भाव की अनुभूति की दशा माना। इसी प्रकार इसे प्रसन्नता का द्योतक, संघर्ष हेतु समूह में एक समान जोश बनाए रखने की पद्धति आदि की संज्ञा दी जाती है।

ब्लम के विचार में औद्योगिक मनोबल को चार रूपों में परिभाषित किया जा सकता है–

1. समूह एकता की अनुभूति
2. लक्ष्य के लिए आवश्यकता
3. लक्ष्य के प्रति प्रगति
4. समूह में व्यक्ति के कुछ कार्य जिनके द्वारा वह सामूहिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

किसी भी समूह के मनोबल को बनाए रखने का अर्थ है कार्य के प्रति लगन (Perseveration) उद्योग धंधों में विभिन्न रूपों में मनोबल शब्द का प्रयोग होता है। यह आवश्यक नहीं कि अपने औद्योगिक वातावरण से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट रहने वाले कर्मचारियों का मनोबल स्तर भी ऊंचा ही हो। कार्य परिस्थितियों से असन्तुष्ट कर्मचारी कारखाने के मनोबल को गिरा देते हैं। मनोबल भी दो प्रकार का होता है-उच्च और निम्न। हड़ताल के समय कर्मचारियों का मनोबल ऊंचा होता है तो उद्योगपति की दृष्टि में वह निम्न स्तर का होता है। तालाबंदी के समय उद्योगपति का मनोबल ऊंचा होता है तो कर्मचारी की दृष्टि में वह निम्न स्तर का होता है। इस प्रकार इन दोनों परिस्थितियों में मनोबल एक सापेक्ष शब्द है जिसका अर्थ समय, परिस्थिति, स्थान, समूह आदि के साथ परिवर्तित होता रहता है। यदि कर्मचारियों में मनोबल का विकास होता है तो उनकी कार्य क्षमता का विकास होता है और उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

17.3 मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Of Influencing Morale)

सभी क्षेत्रों में मनोबल के स्थायित्व एवं गतिशीलता के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को उसके कार्य से सुख की अनुभूति हो तथा उसे सदैव कार्य करने में सन्तोष हो। कर्मचारी के मनोबल को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों का नियंत्रण कर्मचारी की मानसिक दशा एवं सन्तोष की अनुभूति से होता है। कार्य के प्रति जितना सन्तोष होगा, कर्मचारी का मनोबल भी उतना ही अधिक होगा। कार्य सन्तोष ही एक ऐसी दशा है जो मनोबल को प्रभावित करने वाले कारकों को संचालित करती है तथा जिससे कर्मचारी में गतिशीलता आती है। मनोबल को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं-

1. वेतन (Salary)
2. पदोन्नति (Promotion)
3. कार्य दशाएं (Working Conditions) (अ) आपसी संबंध, (ब) दोषपूर्ण भौतिक दशाएं
4. कार्य के प्रति जानने की इच्छा (Desire to know about his work)
5. पद स्थिति (Rank)
6. सामाजिक कारक (Social Factors)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.3.1 वेतन (Salary)

उद्योगपति, कर्मचारी, उत्पादन तथा सरकारी मशीनरी आपस में एक दूसरे के पूरक होते हैं। जब इनमें किसी एक के बीच शारीरिक संबंध बिगड़ते हैं तो इससे उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। उत्पादन प्रभावित होते ही पूंजी का सन्तुलन बिगड़ता है साथ ही उद्योग की सारी क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। अनेक सुविधाएं प्रदान करने के बाद भी कर्मचारी वेतन को अपने कार्य सन्तोष का एक विशेष अंग मानता है। यदि वेतन प्राथमिक आवश्यकताओं के अनुकूल होता है तो कर्मचारी में सदैव कार्य सन्तोष की स्थिति बनी रहती है जो मनोबल को प्रभावित करता है।

17.3.2 पदोन्नति (Promotion)

उपयुक्त कर्मचारी को वरिष्ठता क्रम आने के उपरान्त भी पदोन्नति का अवसर नहीं मिलता है। इससे कर्मचारी कुंठित होने लगते है। जब कम कुशल लोगों को पदोन्नति दी जाती है तो वरिष्ठ कर्मचारी की रूचि अपने कार्य में कमे होने लगती है। उनकी मानसिक स्थिति क्षीण होने लगती है। कार्य में सन्तोष की जगह वे कार्य से कतराने लगते हैं। धीरे-धीरे कर्मचारी का मनोबल गिरने लगता है, वह कार्य को बोझ समझने लगता है।

17.3.3 कार्य दशाएं (Working Conditions)

मनोबल को प्रभावित करने वाली कार्य संबंधी दशाएं इस प्रकार हैं-

17.3.3.1 आपसी संबंध-उद्योग धंधों में जो समस्याएं पैदा होती है उनमें से आधी समस्याएं आपसी टकराव से होती हैं। कर्मचारी के जब प्रबंधकों, मालिकों या सहयोगियों से संबंध ठीक नहीं रहते, उनमें सहयोग की भावना में कमी आने लगती है। एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए अमानवीय कार्यों में रूचि लेने लगते है। उस समय वे परिवार भविष्य को भूल जाते हैं। अपने कर्त्तव्य, अपने उद्देश्य को भूल जाते हैं। अनावश्यक विवादों में लगे रहने के कारण कार्य क्षमता का ह्रास होने लगता है। प्रोत्साहन समाप्त हो जाता है। अंत में मनोबल का एक अंशमात्र ही शेष रह जाता है।

17.3.3.2 दोषपूर्ण भौतिक दशाएं-उद्योग में यदि भौतिक दशाएं दोषपूर्ण हों तो दुर्घटनाओं की आशंकाएं बनी रहती हैं। दुर्घटना होने पर कर्मचारी इनसे शारीरिक तथा मानसिक रूप से प्रभावित होते हैं। दोषपूर्ण दशाओं में प्रकाश, तापमान, कार्य के घंटे, सन्तोष देने वाली सुविधाएं आदि आती हैं। यदि ये दशाएं अनुकूल नहीं रहती हैं तो कर्मचारी के कार्य पर इसका प्रभाव पड़ता है। यदि दशाएं सनतुलित रहती हैं तो कर्मचारी भी स्वयं संतुलित रहता है।

17.3.4 अपने कार्य के विषय में जानने की इच्छा (Desire to know about his work)

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला है कि वैयक्तिक कार्य की अपेक्षा यदि कोई कार्य सहयोग और स्पर्धा से किया जाए तो उत्पादन में वृद्धि होती है। यदि कर्मचारी को अपने अच्छे कार्य की जानकारी होती है तो उसे प्रोत्साहन मिलेगा। प्रत्येक कर्मचारी समूह में किए गए अपने कार्य के स्तर को जानना चाहता है। यदि कार्य प्रथम स्तर का न होकर द्वितीय व तृतीय स्तर का होता है तो वह अपने कार्य में सुधार करने की कोशिश करता है। इस प्रकार की इच्छा का प्रबल होना मनोबल का प्रतीक है। कर्मचारी यह भी जानने का इच्छुक रहता है कि प्रबंधक या मालिक उसकी उन्नति, प्रगति आदि के लिए क्या योजनाएं बना रहे हैं। इससे कर्मचारी को एक विशेष प्रकार की सन्तुष्टि मिलती है। वह अपने कार्य में रुचि लेता है और उसका मनोबल बढ़ता रहता है।

17.3.5 पद स्थिति (Rank)पदस्थिति भी कर्मचारी को एक प्रकार का सन्तोष देती है। वह भी अपने प्रबंधकों, मालिकों, ऑफीसरों आदि उच्च पदों को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। कार्य और कारखाने के प्रति उसकी अर्थिक स्थिति स्वस्थ होती है तथा ईमानदार कर्मचारी को पदस्थिति अधिक अहसास कराती है। यदि छोटे पद पर कार्यरत कर्मचारी को भी प्रलोभन दिया जाए तो उसका मनोबल भी बढ़ेगा। इसलिए प्रबंधकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारी पदस्थिति से पीड़ित न हो अन्यथा इसका कुप्रभाव उत्पादन पर पड़ेगा।

17.3.6 सामाजिक कारक (Social Factors)मेयो ने कहा कि कर्मचारी में सुरक्षा और निश्चितता की भावना मनोबल की स्थिरता का महत्त्वपूर्ण अंग है। यह भावना तब उत्पन्न होती है जब कर्मचारी समूह विशेष की सदस्यता स्वीकार करता है। प्रबंधकों को चाहिए कि मनोबल बढाने हेतु प्रतिमाह एक गोष्ठी कर्मचारियों के बीच हो। उसमें प्रबंधकों का भी अधिकाधिक योगदान हो। इससे कर्मचारी की अपनी उलझनें समाप्त हो जाती हैं, सामाजिकता का विकास होता है, स्वस्थ अभिवृत्ति उत्पन्न होती है। विश्राम अवधि के पश्चात् प्राय: देखा जाता है कि कर्मचारी की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। यह उनकी थकान की कमी से होता है। विश्राम के समय कर्मचारी एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, हंसी-मजाक करते हैं। इससे उनका कार्य तनाव कम होता है। काम के प्रति एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है जो मनोबल के प्रतिरूप होर्त है। कर्मचारी की सराहना और प्रंशसा से भी उनका मनोबल बढ़ता है। कारखाने में अच्छे कर्मचारियों की सराहना तथा उचित पारितोषिक दिए जाने पर भी उसका मनोबल बढ़ेगा। पारिवारिक समस्याएं जो कर्मचारी के मनोबल को गिराती हैं, उनके निराकरण हेतु प्रबंधकों को उपाय करने चाहिएं। कर्मचारी का सामाजिक जीवन जितना स्वस्थ होगा, उसका मनोबल भी उतना ही ऊंचा तथा स्थिर होगा और उन्नति की दिशा में बढ़ता रहेगा।

17.4 मनोबल के निर्धारक (Determinants of Morale)

क्रेच तथा क्रचफील्ड ने उच्च मनोबल के निम्न सूचकों की ओर संकेत किया है–

1. कर्मचारी में एकता भाव सदैव बने रहने से उनका मनोबल उच्च होगा।
2. विघटकारी तत्त्वों की न्यूनता हो जो आपसी मतभेद उत्पन्न न करते हो।
3. कर्मचारियों के सामने सामूहिक लक्ष्य होना चाहिए जिसकी प्राप्ति हेतु कर्मचारी सहयोग से कार्य करें।
4. कर्मचारी की रूचियों और अभिरूचियों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।
5. प्रबंधकों की कर्मचारियों के प्रति, कर्मचारियों की प्रबंधकों के प्रति धनात्मक मनोवृत्ति होनी चाहिए।
6. कारखाने के प्रति सभी कर्मचारियों की आन्तरिक इच्छा होनी चाहिए।

उपरोक्त विशेषताएं जहां होगी, वहां कर्मचारियों का मनोबल ऊंचा होगा। ब्लम ने मनोबल के जो धनात्मक निर्धारक बताए हैं, वे इस प्रकार हैं–

17.4.1 सामूहिक सहयोग की भावना (Feeling of Togetherness)

किसी भी कारखाने, फैक्ट्री में कर्मचारी पृथक कार्य न करते हुए सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोबल की स्थिति वहां उच्च होगी, जहां कम से कम समूह या उपसमूह होते हैं। आदर्श समूह वह होता है जहां सिर्फ एक समूह हो, जिसमें उद्योगपति, प्रबंधक तथा कर्मचारी सम्मलित हों। यदि इस समूह की प्रतिक्रियाएं अनुकूल होंगी तो मनोबल उच्च होगा। समूह में गतिशीलता तथा उच्च मनोबल के लिए आवश्यक है कि समय समय पर समूह की संरचना तथा सामान्य स्थिति में परिवर्तन करते रहना चाहिए। उच्च मनोबल को बढ़ाने हेतु कर्मचारियों के समूह का निर्माण किया जाय जिससे उनमें सहयोग की भावना बढ़े और उन्हें समुचित सुविधाएं प्रदान की जाय। ब्लम के शब्दों में सभी कर्मचारी चेतन या अचेतन रूप से समूह का निर्माण करते हैं। यदि प्रबंधक इस तथ्य को समझे और कार्यकर्त्ताओं की शक्ति को सहयोग के समुचित मार्ग पर ले जाए तो इन समूहों को मनोबल निर्माण का आधारभूत घोषित किया जा सकता है।

17.4.2 लक्ष्य की आवश्यकता (Need for Goal)

समूह निर्मित करने के बाद प्रबंधकों को कुछ ऐसे लक्ष्य निश्चित करने चाहिएं जो सभी के लिए हितकर हों। लक्ष्य का निर्माण करते समय सिर्फ उत्पादन या व्यक्तिगत लाभ को ही महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। इन लक्ष्यों में अनेक पक्ष सम्मिलित हो सकते हैं, जैसे–कर्मचारी का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य, उसकी प्रगति, सामाजिक उन्नति, घरेलू समस्याओं आदि का निराकरण। वाटसन (Watson) के अनुसार ''मनोबल एक ऐसा चुम्बकीय स्तम्भ है, जिसकी ओर मनुष्य की आकांक्षाएं खिचीं रहती हैं।'' "Morale demands a magnetic pole towards which the aspirations of men are drawh." वस्तुत: लक्ष्य चुम्बकीय केन्द्र का काम करते हैं जिससे कर्मचारी को वहां पहुंचने का उत्साह बना रहता है। प्रबंधक यदि इन लक्ष्यों को प्रोत्साहन दे तो कर्मचारी इनके प्रति आश्वस्त हों।

17.4.3 लक्ष्य की प्रकृति (Process Towards the Goal)

लक्ष्य को प्राप्त करने में कर्मचारी तभी प्रकृति कर सकते हैं जब उन्हें वर्तमान और भविष्य की क्रियाओं में स्पष्टता होती है। इसलिए कर्मचारी को भली भांति बता देना चाहिए कि कर्मचारी अपनी भावी योजनाओं और वर्तमान में एक संबंध अवश्य बनाएं। वर्तमान को नजर अंदाज कर भविष्य की योजनाओं संबंधी लक्ष्यों का निर्माण नहीं करना चाहिए। मनोबल के उपयुक्त निर्धारकों के अतिरिक्त भी मनोवैज्ञानिकों ने कुछ धनात्मक निर्धारकों (Positive determinants) का भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं–

1. वस्तुगत लक्ष्य निर्धारण (Dealistic Goal Setting)–मनोबल के स्तर को बनाए रखने के लिए सफलता का मिलना आवश्यक होता है। बार-बार की असफलता से मनोबल गिर जाता है। इसलिए औद्योगिक लक्ष्यों का निर्धारण वस्तुगत हो ताकि वे सुगमता से कर्मचारियों की पहुंच के भीतर हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. सहायक आवश्यकताओं की संतुष्टि (Satisfaction of secondary needs)–उद्योग में कर्मचारी के प्राथमिक उद्देश्यों की सन्तुष्टि के साथ कर्मचारी की मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि की भी आवश्यकता रहती हैं। जैसे कम्पनी के कार्यों में सहभागिता के साथ सामाजिक मान्यता मिलने पर कर्मचारी का मनोबल बढ़ता है।

3. त्याग और लाभ के बराबर भागीदार बनना (Equal share in sacrifice & gain)– निरीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि कर्मचारी में त्याग और समानता की भावना पर्याप्त हो तो मनोबल बना रहता है। उद्योग में कर्मचारी को यह समझना चाहिए कि वह दूसरों की तरह समान कार्य वहन कर रहा है और उसे लाभ में भी समुचित हिस्सा मिल रहा है।

4. तादात्म्य और संलग्नता भाव की उपस्थिति (Identification & involvement)– तादात्म्य तथा संलग्नता भाव की उपस्थिति होने पर कर्मचारी में 'मैं'' के बदले 'हम' भाव दृष्टिगत होने लगता है। वाटसन के अनुसार–

विश्वास तभी दृढ़ होते हैं जब यह अनुभूत हो कि दूसरे लोग उसके साथ है।''

"Convictions are firmer when it is felt that other people join in them."

फैक्टर एनेलिसिस तकनीक (Factor Analysis Technique) ने औद्योगिक मनोबल के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया है। मिशीगन के सर्वे रिसर्च सेन्टर ने इन चार कारकों का उल्लेख किया है- कार्यसन्तोष, लक्ष्य की ओर प्रगति, पर्यवेक्षण तथा कम्पनी सन्तोष। कुछ अनुसंधानों से अन्य कारकों का भी पता चला है, जैसे-व्यक्तिगत पुरस्कार, कम्पनी संचालन, काम की मनोभौतिक अवस्थाएं, मानवीय संबंध आदि।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक मनोबल का निर्धारण सदैव उपयुक्त धनात्मक निर्धारकों की सक्रियता पर निर्भर करता है। औद्योगिक कुशलता की वृद्धि हेतु मनोबल तथा इसके निर्धारकों को सही दिशा में परिवर्तित करना पड़ता हैं। मनोबल एक ऐसी मनोदशा है जिससे व्यक्ति नई शक्ति, नए उत्साह तथा आत्म-संयम से कार्य संपादन करता है। इसके लिए उसका अटूट विश्वास बना रहता है कि विषय परिस्थितियों में भी उसके व्यक्तिगत और सामाजिक आदर्शों का अनुसरण होता रहेगा। प्रबंधक की यही चेष्टा रहती है कि कम्पनी में तादात्म्य भाव पैदा किया जाए। उन्नत मनोबल के फलस्वरूप कार्यकर्ता अभियोजनशीलता में जितनी वृद्धि होती है, औद्योगिक तनाव व संघर्षों की संभावना में भी उतनी ही कमी आती है।

17.5 औद्योगिक मनोबल की वृद्धि की पद्धतियां (Methods of Increaring Industrial Morale)

प्रबन्धकों के लिए औद्योगिक मनोबल का मापन बैरोमीटर (Barometer) का काम करता है। मापन के पश्चात् यदि निष्कर्ष निकलता है कि कर्मचारियों का मनोबल गिर रहा है तो प्रबंधकों के लिए यह एक चेतावनी होती है। इसके लिए प्रबंधकों को आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए। उद्योग में मनोबल के सुधार हेतु निम्न विधियां बताई गई हैं–

1. विशेषज्ञ विधि (Expert Method)
2. औद्योगिक जासूस विधि (Industrial spy Method)
3. औद्योगिक परामर्शदाता विधि (Industrial Counsllor Method)
4. कर्मचारी समस्या विधि (Employee Problem Approach)

17.5.1 विशेषज्ञ विधि (Expert Method)

इस विधि में प्रबंधक द्वारा एक विशेषज्ञ को विनियुक्त किया जाता है। वह विशेषज्ञ कारणों का सर्वेक्षण कर यह ज्ञात करता है कि किस विभाग का मनोबल निम्न स्तर का है। कर्मचारियों से आपसी बात-चीत द्वारा वह एक प्रतिवेदन तैयार करता है। इसमें वह अनेक सुझाव देता है। जैसे-प्रोत्साहन देने वाले-पोस्टर, वादे, भाषण, मीटिंग, चाय-पार्टी, कल्याण संबंधी व्यवस्था आदि को सुझाव देता है। प्रबंधक इन सुझावों के अनुसार कार्य योजनाएं बनाकर उन्हें क्रियात्मक रूप देते है। इन परिणामों को बारी-बारी से देखा जाता है। यदि इस प्रकार भी मनोबल में वृद्धि नहीं होती है तो प्रबंधकों द्वारा दूसरे विशेषज्ञ की नियुक्ति कर उसके सुझावों के अनुसार कार्य किया जाता है।

17.5.2 औद्योगिक जासूस विधि (Industrial Spy Method)

इस विधि के परिणाम कभी-कभी विपरीत भी हो जाते हैं इसलिए इस विधि को सही नहीं माना जाता है। इसमें प्रबंधक द्वारा एक विशेषज्ञ को कारखाने में नियुक्त किया जाता है। वह कर्मचारियों की तरह ही किसी पद पर होता है। कर्मचारियों को इस बात की जानकारी नहीं होने दी जाती है कि वह नया एक विशेषज्ञ है। वह विशेषज्ञ कर्मचारियों के साथ घुल-मिल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाता है। वह कर्मचारियों से अनेक प्रकार की सूचनाएं प्राप्त करता रहता है। इसके बाद वह एक प्रतिवेदन तैयार कर उसमें उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करता है। प्रबंधक इन सुझावों के अनुकूल कार्य करते हैं।

17.5.3 औद्योगिक परामर्शदाता विधि (Industrial Counsllor)

हार्थोर्न के अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने हेतु परामर्शदाता का बहुत बड़ा योगदान होता है। परामर्शदाता कर्मचारी और उसके मनोबल के गिरने के कारणों के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। वह उन कारणों के निराकरण हेतु कर्मचारी से सुझाव मांगता है फिर अपने सुझाव कर्मचारियों को देता है। यदि मनोबल उद्योगपति या प्रबंधकों के कारण गिरता है तो परामर्शदाता इन दोनों के बीच एक-दूसरे के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। समस्यों को सुलझाने हेतु वह इन्हें एक-दूसरे पर विश्वास रखने का परामर्श देता है। परामर्शदाता इन दोनों के बीच अधिकाधिक समायोजन स्थापित करने की चेष्टा करता है।

17.5.4 कर्मचारी समस्या विधि (Employee Problem Approach)

यह विधि उपरोक्त तीनों विधियों से सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। इस विधि में कार्य को प्रजातांत्रिक प्रणाली द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस विधि का प्रयोग कुशल कर्मचारियों द्वारा संपन्न किया जाता है। इस विधि में फोरमैन या मालिक कुशल एवं प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों के समक्ष कुछ समस्याएं रखता है। इन समस्याओं की चर्चा में उसका कम से कम हस्तक्षेप रहता है। वह कर्मचारियों को अधिकाधिक अवसर देता है और इस बात का आदेश देता है कि वे समस्या का समाधान स्वयं खोजें। जब कर्मचाारियों के सामने यह बात आती है तो उनमें तुरन्त समूह भावना जागृत हो जाती है। वे समस्या समाधान हेतु एक निश्चित लक्ष्य का निर्माण करते हैं। कर्मचारियों को यह महसूस होने लगता है कि कारखाने की प्रगति उनकी अपनी प्रगति है। इसलिए वे मिलकर सोचने और समाधान हेतु सक्रिय हो जाते हैं। इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कर्मचारी जैसे-जैसे समस्या समाधान में सफल होते हैं, वैसे-वैसे उनका मनोबल भी बढ़ता जाता है।

इस विधि में एक सभा का आयोजन किया जाता है। समूह का नेता सभा के समक्ष संक्षेप में समस्याएं प्रस्तुत करता है। नेता या तो कर्मचारी या फिर बाहर का कोई प्रशिक्षित व्यक्ति भी हो सकता है। यह नेता कर्मचारियों को यह विश्वास दिलाता है कि वह प्रबंधक कर्मचारियों की समस्या निराकरण हेतु तैयार है साथ ही कर्मचारियों द्वारा बनाई गई योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए भी तैयार है। इस प्रकार दो से चार मीटिंग तक होती हैं। धीरे-धीरे बातचीत का क्रम शुरु हो जाता है। इस विधि द्वारा समूह में गतिशीलता का संचालन किया जाता है। सदस्यों में समूह के प्रति निष्ठा की भावना जागृत की जाती है तथा कर्मचारियों के मध्य हुए विवादों को शांतिपूर्वक निर्देशों द्वारा सुलझाया जाता है।

17.6 औद्योगिक मनोबल का मापन (Mesurement of Indusrtrial morale)

मेरेनो (Mereno) ने 1943 में मनोबल मापन हेतु 'सोसियोमेट्रिक प्रणाली' का निर्माण किया। कुछ समय पश्चात् जेनिकन्स (Jenicans) ने इस प्रणाली में कुछ संशोधन कर इसे 'नोमोनेटिंग प्रविधि (Nomoneting Technique) नाम दिया। इसका उपयोग कार्यरत सैनिकों का मनोबल मापन हेतु किया गया। इस विधि मे कर्मचारी को समूह से सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी चुनने का आदेश दिया जाता है जिसे निर्देशक बनाया जा सके। प्रत्येक व्यक्ति एक वृत्त द्वारा रेखाचित्र अंकित करता है। एक तीर चिन्ह (arrow) द्वारा हर व्यक्ति के वृत्त को जोड़ दिया जाता है। वही व्यक्ति नेता होता है जिसे सर्वाधिक लोगों ने पसंद किया है।

मोटोवीडलो और बोर मैन (Motowidlo & Borman 1977) ने व्यवहार मूल्यांकन मानदंड (Behavioural Doting Scale) को सर्वश्रेष्ठ बतलाया जिसमें मनोबल दर्शाने वाले खास-खास व्यवहार-घटनाओं को उच्च या निम्न मनोबल का सूचक माना जाता है। इसी मान्यता पर कैम्पबैल, लैण्डी, गियन तथा स्थित और कैंडल ने मनोबल मापन हेतु 'स्केल्ड एक्सपेक्टेशंस' (Scald Expectations) विधि के इस्तेमाल का सुझाव दिया, वर्तमान में ऐसे व्यवहार-मूल्यांकन स्केल के आगमन से मनोबल अध्ययन की नवीन संभावनाएं सामने आयी हैं।

मनोबल निर्धारक के रूप में सामूहिक सहयोग भाव को मापने में सोसियोग्राम बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त मनोबल को मापने हेतु अन्य प्रविधियां-मनोवृत्त मानदंड प्रश्नावली तथा साक्षात्कार आदि का उपयोग किया जाता है।

17.7 जीवन विज्ञान की उपयोगिता (Utility of Science of Living)

व्यक्ति का मनोबल काफी सीमा तक उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। जब कर्मचारी किसी उद्योग में काम करता है तो उसके कार्य के साथ में उसका मनोबल बनाए रखने के लिए उसका व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यक्तित्व को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारकों के अतिरिक्त व्यक्ति के व्यक्तिगत कारक भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। व्यक्ति का बौद्धिक स्तर, अहं, परमाहं, स्वयं के प्रत्यय तथा शारीरिक तथा मानसिक तनाव व्यक्ति के मनोबल को प्रभावित करते हैं। इनके अतिरिक्त व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, जीवन विज्ञान ख्वं उसका प्रायोगिक पक्ष प्रेक्षाध्यान व्यक्ति के मनोबल को बढ़ाने या बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यद्यपि इस क्षेत्र में बहुत अधिक शोधकार्य तो नहीं हुए हैं, फिर भी जितने भी शोधकार्य हुए हैं, उनसे इस बात की पुष्टि होती है कि जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षण से व्यक्ति के व्यक्तित्व में सार्थक परिवर्तन किया जा सकता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूपान्तरण भी किया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से व्यक्ति के व्यक्तित्व के कई मुख्य कारकों में सकारात्मक परिवर्तन देखे गए हैं। गौड़ एवं वेताल 1997 में व्यक्तियों के समायोजन पर प्रेक्षाध्यान का प्रभाव देखा। दो माह के प्रेक्षाध्यान से व्यक्तियों के सामाजिक संवेगात्मक, स्वास्थ्य एवं पारिवारिक क्षेत्रों के समायोजन में सार्थक परिवर्तन देखा गया। अर्थात् व्यक्तियों की समायोजन क्षमता बढ़ी। इसी तरह इन्होंने एक अन्य अध्ययन में व्यक्ति के बौद्धिक अहं, परमाहं, स्वयं के प्रत्यय तथा मानसिक तथा शारीरिक तनाव जैसे कारकों पर भी सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव देखे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवन विज्ञान का प्रायोगिक पक्ष व्यक्तित्व विकास में सहायक हो सकता है। अत: जाहिर है कि व्यक्ति में विधायक भावों का भी विकास होगा। उद्योग में कार्यरत कर्मचारी पर भी इन प्रयोगों का सार्थक प्रभाव पड़ेगा। मनोबल को ऊंचा करने में ये प्रयोग सहायक हो सकते हैं। मानसिक पक्ष मजबूत होने पर ही मानसिक समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। अत: उद्योगरत कर्मचारी का मानसिक पक्ष मजबूत करने के लिए प्रायोगिक पक्ष आवश्यक है। यदि व्यक्ति का मानसिक पक्ष सक्षम होगा तो बाहरी समस्याएं उसे प्रभावित नहीं करेंगी। उसके भीतर वह क्षमता उत्पन्न होगी जो कई कठिनाइयों का सामना कर सकती है। अत: मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखना महत्त्वपूर्ण कार्य है। मानसिक स्वास्थ्य की कसौटियां हैं-सहिष्णुता, धैर्य, बुद्धि, स्मृति आदि। यदि ये परिवर्तन कर्मचारी में हों तो उसका मनोबल स्वत: ही ऊंचा रहेगा।

17.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक मनोबल क्या है? उसको प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. औद्योगिक मनोबल की वृद्धि हेतु कौन-सी पद्धतियां हैं? वर्णन कीजिए।
3. औद्योगिक मनोबल का मापन किन-किन विधियों से किया जा सकता है?
4. जीवन विज्ञान द्वारा औद्योगिक मनोबल को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

17.9 संदर्भ ग्रंथ

1. औद्योगिक मनोविज्ञान—डॉ. आर. के. ओझा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई : 18 नेतृत्व

संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 नेतृत्व का अर्थ
18.3 नेतृत्व की विशेषताएं
18.4 नेतृत्व का महत्व
18.5 अधिकारियों की भूमिका
18.5.1 अधिकारिय नेता के रूप में
18.5.2 अधिकारियों की मनोवैज्ञानिक दशा
18.6 नेतृत्व की प्रकृति एवं प्रारूप
18.7 नेतृत्व-प्रशिक्षण
18.8 उद्योग में सफल नेता के गुण
18.9 जनतांत्रिक नेता के गुण
18.9.1 समस्याओं की ओर ध्यान देना
18.9.2 सामूहिक बैठक
18.9.3 निश्चित उद्देश्य की जानकारी देना
18.9.4 कार्यक्षमता के मापदण्ड निश्चित करना
18.9.5 उचित निर्णय
18.9.6 प्रेरणा देना
18.10 नेतृत्व के नियग
18.10.1 समस्यसओं को धैर्यपूर्वक सुनना
18.10.2 सोच समझकर निर्णय लेना
18.10.3 कर्मचारियों को हतोत्साहित न करना
18.10.4 नेता कम से कम संवेदनशील हो
18.10.5 नेता स्वयं वाद-विवाद से बचा रहे
18.10.6 कर्मचारियों की प्रशंसा करना
18.11 अधिारियों से संबंधित अनुसंधान
18.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
18.13 संदर्भ ग्रंथ

18.0 प्रस्तावना (Introduction)

ओसवाल्ड स्पैंगलर ने अपनी पुस्तक 'Man and Techincs' में लिखा है कि ''इस युग में केवल दो प्रकार की तकनीक ही नहीं हैं वरन् दो प्रकार के आदमी भी हैं। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में कार्य करने तथा निर्देशन देने की प्रवृति है उसी प्रकार कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी प्रकृति आज्ञा मानने की है। यही मनुष्य जीवन का स्वाभाविक रूप है। यह रूप युग परिवर्तन के साथ कितना ही बदलता रहे किन्तु इसका अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक यह संसार रहेगा।''

शासन करना, निर्णय लेना, निर्देशन करना आज्ञा देना आदि सब एक कला है, एक कठिन तकनीक है। परन्तु अन्य कलाओं की तरह यह भी एक नैसर्गिक गुण है। प्रत्येक व्यक्ति में यह गुण या कला समान नहीं होती है। उद्योग में व्यक्ति के समायोजन के लिए पर्यवेक्षण [Supervision] प्रबंध तथा शासन का बहुत नहत्व होता है। उद्योग में असंतुलन बहुधा कर्मचारियों के स्वभाव दोष से ही नहीं होता बल्कि गलत और बुद्धिहीन नेतृत्व के कारण भी होता है। प्रबंधक अपने नीचे काम करने वाले कर्मचारियों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से अपने निर्देशानुसार ही कार्य करवाता है। जैसा प्रबंधक का व्यवहार होता है, जैसे उसके आदर्श होते हैं, कर्मचारी भी वैसा ही व्यवहार निर्धारित करते हैं। इसलिए प्रबंधक का नेतृत्व जैसा होगा, कर्मचारी भी उसी के अनुरूप कार्य करेंगे। वर्तमान में प्रबंधक और नेतृत्व की समस्या बहुत विकराल रूप धारण कर चुकी है। छोटी-छोटी बातों को लेकर हड़ताल व तालाबंदी शुरु हो जाती है जिसमें न समाज की चिन्ता रहती है और न उत्पादन की। औद्योगिक क्षेत्र में आए दिन हो रहे उत्पातों के पीछे प्रबंधकों की ही नासमझी तथा अपने लाभ को प्रधानता देना है।

कर्मचारी को सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि कर्मचारी संस्था का मुख्य केन्द्र बिन्दु है। उसका मूल्य लाखों रूपयों की मशीनों से भी ज्यादा है। वह प्रबंधकों का आधार है। कर्मचारी में ही प्रबंधकों तथा संपूर्ण व्यवस्था का सुख निहित होता है। यदि कर्मचारी समस्याओं से ग्रस्त रहता है तो उसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है। इससे देश की स्थिति कमजोर होती हैं। वेतन तथा अन्य आर्थिक लाभ के लिए आपसी झगड़ों में, प्रबंधक तथा मालिकों के झगड़ों में जब कर्मचारी राजनैतिक गतिविधियों तक सीमित रह जाता है तो उस स्थिति में कुशल नेतृत्व का सामना करने में सफल नहीं होता है तो कर्मचारी तथा उनके संगठन को गंभीर परिणामों का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में प्रबंधक हावी हो जाते है। कर्मचारियों को छोटे-छोटे समूहों में बांट दिया जाता है। जहां एक ठोस नेतृत्व होना चाहिए वहां छोटे-छोटे नेता बना दिए जाते है। जिससे कर्मचारी संगठन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पादन में असन्तुलन पैदा हो जाता है, अव्यवस्था फैल जाती है और कर्मचारियों का मनोवैज्ञानिक स्तर कमजोर हो जाता है। इस प्रकार नेतृत्व जितना सुव्यवस्थित, चातुर्यपूर्ण होगा, कर्मचारी पर भी उसका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा जो उद्योग की प्रगति में सहायक होगा।

स्मिथ ने कहा है-यदि किसी व्यक्ति के पास सुन्दर बहुमूल्य घड़ी है और वह सही तरह से काम नही करती है तो वह उसे मामूली घड़ीसाज को सही करने के लिए नहीं देगा। घड़ी की जितनी बारीक कारीगरी होगी, उसे ठीक करने के लिए भी उतना ही चतुर कारीगर होना चाहिए। कारखाने या फैक्ट्री के विषय में भी यही बात है। कोई भी मशीन इतनी जटिल और नाजुक नहीं और न ही इतना चातुर्यपूर्ण संचालन चाहती है जितना प्रगतिशील प्रबंध नीति। यह आवश्यक नहीं कि प्रबंध नीति प्रगतिशील हो। आवश्यकता इस बात की होती है कि प्रबंध नीति सुचारू रूप से हो, यदि सुचारु रूप से प्रबंध नीति चलेगी तो प्रगति अपने आप होने लगेगी।

18.1 उद्देश्य (Objectives)

1. नेतृत्व का अर्थ समझ सकेंगे।
2. नेतृत्व में अधिकारियों की भूमिका को जान सकेंगे।
3. जनतांत्रिक नेता के गुणों से परिचित हो सकेंगे।
4. नेतृत्व के नियमों को पढ सकेंगे।

18.2 नेतृत्व का अर्थ (Meaning of Leadership)

विद्वानों ने नेतृत्व को भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। कभी-कभी इसका अर्थ प्रसिद्धि से समझा जाता है। लोकतांत्रिक दृष्टि से इसका अर्थ उस स्थिति से समझा जाता है जिसमें कुछ व्यक्ति स्वेच्छा से दूसरे व्यक्तियों के आदेशों का पालन कर रहे हों। कभी-कभी यदि कोई व्यक्ति शक्ति के आधार पर दूसरों से मनचाहा व्यवहार करवा लेने की क्षमता रखते हैं तो उसे भी नेतृत्व के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। वास्तविकता यह है कि नेतृत्व का तात्पर्य इनमें से किसी एक व्यवहार से नहीं है बल्कि नेतृत्व व्यवहार का वह ढंग होता है जिसमें एक व्यक्ति दूसरों के व्यवहार से प्रभावित न होकर अपने व्यवहार से दूसरों को अधिक प्रभावित करता है। भले ही यह कार्य दबाव द्वारा किया गया है अथवा व्यक्तिगत सम्बंधी गुणों को प्रदर्शित करके किया गया हो।

पिंजर (Pingor) ने नेतृत्व को इस प्रकार परिभाषित किया है–"नेतृत्व व्यक्ति और पर्यावरण के संबंध को स्पष्ट रखने वाली एक धारणा है, यह उस स्थिति का वर्णन करती है जिसमें एक व्यक्ति ने एक विशेष पर्यावरण में इस प्रकार स्थान ग्रहण कर लिया हो कि उसकी इच्छा भावना और अन्तर्दृष्टि किसी सामान्य लक्ष्य को पाने के लिए दूसरे व्यक्तियों को निर्देशित करती है तथा उन पर नियंत्रण रखती है।" इस परिभाषा के आधार समीकरण के रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है–

विशिष्ट पर्यावरण, व्यक्ति की स्थिति, निर्देश, नेतृत्व अर्थात् व्यक्ति एक विशेष पर्यावरण (आर्थिक, धार्मिक आदि) में एक विशेष स्थिति को प्राप्त कर लेता है जो वह अपनी क्षमताओं अथवा गुणों के द्वारा दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करने लगता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यही नेतृत्व की स्थिति है। लेपियर और फार्न्सवर्थ (Lapiere and Farnisworth) के अनुसार-''नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरों के व्यवहार को उससे अधिक प्रभावित करता है जितना कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार नेता को प्रभावित करते हैं।''

सीमेन तथा मौरिस (Seemen and Morris) के अनुसार—''नेतृत्व व्यक्तियों द्वारा दी जाने वाली उन क्रियाओं में है जो दूसरे व्यक्तियों को एक विशेष दिशा में प्रभावित करती हैं।''

किंवाल यंग (Kiwal Jung) के अनुसार-''नेतृत्व की विवेचना प्रभुत्त्व के रूप में की जानी चाहिए।''

18.3 नेतृत्व की विशेषताएं

नेतृत्व की विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. नेतृत्व वह विशेष व्यवहार है जिसमें प्रभुत्व, सुझाव तथा आग्रह का सम्मिश्रण होता है।
2. नेतृत्व के लिए दो पक्ष नेता और अनुयायी का होना अनिवार्य है। नेता अनुयायियों के व्यवहार को अधिक सीमा तक प्रभावित करता है।
3. नेतृत्व सम्बंधित प्रभाव दबाव युक्त नहीं होता। इसे साधारण तथा स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किया जाता है। दबाव केवल नेता के नैतिक प्रभाव का होता है।
4. नेतृत्व अनियोजित न होकर विचारपूर्वक अनुयायियों के व्यवहारों को निश्चित दिशा में मोड़ दिया जाता है।
5. पीगर्स के अनुसार-नेतृत्व पारस्परिक उत्तेजना की प्रक्रिया है (Process of mutual stimulation)। इससे यह स्पष्ट होता है कि नेतृत्व के द्वारा व्यवहारों में किया जाने वाला परिवर्तन उत्तेजना से प्रभावित होता है।
6. नेतृत्व की एक विशेष परिस्थिति (क्षेत्र) होती है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग तरह से नेतृत्व से प्रभावित हो सकता है।

18.4 नेतृत्व का महत्त्व (Importance of Leadership)

प्रत्येक समूह के लिए नेतृत्व की आवश्यकता होती है। चाहे वह राजनैतिक हो या सामाजिक, धार्मिक हो या औद्योगिक। कोई भी समूह बिना नेतृत्व के अस्तित्वहीन होता है। औद्योगिक क्षेत्र में मालिक या कर्मचारी ही नेता का चयन करते है। होना यह चाहिए कि मालिक और कर्मचारी दोनों मिलकर नेता का चुनाव करें। इस प्रकार की आदर्श चयन प्रणाली के द्वारा मालिक और कर्मचारी के बीच के छोटे-छोटे झगड़ों को रोका जा सकता है। इससे समस्याओं का समाधान भी जल्दी हो सकता है। मालिकों तथा प्रबंधकों द्वारा चुना व्यक्ति अधिक स्वामि-भक्ति रखता है और कर्मचारियों के हितों को उपेक्षित कर सकता है। इसके विपरीत कर्मचारियों द्वारा चुना व्यक्ति कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार नीति संघर्ष बढ़ने लगता है। इसलिए प्रभावशाली नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि मालिक और कर्मचारी दोनों मिलकर योग्य, अनुभवी और व्यवहार कुशल व्यक्ति को नेता चुनें। नेतृत्व को तीन स्तर पर तीन वर्गों में बांटा गया है—1.प्रथम स्तर का प्रबंध (Top management), 2. मध्यम स्तर का प्रबंध (Middle management), 3. सम्मुख व्यक्ति का प्रबंध (Front line management)।

प्रथम स्तर के प्रबंध में उच्च श्रेणी के बिग बॉस (Big Boss), मध्यम स्तर में केवल बॉस (Boss) तथा तीसरी श्रेणी में फोरमैन या सुपरवाइजर आते हैं। ये तीनों प्रकार के नेता भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते हैं। इनके उत्तरदायित्व व कर्त्तव्य भी भिन्न होते हैं। नेता को अपने पद पर बने रहने के लिए आवश्यक होता है कि वह अपने समूह के प्रत्येक पक्ष पर संबंध बनाए रखने में समर्थ हो। इसलिए सुचारु कार्य के लिए यह आवश्यक होता है कि नेता अपने समूह के कर्मचारियों से हमेशा निकट के संबंध बनाए रखें, इससे नेता और कर्मचारियों के बीच तनाव की स्थिति नहीं आएगी और न ही कोई अन्य समस्याएं उत्पादन को प्रभावित करेंगी।

18.5 अधिकारियों की भूमिका (Role of the officer)

कारखाने के प्रत्येक कार्य में प्रधान कार्य कर्मचारियों पर ही निर्भर रहता है। कर्मचारी ही कार्य संचालन की महत्वपूर्ण इकाई होता है। भले ही तकनीकी ढंग से प्रशिक्षण प्राप्त हो या नहीं, फिर भी उसी के द्वारा उत्पादन का प्रथम चरण आरंभ होता है। कर्मचारी के बाद सुपरवाइजर फिर कार्य की प्रवृत्ति के अनुरूप विभिन्न प्रकार के एक ऊपर एक अधिकारी होते हैं। अधिकारी के अनेक कार्य होते है। अधिकारी कार्य का सुचारू रूप से संचालन, कर्मचारी की जिम्मेदारियां, उत्पादन की मात्रा, उसका गुण आदि पक्षों को देखता है। दूसरी ओर वह कर्मचारियों को समय-समय पर निर्देश देना, उन पर नियत्रंण रखना, उनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आपसी झगड़ों का निपटारा, उनकी उचित-अनुचित मांगों को ध्यान से सुनना तथा उनका निवारण करना आदि कार्य अधिकारी के कार्य क्षेत्र में आते हैं जिन पर अधिकारी को हर समय तत्पर रहना होता है। यदि ऐसा न हुआ तो व्यवस्था में भंग हो जाती है। जिससे उत्पादन, कर्मचारी तथा प्रबधक इससे प्रभावित होते है।

18.5.1 अधिकारी नेता के रूप में (Officer in form of leader)

कर्मचारियों के कार्य के निरीक्षण हेतु सुपरवाइजर नेता होते हैं। उत्पादन के लिए यह आवश्यक होता है कि कर्मचारी अपने कार्य के साथ समायोजन करें। कर्मचारियों का यह समायोजन अधिकारियों और उनकी शासन प्रणाली पर निर्भर करता है। उद्योगों में अव्यवस्था जैसे हड़ताल, तालाबंदी, कर्मचारी एवं प्रबंधकों के बीच आपसी संबंध आदि ऐसे पक्ष है जिनका संबंध कर्मचारी और प्रबंधकों की गलत फहमी से होता हैं। लेकिन जो प्रमुख कारण है वह है बुद्धिहीन नेतृत्व। नेतृत्व ही ऐसा विकल्प है जो कार्य-प्रणाली में संतुलन बनाये रखता है। इस प्रकार का नेतृत्व अधिकारी वर्ग करता है इसलिए अधिकारी या प्रबंधक को नेता की संज्ञा दी जाती है। उद्योग में वेतन तथा अन्य सुविधाएं प्राप्त करने वाले कर्मचारियों में कई कर्मचारी ऐसे होते जो मन लगाकर सम्पूर्ण शक्ति से कार्य करते हैं। जबकि कई कर्मचारी ऐसे भी होते हैं जो कार्य में बाधा डालते हैं। इसी प्रकार के कर्मचारी नेता के लिए समस्या पैदा करते हैं। ऐसे कर्मचारियों से व्यावहारिक तारतम्य बना लेना ही नेतृत्व की विशेषताएं और शीलगुण हैं।

18.5.2 अधिकारियों की मनोवैज्ञानिक दशा (Psychological Role of the Officers)

अधिकारियों को कर्मचारियों के सम्पर्क में रहना चाहिए, उन्हें उद्योग में एक इकाई के रूप में मानना चाहिए। इससे आपसी मतभेद, घृणा, द्वेष आदि को कम किया जा सकता है। कर्मचारी भी अधिकारियों की तरह एक सम्भ्रांत व्यक्ति होता है, उसकी भी अपनी मान-प्रतिष्ठा होती है। अधिकारी ऐसा व्यवहार न करे जिससे कर्मचारी यह महसूस करे कि उसे अलग समझा जा रहा है या उससे दबाब पूर्वक कार्य लिया जा रहा है। अधिकारी को इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि कर्मचारी की भी अपनी इच्छाएं होती हैं। वे उद्योग में एक महान् शक्ति के रूप में हैं। यह संगठन ही उद्योग की भलाई और उन्नति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसलिए अधिकारियों व मालिकों को इस संगठन के लिए अच्छे विचार रखने चाहिए जिससे संगठन के अंदर बुरी भावनाएं पैदा न हों। विपरीत जा रहे कर्मचारियों को सही मार्ग-दर्शन देना चाहिए, उनके बीच में विचार गोष्ठी का आयोजन करना चाहिए तथा उनके विचारों को सही दिशा देनी चाहिए। कर्मचारियों के हित की बात अधिकारियों को सोचनी चाहिए तथा उनकी उचित मांगों को ध्यान में रखना चाहिए। कर्मचारियों की मांग वेतन, लाभांश आदि से सम्बंधित होती हैं। अपनी चिकित्सा और निवास संबंधी मांगों को भी वे महत्व देते हैं। वे समाजोत्थान की बात भी करते हैं लेकिन उद्योग में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। तोड़-फोड़, अनशन, हड़ताल आदि सिलसिला चलता रहता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में ही प्रबंधकों, मालिकों तथा अधिकारियों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। कर्मचारी की वृत्तियों तथा मांगों को गम्भीरता से लेना चाहिए। यह याद रहे कि मूल्यवृद्धि के साथ मंहगाई भत्ते की मांग भी उचित है। ऐसी परिस्थितियों में अधिकारियों को चाहिए कि वे कर्मचारियों के साथ विचार गोष्ठी रखें और आपसी विचार-विमर्श द्वारा एक-दूसरे को समझें तथा समझौते के द्वारा समस्या का हल निकालें। हमेशा सही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अधिकारियों की योग्यता एवं गुण इसी बात का परिचालक है कि वे नजदीक से एक-दूसरे को समझें।

18.6 नेतृत्व की प्रकृति एवं प्रारूप (Nature and Type of Leadership)

उद्योग में कर्मचारी के कार्य की देखभाल हेतु सुपरवाईजर या निरीक्षक होते है, ये निरीक्षक ही नेता कहलाते हैं। निरीक्षकों की विशेषताएं और सौम्य व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि कारखाने की नीतियां किस तरह की हैं। इन नीतियों का निर्माण प्रबंधकगण द्वारा किया जाता है। नीतियां इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे कर्मचारियों में विश्वास की भावना जागे। इन नीतियों को कार्य रूप देने वाला निरीक्षक होता है इसलिए यह आवश्यक है कि कारखाने में निरीक्षकों के चुनाव में उनकी ईमानदारी, सहानुभूति, कार्य के प्रति लगन तथा सभी अच्छे गुणों को महत्व दिया जाए। योग्य निरीक्षक ही कर्मचारियों और कार्य के बीच संतुलन स्थापित कर सकता है। व्यवहारकुशल और सहनशील निरीक्षक कर्मचारियों पर विशिष्ठ छाप छोड़ते हैं। वे इच्छानुसार कर्मचारियों से कार्य करवाने में सफल होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि निरीक्षक अधिक बुद्धिमान हो लेकिन यह आवश्यक है कि निरीक्षक को व्यवहारकुशल होना चाहिए, निरीक्षक को प्रशिक्षित होना चाहिए।

18.7 नेतृत्व-प्रशिक्षण (Training of Leadership)

यदि निरीक्षक प्रशिक्षित होता है तो कर्मचारियों के समायोजन स्थापित करने में आसानी होती है। इसलिए नियुक्ति पद निरीक्षक को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षित और अनुभवी निरीक्षक एक कुशल नेता ही नहीं वरन् वह कठिन परिस्थितियों में भी समस्या का समाधान किर सकता है। ऐसा कुशल जनतांत्रिक नेता कर्मचारियों के साथ समझौते या मन-मुटाव के समय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपनी प्रतिष्ठा को आगे नहीं आने देता। वह अपने संवेगों पर नियंत्रण करता है और निष्पक्ष व्यवहार करता है। सज्जन, ईमानदार व मेहनती कर्मचारियों को महत्व देता है, उन कर्मचारियों को उत्पीड़न से बचाता है। कर्मचारियों को अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करता है यथा–

1. कर्मचारियों को चाहिए कि उसे आवश्यकता से अधिक भावुक, संवेदनशील और संवेगात्मक नहीं होना चाहिए।
2. विचार-विमर्श में निपुणता तथा तर्कपूर्ण ढंग से कर्मचारियों से अपने विचारों को स्वीकार करा लेने की क्षमता हो।
3. कर्मचारी और मालिक के बीच तनाव की स्थिति पैदा होने पर उसे दोनों की मध्यस्थता करते हुए समस्याओं के समाधान हेतु पर्याप्त योग्यता होनी चाहिए।
4. कर्मचारियों के विचारों में तालमेल बिठाने की योग्यता हो।
5. अधीनस्थ कर्मचारियों को यह महसूस कराने में सक्षम हो कि कर्मचारी उसे अपना ही एक भाग समझे।

18.8 उद्योग में सफल नेता के गुण (Characteristics of Successful Leadership)

क्रेग एवं चार्ट्स ने एक सफल नेता ने निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक माना है–

1. समर्थता (Forcefulness) अर्थात् नेता में यह कौशल हो कि वह कर्मचारी से काम ले सके।
2. नेता में ऐसे गुण होने चाहिए जिससे कर्मचारी उसको सम्मान दे सके।
3. नेता का कर्मचारियों से पक्षपात रहित व्यवहार होना चाहिए।
4. नेता को प्रशिक्षित होना चाहिए, अनुभवी होना चाहिए जिससे वह कर्मचारियों को भी प्रशिक्षित कर सके।
5. कर्मचारियों के साथ वादिता रखने वाला हो तथा किसी भी कर्मचारी से दूसरे कर्मचारी की बुराई न करें।
6. उसमें सरल आत्मविश्वास होना चाहिए, ताकि विषय प्रतिस्थितियों में भी वह अपने को कमजोर न समझे।
7. नेता में अपने क्रोध को नियंत्रित करने की क्षमता होनी चाहिए।
8. उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारी उसके आदेशों का पालन कर रहे है या नहीं।
9. अधीनस्थ कर्मचारियों के उचित को भी मानने वाला तथा अपनी योग्यता और सुझावों द्वारा कर्मचारियों से कार्य लेने की क्षमता हो।
10. बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से कर्मचारियों को डांटने की क्षमता तथा समय आने पर उनकी प्रशंसा करने की योग्यता हो।
11. परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता हो।

ब्लम ने पांच सिद्धातों का वर्णन किया है। उनके अनुसार सफल नेता को निम्न पाँच सिद्धातों अन्तर्गत कार्य करना चाहिए–

1. कार्य का उचित मूल्यांकन
2. अधिकारियों का पर्याप्त मात्रा में प्रतिनिधित्व।
3. समस्त कर्मचारियों के साथ समान व उचित व्यवहार।
4. जब कभी कर्मचारी मिलना चाहे तो उसे अपना समय देना।
5. कर्मचारियों की समस्याओं का प्रबंधकों और मालिकों से विस्तार में विचार-विमर्श करना।

इस संदर्भ में ब्लम (Blum) एक सफल नेता के लिए ऐसे कार्य न करने के लिए निर्देश देते हैं जिससे कर्मचारी और नेता के बीच दूरी बनी रहे। वे कार्य है–

1. कर्मचारियों की इज्जत करना–नेता को चाहिए कि वह कर्मचारियों पर अपनी श्रेष्ठता का प्रभाव न डाले। उनके सामने ऐसा प्रदर्शन न करे कि वह सबसे योग्य, अधिक वेतन भोगी और अनुभवी है। नेता को चाहिए कि वह अपनी तकनीकी योग्यता द्वारा कर्मचारियों की जटिलताओं का निवारण करे। जिससे कर्मचारी स्वयं यह अनुभव करे कि उनका नेता वास्तव में एक योग्य तकनीकी व्यक्ति है।

2. नेता को चाहिए कि वह कर्मचारी के किसी भी कार्य मे बाधा न डाले। अकारण बाधा से वह हतोत्साहित हो जाता है और कार्य में रूचि नहीं ले पाता है। इससे मशीन को नुकसान हो सकता है या किसी दुर्घटना की संभावना बढ़ सकती है। कर्मचारियों को उचित तरीके से समझाना चाहिए ताकि कर्मचारी को यह विश्वास न हो कि नेता उनके कार्य में कमी निकाल रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. कर्मचरियों में अनुशासन को बनाए् रखने के लिए् पक्षपात रहित व्यवहार करना चाहिए। जो नेता कुछ कर्मचारियों को अपना कृपापात्र बना लेते हैं, उससे न तो उद्योग में सफल होते हैं न ही संतुलन व अनुशासन बन पाता है।

4. कर्मचारियों को ऐसे आदेश न दें जो अस्पष्ट हों या जो मानसिक तनाव पैदा करने वाले हों। यदि नेता ऐसा करता है तो उसके तथा कर्मचारियों के बीच द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा हो जाती है और संघर्ष की स्थिति चालू हो जाती है। गलती से कभी कोई त्रुटिपूर्ण सुझाव या आदेश दिए् जाने पर उसे स्वीकार करना अधिक लाभदायक रहता है। उसे मुद्दे पर बहस नहीं करनी चाहिए् तथा न ही कर्मचारियों पर दोष लगाना चाहिए। एक सफल नेता के लिए आवश्यक है कि वह न ही जल्दी में आदेश दे और न ही जल्दी में अकारण अपने सुझावों को ध्यान करे।

5. नेता को चाहिए कि वह कर्मचारियों की आलोचना न करे, उसे एकान्त में समझाए। किसी के सामने डांट फटकार न करे। इससे कर्मचारी का अहं सुरक्षित रहता है तथा वह अपमान महसूस नहीं करता है।

18.9 जनतांत्रिक नेता के कार्य (Fuctions of a Democratic Leader)

एक जनतांत्रिक नेता के निम्न कार्य हैं–

18.9.1 समस्याओं की ओर ध्यान देना

नेता को चाहिए कि वह कर्मचारी की समस्याओं पर ध्यान दे, इससे कर्मचारी में निराशा की स्थिति पैदा नहीं होती। यदि उनकी समस्याओं को नजरअन्दाज किया जाता है या उन्हें दबाने का प्रयास किया जाता है तो कर्मचारी पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए् उनकी समस्याओं पर उचित विचार-विमर्श करना चाहिए।

18.9.2 सामूहिक बैठक

नेता को कर्मचारियों के साथ में सामूहिक बैठक का आयोजन करना चाहिए। जिसमें कर्मचारियों के विचारों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए् तथा अपने सुझाव देने चाहिए। कर्मचारियों को सामूहिक कार्य करने की प्रेरणा देनी चाहिए। समूह में बैठकर कर्मचारियों की समस्याओं पर विचार-विमर्श का आदान-प्रदान करना चाहिए।

18.9.3 निश्चित उद्देश्य की जानकारी देना

कर्मचारियों को उनके समूह के उद्देश्य की भलीभांति जानकारी देनी चाहिए। साथ में यह भी आवश्यक है कि उद्देश्य तक पहुंचने वाले साधनों में किसे, किस तरह अपनाया जाय आदि कार्य जन तांत्रिक नेता को करने चाहिए। इससे कर्मचारी को लक्ष्य प्राप्ति के लिए उचित कार्यों की जानकारी हो जाती है।

18.9.4 कार्यक्षमता के मापदण्ड निश्चित करना

जनतांत्रिक नेता को चाहिए कि वह कर्मचारियों की कार्यक्षमता के मापदण्ड निश्चित कर दे और उससे परिचित करा दे।

18.9.5 उचित निर्णय

नेता को चाहिए कि वह उचित निर्णय ले और कर्मचारियों को भी वे निर्णय मान्य हों। कर्मचारी वर्ग यदि निर्णयों में शंका व्यक्त करे तो उसे यह भी बताना चाहिए कि वे अपनी शंका का समाधान सामूहिक बैठक में कर सकते हैं।

18.9.6 प्रेरणा देना

कर्मचारी को इस बात का आभास करना चाहिए कि उसकी कठिन मेहनत, ईमानदारी आदि से उत्पादन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इससे संस्था की प्रगति होती है जिसमें कर्मचारियों की ही प्रगति है। इस प्रगति के लिए कर्मचारियों को विशेष पारितोषिक, आर्थिक लाभांश, पदोन्नति आदि दिए् जाने की चर्चा करना, जनतांत्रिक नेता का कार्य है। इससे कर्मचारी को एक प्रकार की राहत मिलती है, वह कार्य के प्रति उत्साहित होता है।

18.10 नेतृत्व के नियम

उद्योग में नेता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने व्यवहार में कुछ मूलभूत नियमों को भी शामिल करे। इससे कर्मचारी और नेता के बीच सन्तुलन बना रहता है। कुछ नियम इस प्रकार हैं-

18.10.1 समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनना

कर्मचारियों की अपनी समस्याएं होती हैं जिन्हें नेता के सम्मुख रखते हैं। ऐसे में यदि नेता उत्तेजित हो जाता है तो कर्मचारी अपनी बात को पूरा नहीं बता पाता है। इससे कर्मचारी हतोत्साहित हो जाता है। इसलिए् कर्मचारी को बात करते समय बीच

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में भी नहीं टोकना चाहिए या उसे रोकना नहीं चाहिए। इससे कर्मचारी के मन में उपेक्षा का भाव पैदा होता है। इसके विपरीत कर्मचारी की बातों को शांतिपूर्वक एवं धैर्यता से सुनना चाहिए। इससे कर्मचारी का विश्वास अपने नेता के प्रति बना रहता है। वे नेता की अवहेलना भी नहीं करते हैं।

18.10.2 सोच समझकर निर्णय लेना

नेता को चाहिए कि वह कोई भी निर्णय लेने में जल्दबाजी न करे। सोच-समझकर लिया हुआ निर्णय बाधक नहीं बनता है। इससे कई समस्याओं को उचित तरीके से सुलझाया जा सकता है।

18.10.3 कर्मचारियों को हतोत्साहित न करना

यदि नेता कर्मचारियों को हतोत्साहित करेगा तो निश्चित ही उसका प्रभाव उद्योग में पड़ेगा। कर्मचारियों को समय-समय पर उत्साहित करना चाहिए ताकि कर्मचारी अपने कार्य के प्रति जागरूक रह सकें। यदि कर्मचारी अपनी समस्या लेकर आता है तो भी उसे डांट-फटकार नहीं देनी चाहिए। वरन् उनका मनोबल बढ़ाना चाहिए।

18.10.4 नेता कम से कम संवेदनशील व संवेगशील हो

उद्योग में प्राय: नेता के सामने सम तथा विषम परिस्थिति आती रहती है। यदि नेता इन परिस्थितियों में ही अपने को समाहित कर ले तो वह उद्योग के लिए अच्छा नहीं होगा। नेता की शिकायत अधिकतर संवेगपूर्ण होती है। ऐसे में यदि नेता स्वयं पर नियंत्रण न रखकर कर्मचारियों के साथ संवेगपूर्ण ढंग से व्यवहार करे तो समस्या और भी उलझ सकती है। इसके विपरीत यदि कर्मचारी पर आवश्यकता से अधिक संवेदना करता है तो भी कर्मचारी इसका लाभ उठा सकते हैं। इसलिए नेता को विवेकपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

18.10.5 नेता स्वयं वाद-विवाद से बचा रहे

प्राय: देखा जाता है कि वाद-विवाद वैमनस्यता पैदा करता है। इसलिए नेता को कर्मचारियों के साथ वाद-विवाद से बचना चाहिए। अधिक वाद-विवाद से कर्मचारी भी अपने को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। कर्मचारियों को आज्ञाएं दी जा सकती हैं। उन्हें थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए, इससे कर्मचारी एक अतिरिक्त बोझ समझने लगता है।

18.10.6 कर्मचारियों की प्रशंसा करना

कर्मचारी उद्योग में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। नेता को चाहिए कि वह समय आने पर उसकी प्रशंसा करे। प्रशंसा सबके सामने हो। इससे कर्मचारी प्रसन्नता का अनुभव करता है। उसका मनोबल इससे बढ़ता है। वह अपने कार्य को मेहनत तथा लगन से करने लगता है। इसके विपरीत यदि कर्मचारी की बुराइयों को सबके सामने कहा जाय तो कर्मचारी की स्थिति तनावपूर्ण होगी। उसका प्रभाव उद्योग पर पड़ेगा। इसलिए नेता कर्मचारी की बुराइयों को एकान्त में कहे इससे कर्मचारी का अहम सुरक्षित रहता है।

18.11 अधिकारियों से संबंधित अनुसंधान

हाउजर (J. D. Houser) नामक मनोवैज्ञानिक ने अधिकारियों के मनोविज्ञान को समझने के लिए प्रश्नावली तैयार की। इससे यह जानने का प्रयास किया गया कि अधिकारी जो कि औद्योगिक वातावरण से घिरे रहते हैं और जिनका कर्मचारियों से सीधा संपर्क रहता है तो उनकी मनोदशा क्या होगी? यह प्रश्नावली इस प्रकार है-

1. औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं क्या है?
2. एक अधिकारी के रूप में कर्मचारियों के प्रति क्या दायित्व होने चाहिए?

इसी प्रकार के कई प्रश्न बनाए गए। इन प्रश्नों से जो उत्तर सामने आए उनका विश्लेषण करने पर निम्न जानकारी प्राप्त हुई-

1. आशंका तथा भय की स्थिति-अधिकारी वर्ग, नेत आदि को एक विशेष प्रकार का भय बना रहता है। अधिकारी हमेशा इसलिए आशंकित रहता है कि कर्मचारियों की संख्या ज्यादा होती है। यदि वे संगठित हो जाएंगे तो वे मालिकों को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचा सकते हैं। अधिकारी वर्ग इसलिए भी भयभीत रहता है कि यदि कर्मचारियों पर कार्य के लिए दबाब डाला जाए तो भी कर्मचारी उसे नुकसान पहुंचा सकते हैं।

2. अधिकार से संबंन्धित आत्मसंतोष की भावना- उद्योग में असंतोष का कारण होता है अधिकारी का तानाशाहपूर्ण व्यवहार। वह अधिकारी अधिक संतुष्ट रहता है तो तानाशाही पर अधिक विश्वास करता है जबकि वे अनायास रूप से दबाव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और कुंठा की स्थिति में रहते हैं। तानाशाही का मूल होता है—अधिकार लिप्सा। इससे आए दिन हड़ताल होती रहती है जिससे उत्पादन का स्तर गिर जाता है।

3. आत्म–अभिव्यक्ति–अधिकारी प्रायः अन्य अधिकारियों की परवाह के बिना अपनी तथा प्रबंधकों की नीति के विरुद्ध अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए अनुचित कदम उठा लेते हैं। इस कारण अन्य प्रबन्धकों को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

4. सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीनता– अधिकारियों को चाहिए कि वह कर्मचारियों की समस्याओं का विश्लेषण सामाजिक पर्यावरण को दृष्टि में रखते हुए करें। कर्मचारियों की सामाजिक परेशानियों को कार्यदक्षता और उत्पादन से जोड़ना चाहिए, अधिकारी को सदैव इस बात के प्रति जागरूक रहना चाहिए जिससे कर्मचारी का सामाजिक समायोजन और पारिवारिक संतुलन बना रहे।

18.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नेतृत्व के स्वरूप को समझाते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. सफल नेता में कौन–कौन से गुण होने चाहिए?
3. जनतांत्रिक नेता के क्या कार्य हैं?
4. नेतृत्व के क्या नियम हैं?

18.13 संदर्भ ग्रंथ – 1. उद्योग एंव संगठन मनोविज्ञान : दिनेश कोचर, 2. औद्योगिक मनोविज्ञान : डॉ. आर. के. ओझा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 19 थकावट एवं दुर्घटना

संरचना

19.0 प्रस्तावना
19.1 उद्देश्य
19.2 दुर्घटना : स्वरूप एवं परिभाषा
19.3 दुर्घटना-प्रवणता
19.3.1 संयोगवश दुर्घटना
19.3.2 असमान पात्रता
19.3.3 विवृद्ध ग्रहणशीलता
19.3.4 ह्रासित ग्रहणशीलता
19.4 दुर्घटना की रिपोर्ट
19.4.1 तिथि, दिन का समय तथा पारी का स्थान
19.4.2 कार्य-वर्गीकरण, कार्य-क्रियान्वयन और कार्य इकाई
19.4.3 दुर्घटना प्रारूप
19.4.4 दुर्घटना का तत्कालिक कारण
19.4.5 दुर्घटना के परिणाम
19.4.6 अनुभव
19.4.7 मनोवैज्ञानिक प्रदत्त
19.5 दुर्घटना के प्रमुख कारक
19.5.1 कार्य परिस्थितियां
19.5.2 कार्य विधियां
19.5.3 कर्मचारी
19.6 दुर्घटना रोकने के उपाय
19.6.1 यांत्रिक सुरक्षा उपाय
19.6.2 अप्रत्यक्ष सुरक्षा सावधानियां
19.6.3 मनोवैज्ञानिक सुरक्षा उपाय
19.7 दुर्घटनाओं के दुष्परिणाम
19.7.1 आर्थिक हानि
19.7.2 वैयक्तिक हानि
19.7.3 सामाजिक हानि
19.8 दुर्घटना प्रवणता के लिए परीक्षण
19.8.1 संवेदी-गतिवादी परीक्षण
19.8.2 बुद्धि परीक्षण
19.8.3 संवेगात्मक परीक्षण
19.8.4 पेशीय एवं प्रत्यक्षिक परीक्षण
19.8.5 नैदानिक परीक्षण
19.9 औद्योगिक थकान
19.9.1 औद्योगिक थकान क्या है?
19.9.2 थकान का स्वरूप
19.9.3 थकान के कारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.9.4 थकान दूर करने के उपाय
19.9.5 थकान का मापन
19.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.0 प्रस्तावना

एक समय में दुर्घटना को दैवी प्रेरणा का कारण माना जाता था। विज्ञान के विकास और उद्योग में मनोविज्ञान के आगमन से इस पुरानी मान्यता को निरर्थक माना गया। इस समस्या की ओर विद्वानों का ध्यान गया, धीरे-धीरे औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया गया। विद्वानों ने दुर्घटना से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण प्रदत्तों का संकलन कर इसे अपने शोधकार्य का मुख्य विषय बना दिया। पश्चिमी देशों ने इस दिशा में बहुत प्रगति की। भारत के विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे उद्योगों में इस विषय की गहराई पर रूचि पैदा होने लगी। रेल विभाग, रोडवेज विभाग तथा वैयक्तिक दुर्घटनाओं के कारणों पर भी विद्वानों ने प्रकाश डाला है परन्तु असहयोग एवं आवश्यक सामग्री के अभाव में दुर्घटनाओं से सम्बंधित ज्ञान क्रमबद्ध नहीं हो पाया है। आधुनिक उद्योगों में दुर्घटना को अभिशाप समझा जाता है। इन दुर्घटनाओं से उद्योग में भारी क्षति होती रहती है।

19.1 उद्देश्य

1. दुर्घटना के स्वरूप एवं परिभाषा को जान सकेंगे।
2. दुर्घटना-प्रवणता को जान सकेंगे।
3. दुर्घटना की रिपोर्ट कैसे बनाई जाती है के बारे में जान सकेंगे।
4. दुर्घटना के प्रमुख कारकों को समझ सकेंगे।
5. औद्योगिक थकान की जानकारी ले सकेंगे।

19.2 दुर्घटना : स्वरूप एवं परिभाषा (Accident : Nature and Definitions)

सामान्य बोलचाल की भाषा में उस अप्रत्याशित घटना को दुर्घटना माना जाता है जिसमें जन-धन दोनों की क्षति होती है किन्तु औद्योगिक मनोविज्ञान में विशेष अर्थों में दुर्घटना शब्द का उपयोग किया जाता है। औद्योगिक दुर्घटनाएं सिर्फ वे होती हैं जो कार्य परिस्थिति तथा कार्य संपादन प्रणालियों में कतिपय हुई त्रुटियों के कारण घटित होती है। दुर्घटना शब्द को परिभाषा में बांधना कठिन कार्य है, फिर भी ये ऐसी अप्रिय दुर्घटनाएं होती हैं जो अप्रत्याशित एवं अदूरदर्शी होती हैं। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि दुर्भिक्ष, अकाल, संक्रामक रोग भूकंप आदि अप्रत्याशित हैं और इनमें ही जानमाल की क्षति होती है, फिर भी इन्हें दुर्घटना नहीं कहा जा सकता है। उद्योगों के संबंध में इन विचारों को उपयुक्त नहीं माना जा सकता है। औद्योगिक दुर्घटनाएं उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों तक ही सीमित होती है, जिनका संबंध यंत्र-चालन तथा परिवहन-चालन से होता है। इन दुर्घटनाओं की उत्पत्ति कार्य तथा कार्यकर्त्ता से संबंधित दोषपूर्ण अवस्थाओं के कारण होती है।

दुर्घटना की परिभाषा कार्यों एवं परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। आधुनिक मनोविज्ञानी दुर्घटना को नए अंदाज से देखते हैं। उनका मत है कि अलग-अलग देशों में श्रम कानून (Labour Laws) भी अलग-अलग हैं। इसलिए दुर्घटना की परिभाषा भी बदलती रहती है।

19.3 दुर्घटना-प्रवणता (Accident proneness)

सामान्यतया दुर्घटना का कारण कर्मचारी की असावधानी या लापरवाही को माना जाता है। संयोग को एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में दुर्घटना एवं निरीक्षणों द्वारा इस तथ्य का अनुभव किया गया कि कुछ व्यक्तियों द्वारा ही दुर्घटनाएं अधिक होती हैं। कुछ व्यक्तियों के कार्य तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों द्वारा दुर्घटनाएं होती हैं। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के बाद दुर्घटना-विश्लेषण का कार्य मनोवैज्ञानिकों को दिया गया। मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित तथ्य था कि दुर्घटनाओं की ग्रहणशीलता (Susceptibility) वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण होती है। न्यूयार्क में हुई खोज द्वारा इस तथ्य का पता चला कि दुर्घटनाएं संयोगवश न होकर कुछ व्यक्तियों द्वारा आमतौर पर होती हैं तथा अन्य व्यक्ति परिस्थितियों के कारण दुर्घटना करते हैं। इसी संदर्भ में न्यूयार्क की एक खोज का अवलोकन इस प्रकार है—

"Accident do not distribute them selves by chance, but that they happen frequntly to some men and infrequently to others as a logical result of a combination of circumstances."

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनोवैज्ञानिकों के विचार में दुर्घटना-प्रवणता कर्मचारी का शीलगुण (Trait) है जिसके द्वारा कर्मचारी दुर्घटना का भागीदार होता है। इस संबंध में पूर्व में हुई खोजों से इस बात का पता चला कि ज्यों-ज्यों दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारियों की संख्या कम होगी, त्यों-त्यों दुर्घटना बारंबारता (Accident frequency) में भी वृद्धि होगी। प्रारंभिक शोधकर्ताओं ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया कि दुर्घटना का वक्र (Curve of accident) अंग्रेजी अक्षर 'J' के समान होता है। इस कथन का अभिप्राय था कि यदि एक कर्मचारी द्वारा एक महिने में तीन दुर्घटनाएं होती हैं तो अगले महिने भी उससे औसतन तीन ही दुर्घटनाएं होंगी। इसके बाद इस दिशा में हुए अध्ययनों द्वारा यह पता लगा कि दुर्घटना में पूर्णता नहीं पायी जा सकती। यदि कार्य-परिस्थितियों में पर्याप्त सुधार किया जाए तो दुर्घटनाओं में कमी आ सकती है। मिण्ट्ज तथा ब्लम (Mitz & Blum) द्वारा इस मत की घोर निंदा की गई। अन्य खोजों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि शीलगुणों की तरह दुर्घटना-प्रवणता भी शाश्वत न होकर परिवर्तनशील है। ग्रीनवुड तथा वुड्स (Greenwood & Woods) द्वारा दुर्घटना-प्रवणता के संबंध में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किए गये। उन्होंने दुर्घटना हेतु वैयक्तिक भिन्नताओं को उत्तरदायी माना। इन दोनों विद्वानों द्वारा दुर्घटना-प्रवणता के चार सिद्धान्त बताए गये, जो इस प्रकार हैं—

1. संयोगवश दुर्घटना (Accident by chance)
2. असमान पात्रता (Unequal Liabilitie)
3. विवृद्ध ग्रहणशीलता (Increased susceptibility)
4. ह्रासित ग्रहणशीलता (Decreased suscepatibility)

19.3.1 संयोगवश दुर्घटना (Accident by chance)

इस सिद्धान्त के अनुसार दुर्घटना में व्यक्ति का कोई योग न होकर संयोग पर दैवयोग का हाथ होता है। इस विधि के समर्थकों का विचार है कि यदि समय या संयोग खराब होता है तो कोई भी व्यक्ति या किसी प्रकार की सुन्दर विधि होने पर भी दुर्घटना होकर रहती है। इस कथन की सार्थकता हेतु ग्रीनवुड तथा वुड्स ने फैक्ट्री में कार्यरत 648 महिलाओं पर अध्ययन किया। इनके द्वारा दो कालों में होने वाली दुर्घटनाओं की तुलना की गई। दोनों में एक विशेष सह-संबंध (Correlation) पाया गया। इस निष्कर्ष द्वारा संयोग की बात को निरर्थक सिद्ध कर दिया गया।

19.3.2 असमान पात्रता (Unequal liabilities)

इस सिद्धान्त का तात्पर्य है कि कुछ व्यक्ति ही दुर्घटना के पात्र होते हैं। अर्थात् दुर्घटना-प्रवणता भी एक शीलगुण है जो कुछ ही व्यक्तियों में प्रमुख होता है। यह गुण निरन्तर तथा नित्य कार्यों, परिस्थितियों में प्रकट होता रहता है। इसी सिद्धान्त के द्वारा दुर्घटना-प्रवणता के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ।

19.3.3 विवृद्ध ग्रहणशीलता (Increased susceptibility)

इस सिद्धान्त के अनुसार दुर्घटना के कारणों का पता चलता है। कारणों की जानकारी के बाद कर्मचारी दुर्घटना से संबंधित उन बातों के प्रति सजग हो जाते हैं जो दुर्घटना के लिए संभावित होते हैं। इससे आगे आने वाले कर्मचारियों की दुर्घटना ग्रहणशीलता घट जाती है।

19.4 दुर्घटना की रिपोर्ट (The accident report)

दुर्घटना की रिपोर्ट सूचनाएं प्राप्त करने का साधन है। इसके द्वारा ही दुर्घटना-निरोध-कार्यक्रम (Accident prevention programme) हेतु विश्वसनीय सूचना प्राप्त होती है। एक अच्छी दुर्घटना रिपोर्ट निम्न प्रकार होनी चाहिए-

1. तिथि, दिन का समय, पारी का स्थान (Date, Hour of the day, Shift & Location)
2. कार्य वर्गीकरण, कार्य-क्रियान्वयन और कार्य इकाई (Job analysis, Job operation and Job-unit)
3. दुर्घटना-प्रारूप (Accident type)
4. दुर्घटना का तात्कालिक कारण (Immediate cause of the accident)
5. दुर्घटना के परिणाम (Results of the Accident)
6. अनुभव (Experience)
7. मनोवैज्ञानिक प्रदत्त (Psychological data)

19.4.1 तिथि, दिन का समय तथा पारी का स्थान (Date, Hours of day, Shift & Location)

कार्य की अवस्थाएं प्राय: कभी-कभी एक व्यवस्थित ढंग से दिन-प्रतिदिन, घंटा-प्रतिघंटा तथा पारी से पारी में परिवर्तित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होती रहती है। रात्रि में कार्य करने वाले कर्मचारी का काम साधारणतया अधिक बदला हुआ होता है। इसी प्रकार काम के बाद थकान का प्रभाव रहता है। इसी तरह अन्य कारण भी दुर्घटना के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

19.4.2 कार्य-वर्गीकरण, कार्य-क्रियान्वयन और कार्य इकाई (Job-analysis, Job operation and Job-unit)

इस प्रदत्त के द्वारा दुर्घटना उत्पन्न करने वाले प्रारूप से संबंधित सूचना मिलती है। कार्यों के क्रियान्वयन में होने वाली आकस्मिक दुर्घटनाओं की संभावना का निर्धारण किया जा सकता है। माना एक पेंटर सीढ़ी के डंडों की ओर अपनी पीठ करके उतरते समय गिर गया। उसका कार्य-विश्लेषण है-पेंटर, उसका क्रियान्वयन (Job-operation) है सीढ़ी का प्रयोग करना और उसका कार्य-क्रियान्वय इकाई (Job opration unit) सीढ़ी से उतरना होगा।

19.4.3 दुर्घटना प्रारूप (Accident type)

इस वर्ग की सूचना में दुर्घटना की प्रकृति का सही वर्णन शामिल होता है। यह प्रदत्त विस्तृत नहीं होता है। पेंटर जो कि सीढ़ी से गिर गया था, उसके लिए इतना ही कथन काफी होगा कि वह 'जमीन पर गिरा'।

19.4.4 दुर्घटना का तात्कालिक कारण (Immediate cause of the Accident)

इसमें विशिष्ट अथवा असुरक्षित कार्य या दशाएं अथवा दोनों से संबंधित दुर्घटना के कारणों की सूचना शामिल है। इस सूचना में यह उत्तर प्राप्त हो जाता है कि अमुक सुरक्षा प्रक्रिया के उल्लंघन से विशिष्ट घटना घटी है। वास्तव में दुर्घटना क्या करने और क्या न करने से घटी है?

19.4.5 दुर्घटना के परिणाम (Result of the Accident)

इसके अन्तर्गत चोट की शारीरिक स्थिति, चोट का वर्ण्न और सम्पत्ति के नुकसान की मात्रा को शामिल किया जाता है। इसके लिए डॉक्टर की सहायता तथा सम्पत्ति नुकसान के मूल्यांकन हेतु जिम्मेदार व्यक्ति की सहायता ली जा सकती है।

19.4.6 अनुभव (Experience)

दुर्घटना प्रारूप के संबंध में काम अनुभव के महत्त्व को विश्वसनीय प्रदत्त के सावधानीपूर्ण विश्लेषण से ही किया जा सकता है। इसका स्रोत दुर्घटना रिपोर्ट होती है। सुरक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना बनाने में इस प्रकार का प्रदत्त बहुत सहायक होता है।

19.4.7 मनोवैज्ञानिक प्रदत्त (Psychological data)

अभियोग्यता-परीक्षण, व्यक्तित्व तालिका और निष्पादन-परीक्षण पर उपलब्ध आंकड़ों को दुर्घटना रिपोर्ट में शामिल किया जा सकता है। इससे दुर्घटना में सहायक व्यक्तिगत कारकों की सूचना मिल सकती है।

19.5 दुर्घटना के प्रमुख कारक

उपर्युक्त वर्णित संपूर्ण प्रदत्त दुर्घटना रिपोर्ट की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इससे दुर्घटना के प्रमुख कारक इस प्रकार हैं-

1. कार्य परिस्थितियां (Work situations)
   - (i) तापमान (Temperature)
   - (ii) प्रकाश (Illumination)
   - (iii) पाली (Shifts)
2. कार्य विधियां (Work methods)
   - (i) कार्यकाल की लंबाई (Length of work-period)
   - (ii) कार्य की कठोरता (Sevinity of work)
   - (iii) उत्पादन-गति (Speed of production)
   - (iv) थकान (Fatigue)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. कर्मचारी (Worker)

(i) आयु (Age)

(ii) अनुभव (Experience)

(iii) स्वास्थ्य तथा शारीरिक दुर्घटना (Health and Phisical Deficiency)

(iv) यौन (Sex)

(v) मानसिक तथा संवेगात्मक अवस्था (Mental and Emotional state)

19.5.1 कार्य परिस्थितियां (Work-situations)

कर्मचारी जिन परिस्थितियों में कार्य करते हैं आमतौर पर वे परिस्थितियां ही उसे दुर्घटना उन्मुख बना देती हैं। क्योंकि कार्य परिस्थितियां कर्मचारी तथा कार्य के अनुकूल नहीं होती हैं। इसलिए कर्मचारी दुर्घटनाओं से ग्रस्त हो जाता है। कार्य परिस्थितियों में निम्न कारण हैं-

19.5.1.1 तापमान (Temparature)- अनेक विद्वानों के अन्वेषण से यह सिद्ध हुआ है कि उच्च या न्यून तापमान की अपेक्षा मध्यम तापमान में दुर्घटनाएं कम होती हैं। उच्चतम तथा न्यूनतम तापमान से कर्मचारी का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है, जो दुर्घटना में सहायक हो सकता है। मध्यम तापमान में कर्मचारी का मानसिक संतुलन ठीक रहता है साथ ही शारीरिक अंग भी सवतंत्रापूर्वक कार्य करते हैं। इससे दुर्घटना की संभावना भी कम रहती है। वैयक्तिक भिन्नताओं तथा कार्य-परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के कारण तापमान को घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

19.5.1.2 प्रकाश (Illumination)- समुचित प्रकाश कार्य के लिए नितान्त आवश्यक होता है। स्टीफेन्सन (Stephenson) ने इस क्षेत्र में अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि यदि समुचित प्रकाश की व्यवस्था हो तो रात को दुर्घटनाएं कम हो सकती हैं।

19.5.1.3 पाली (Shift) - दुर्घटना को कम तथा अधिक करने में पालियों का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। बहुत से उद्योगों में कार्य की अधिकता से तीन पालियां बनाई जाती हैं जिससे कर्मचारी अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर सके। क्योंकि अधिक कार्य के थकान से दुर्घटनाओं की संभावना बढ़ जाती है। वर्नन (Vernon) ने अपने अन्वेषणों के आधार पर लिखा है कि दिन की पाली की अपेक्षा रात की पाली में 17: दुर्घटनाए कम होती हैं। उनके विचार में इसका कारण यह है कि दिन की पाली में कर्मचारी जल्दी काम पर आते हैं और धीरे-धीरे असावधान हो जाते हैं। रात की पाली में आने के लिए कर्मचारी कई घंटे पहले से जगे होते हैं। अत: कर्मचारी सावधान होकर कार्य करते हैं। वर्तमान समय में औद्योगिक व्यवस्था में बहुत बड़ा अन्तर आने से वर्नन का यह मत सही नहीं साबित होता है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो यह निष्कर्ष निकलता है कि रात की दुर्घटनाएं इसलिए कम होती हैं क्योंकि रात को दिन की अपेक्षा शोर तथा कोलाहल कम रहता है। इसलिए कर्मचारी का ध्यान भी कार्य पर पूरी तरह से केन्द्रित रहता है।

19.5.2 कार्यविधियां (Work-Method)

इसके अन्तर्गत दुर्घटनाओं के निर्णायक तत्त्व इस प्रकार हैं-

19.5.2.1 कार्यकाल की लंबाई (Length of work-period)-विद्वानों ने अन्वेषणों द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित किया है कि उन कर्मचारियों द्वारा दुर्घटनाएं ज्यादा होती हैं जो निश्चित घंटों से अतिरिक्त भी कार्य करते हैं। अर्थात् कार्य की अधिकता से दुर्घटना में वृद्धि तथा कार्य की कमी से दुर्घटना में भी कमी आती है। इस संदर्भ में ओसबर्न तथा वर्नन (Osborne nd Vernon) का अन्वेषण उल्लेखनीय है। इन्होंने अन्वेषण में यह पाया कि कार्य के घंटे घटा देने से दुर्घटनाओं में भी कमी आ जाती है। इस संबंध में वर्नन ने एक और अध्ययन किया। उसमें इस तथ्य का निरूपण किया कि कार्य के घंटे कम न कर यदि कार्य की गति को मंद कर दिया जाता है तो दुर्घटना बारंबारता (Accident frequency) में निश्चित मात्रा में कमी आती है।

19.5.2.2 कार्य की कठोरता (Severity of work)- जिन कार्यों में अधिक श्रम करना पड़ता है, उन्हें कठोर कार्य कहा जाता है। प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ है कि कठोर शारीरिक श्रम वाले कार्यों में दुर्घटनाएं भी अधिक होती हैं। इस संदर्भ में विद्वानों ने अनेक अन्वेषण किए। 1912 में गोल्डमार्क (Goldmork) ने एक अध्ययन किया। उसने इस तथ्य का निरूपण किया कि कार्य के घंटे बढ़ने से थकान भी बढ़ती जाती है। इसलिए जिस कार्य के लिए शारीरिक श्रम अधिक करना पड़ता है, दुर्घटनाओं की संभावना भी बढ़ जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.5.2.3 उत्पादन-गति (Speed of production)- ज्यों-ज्यों उत्पादन की गति बढ़ेगी दुर्घटनाएं भी बढ़ती जायेंगी। माइल्स (Miles) ने पेण्डुलम टेस्ट (Pendulum Test) के द्वारा यह विचार पुष्ट किया कि गति की तीव्रता से दुर्घटनाओं की बारंबारता में वृद्धि होती है। कार्य गति की तीव्रता से कर्मचारी की दुर्घटना के अन्य निर्धारक तत्त्वों पर विशेष ध्यान का अवसर नहीं मिल पाता है। इसलिए इस परिस्थिति में दुर्घटनाओं की बारंबारता का बढ़ना आवश्यक है।

19.5.2.4 थकान (Fatigue)- थकान के कारण कर्मचारी दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं। विद्वानों द्वारा किए गये अन्वेषणों से यह पता चला है कि कार्य के घंटों के बढ़ने के साथ ही थकान भी बढ़ती जाती है। इस स्थिति में दुर्घटना की संभावना रहती है और दुर्घटनाएं भी इसी समय होती हैं। वर्नन (Vernon) का विचार है कि थकान की अपेक्षा उत्पादन गति बढ़ जाने से दुर्घटनाएं अधिक होती हैं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि दुर्घटना का संबंध थकान से अवश्य होता है।

19.5.3 कर्मचारी (worker)

दुर्घटना कर्मचारी द्वारा भी होती हैं। कर्मचारी के अनेक पक्ष होते हैं जो दुर्घटना के लिए उत्तरदायी होते हैं। वे पक्ष इस प्रकार हैं-

19.5.3.1 आयु (Age)- इस संबंध में हुए अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि अपरिपक्व आयु (Immature age) के व्यक्ति परिपक्व आयु (Mature Age) वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक दुर्घटना के शिकार होते हैं। इस मत का समर्थन लिपमैन (Lipmann), गेट्स (Gates) तथा श्मित (Schmit) आदि के अध्ययनों से होता है।

19.5.3.2 अनुभव (Experience)- अनुभवी कर्मचारियों की अपेक्षा अनुभवहीन कर्मचारी अधिक दुर्घटना करते हैं। फिशर के अध्ययन में यह पाया गया कि कम अनुभव रखने वाले कर्मचारी ज्यादा दुर्घटनाएं करते हैं। इस प्रकार दुर्घटना का एक प्रमुख कारण कर्मचारियों की अनुभवहीनता है।

19.5.3.3 स्वास्थ्य तथा शारीरिक दुर्बलता (Health and Phisical Deficiency)- मनुष्य का प्रत्येक कार्य उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। जिन व्यक्तियों में शारीरिक दोष या रोग पाए जाते हैं, उनके द्वारा ही अधिक दुर्घटनाएं होती हैं। न्यूबोल्ड (Newbold), फारमर तथा चेंबर (Farmer and Chamber) तथा वाइटल्स (Viteles) ने इस क्षेत्र में अध्ययन किया। जिससे यह तथ्य सामने आया कि स्वास्थ्य का दुर्घटना से संबंध होता है। जिनका स्वास्थ्य कमजोर होता है उनके द्वारा अधिक दुर्घटनाएं होती हैं।

19.5.3.4 यौन (Sex) - साधारणतया अधिक शारीरिक श्रम में स्त्रियां अयोग्य होती हैं। उनके द्वारा दुर्घटनाएं भी अधिक होती हैं। स्त्रियां स्वभाव से कोमल होती हैं तथा वे खतरनाक परिस्थितियों में स्वयं को संभाल नहीं पाती हैं। इस कारण वे दुर्घटनाओं की शिकार भी ज्यादा होती हैं।

19.5.3.5 मानसिक तथा संवेगात्मक अवस्था (Mental and Emotional State)- मानसिक तथा संवेगात्मक अवस्थाओं का दुर्घटनाओं से घनिष्ठ संबंध होता है। मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति अधिक दुर्घटनाएं करते हैं। हेरेसी (Hersey) नामक विद्वान के अध्ययन से यह सिद्ध हुआ है कि संवेगात्मक स्थिति अस्थिर रहने पर दुर्घटना अधिक होती है। अर्थात् मानसिक असंतुलन से कर्मचारी दुर्घटना का शिकार होगा।

19.6 दुर्घटना रोकने के उपाय

बड़े-बड़े उद्योगों के सामने यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि नित्य प्रति होने वाली दुर्घटनाओं को किस प्रकार रोका जा सकता है? प्रत्यक्ष रूप से परिज्ञात है कि जिन कारणों से दुर्घटनाएं होती हैं यदि उन्हीं कारणों को दूर किया जाए तो बहुत हद तक दुर्घटनाओं में कमी लायी जा सकती है। जैसा कि दुर्घटना के लिए मुख्यतः जिम्मेदार तत्त्व हैं-कर्मचारी, कार्य-परिस्थितियां और कार्य विधियां। यदि इन कारकों पर पर्याप्त सुधार किया जाए तो दुर्घटनाएं कम होने लगेंगी। आधुनिक उद्योगों में दुर्घटनाओं को रोकने हेतु सुरक्षा कार्यक्रमों (Safety programmes) की व्यवस्था होती है। मनोवैज्ञानिक तथा इंजीनियर कर्मचारियों को सुरक्षा संबंधी सूचनाएं देते हैं। मनोवैज्ञानिकों द्वारा सुरक्षा-आदतों के लिए सामग्री प्रस्तुत की गई है। दुर्घटना में कमी लाने वाले तीन प्रकार के सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग किया जाता है। वे इस प्रकार हैं—

1. यांत्रिक सुरक्षा उपाय (Mechanical safety devices)
2. अप्रत्यक्ष सुरक्षा सावधानियां (Indirect safety measures)
3. मनोवैज्ञानिक सुरक्षा उपाय (Psychological safety devices)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.6.1 यांत्रिक सुरक्षा उपाय (Mechanical safety devices

इसके अंतर्गत ऐसी पद्धतियों का निर्माण किया गया है जिससे सुरक्षा बनी रहे। इसके लिए मशीनों में भी सुधार किया गया है। इसमें तीन विशेषताएं हैं–

1. जब इन सुरक्षा उपायों को निकाल दिया जाए तो मशीनें बिल्कुल न चलाई जाएं।
2. ये उपाय ऐसे हों जिनसे किसी प्रकार की गलती न हो।
3. इन उपायों से उत्पादनों पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

19.6.2 अप्रत्यक्ष सुरक्षा सावधानियां (Indirect safety measures)

इसमें वायुमंडलीय दशाओं (Atmospheric Conditions) को नियंत्रित किया जाता है। थकान को नियंत्रित किया जाता है। अधिकाधिक गति (Speed) निर्धारित की जाती है। इसको चार भागों में बांट सकते हैं–

(i) थकान का निराकरण (Elimination of fatigue)
(ii) कार्य के समय उचित गति (Proper speed at work)
(iii) उचित प्रकाश (Proper Lighting)
(iv) नियंत्रित वायुमंडलीय दशाएं (Controlled atmospheric conditions)

19.6.3 मनोवैज्ञानिक सुरक्षा उपाय (Psychological safety divices)

इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की सुरक्षा समितियों, आसनों, विधियों, आदतों के निर्माण और प्रेरणाओं को स्थान दिया जाता है।

19.7 दुर्घटनाओं के दुष्परिणाम (Ill effects of accidents)

दुर्घटना के दुष्परिणामों को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है-

1. आर्थिक हानि (Economic loss)
2. वैयक्तिक हानि (Individual loss)
3. सामाजिक हानि (Social loss)

19.7.1 आर्थिक हानि (Economic loss)

दुर्घटना के समय उद्योगों में मशीनों, कल-पुर्जों आदि की टूट-फूट हो जाती है। कर्मचारी घायल हो जाते हैं। कुछ कर्मचारी अपना जीवन खो बैठते हैं। इस प्रकार घायलों का उपचार तथा मृतकों के परिवारों को आर्थिक सहायता देने में धन व्यय होता है। कभी-कभी अच्छे कर्मचारियों के न रहने से उद्योग पर इसका प्रभाव पड़ता है। मशीनों के क्षतिग्रस्त होने से लंबे समय तक वे ठीक नहीं हो पाती हैं। इससे उत्पादन प्रभावित होता है तथा औद्योगिक, आर्थिक स्थिति असंतुलित होने लगती है।

19.7.2 वैयक्तिक हानि (Individual loss)

उद्योग में बहुत-सी ऐसी दुर्घटनाएं होती हैं जिनका प्रभाव सर्वसाधारण पर पड़ता है। दुर्घटना में कर्मचारियों के हाथ-पैर कट जाते हैं या कोई अंग घायल हो जाता है, वे अपाहिज हो जाते हैं। कई मृत हो जाते हैं। इस प्रकार दुर्घटनाओं से कर्मचारियों का जीवन दु:खद हो जाता है। दुर्घटना के बाद कई कर्मचारी मानसिक रूप से असंतुलित हो जाते हैं। कई मनोस्नायु विकृतियों (Psycho-neurosis) से पीड़ित हो जाते हैं।

19.7.3 सामाजिक हानि (Social loss)

इन दुर्घटनाओं का सामाजिक प्रभाव अपरिमेय है। परिवर में किसी की मृत्यु हो जाए तो परिवार की सामाजिक स्थिति अस्त-व्यस्त हो जाती है। न उचित शिक्षा, न भर पेट भोजन तथा न ही अन्य आवश्यकताएं पूरी हो पाती हैं।

19.8 दुर्घटना प्रवणता के लिए परीक्षण (Tests for the accident proneness)

औद्योगिक मनोविज्ञान ने दुर्घटना प्रवणता के मापन के लिए पांच प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया है। वे इस प्रकार हैं-

1. संवेदी-गतिवादी परीक्षण (Sensory-motor test)
2. बुद्धि परीक्षण (Intelligency tests)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. संवेगात्मक स्थिरता परीक्षण (Emotional stability tests)
4. पेशीय एवं प्रत्यक्षिक परीक्षण (Muscullar and Perceptual tests)
5. नैदानिक परीक्षण (Clinical tests)

19.8.1 संवेदी-गतिवादी परीक्षण (Sensory-motor tests)

इन परीक्षणों द्वारा कर्मचारी के ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक संतुलन का पता लगाया जाता है। इससे कर्मचारियों की नियंत्रण क्षमता का पता चलता है। निम्न ज्ञानात्मक-क्रियात्मक क्षमता के कारण दुर्घटनाओं की संभावना भी बढ़ जाती है। अत: इस प्रकार के परीक्षणों का उपयोग करके सही कर्मचारियों का चुनाव किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों में बिन्दु परीक्षण (Dotting test) प्रतिक्रिया काल (Reaction time) आदि आते हैं। मायर (Mire) ने अपने अध्ययन में देखा कि दुर्घटना और ज्ञानात्मक-क्रियात्मक संतुलन में सीधा संबंध होता है।

19.8.2 बुद्धि परीक्षण (Inteligency tests)

सामान्यतया विद्वानों का मत है कि बुद्धि लब्धांक और दुर्घटना प्रवणता में एक विशेष संबंध है। कुछ विद्वानों का मत है कि इन दोनों का आपस में विशेष संबंध नहीं है। देखा जाता है कि निम्न बुद्धि के लोग दुर्घटना के अधिक शिकार होते हैं। निम्न बुद्धि का व्यक्ति मशीन चलाने में अपने सामान्य ज्ञान का भी उपयोग नहीं करता है। इसलिए भी दुर्घटनाएं भी बार-बार करता है।

19.8.3 संवेगात्मक परीक्षण (Emotional stability tests)

संवेगात्मक अस्थिरता दुर्घटनाओं का कारण होती है। इसलिए कर्मचारी चयन के समय प्रबंधकों को उसकी संवेगात्मक स्थिरता का मापन कर लेना चाहिए। कर्मचारियों की संवेगात्मक स्थिरता का मापन मांसपेशीय एवं ग्रंथीय प्रतिक्रियाओं के आधार पर किया जाता है।

19.8.4 पेशीय एवं प्रत्यक्षिक परीक्षण (Muscular and perceptual tests)

इन परीक्षणों से मांसपेशीय एवं प्रत्यक्षिक प्रतिक्रियाओं का अन्तर ज्ञात किया जाता है। तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला है कि जिन लोगों की पेशीय प्रतिक्रिया प्रत्याक्षिक से शीघ्रतर होती हैं वे व्यक्ति दुर्घटना प्रवण होते हैं।

19.8.5 नैदानिक परीक्षण (Clinical tests)

नियुक्त कर्मचारी यदि दुर्घटनाएं करता है तो उसमें सुधार हेतु औपचारिक परीक्षण दिए जाते हैं। इन परीक्षणों द्वारा कर्मचारी के असंगत और असामस्य व्यवस्था का विश्लेषण किया जाता है। आवश्यकतानुसार कर्मचारी में सुधार किए जाते हैं। संक्षेप में दुर्घटना-उन्मुखता-सूचक विभिन्न परीक्षणों द्वारा प्राप्त परिणाम को अत्यधिक सतर्कता से लागू करने की जरूरत है। आइजेन्क (Eysenck) ने सिद्ध किया की दुर्घटना उन्मुखता की सही-सही जानकारी तथा अध्ययन मात्र सांख्यिकी प्रणाली से न होकर चयन प्रणाली द्वारा हो सकता है। चयन प्रणाली अधिक मनोवैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ होती है।

19.9 औद्योगिक थकान (Industrial fatigue)

उद्योगों में मशीनों के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है, शारीरिक श्रम में कमी आयी है। इससे दुर्घटना, थकान एवं अरोचकता जैसी समस्याओं का समाधान हुआ है। लेकिन यह समाधान जिस अनुपात में होना चाहिए था, उस मात्रा में नहीं हुआ है। मशीनें उत्पादन तो बढ़ाती हैं पर मनुष्य की थकान को कम करने में इनका योगदान नहीं है। मशीनें मनुष्य द्वारा संचालित होती हैं। वे नहीं थकती किन्तु मनुष्य थक जाता है। थकान की अभिव्यक्ति (Manifestation) विविध रूपों में होती है। कभी यह उत्पादन-ह्रास के रूप में प्रकट होती है लेकिन कर्मचारी की भावनाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं देखा जाता है। कभी थकान के कारण व्यक्ति का भावपक्ष (Feeling tone) प्रभावित होता है पर उसका प्रभाव उत्पादन पर नहीं पड़ता। कभी कर्मचारी के भाव तथा उत्पादन दोनों में ही ह्रास होने लगता है। शारीरिक परीक्षणों से थकान के कोई लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। इस प्रकार थकान एक बहुरंगी घटना है जिसकी कई अभिव्यक्तियां हो सकती हैं।

19.9.1 औद्योगिक थकान क्या है? (What is Industrial fatigue)

थकान को साधारणतया सभी लोग जानते हैं, फिर भी इसके स्वरूप को पहचानना बहुत कठिन है। परंपरागत परिभाषा के अनुसार लंबे समय तक कार्य करने के फलस्वरूप घटी हुई क्षमता को ही थकान की संज्ञा दी जाती है। किसी कार्य को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लगातार करने से उत्पादन गति का ह्रास होना ही थकान है। थकान की वैज्ञानिक परिभाषा गिलब्रैथ (Gilbreth) ने दी है। इनकी परिभाषा तीन तथ्यों पर आधारित है-

1. कार्य करने की शक्ति का ह्रास
2. कार्य करने में आनन्द की अनुभूति
3. कार्य रहित घंटों में प्रसन्नता का अभाव

मायर्स के अनुसार थकान की व्यवस्था में व्यक्ति के निम्न स्नायविक स्तर पर से उच्च स्नायविक स्तर का नियंत्रण समाप्त हो जाता है जिससे मांसपेशीय कार्यों में ह्रास के बदले वृद्धि होती है।

थकान की अवस्था में व्यक्ति सही चिंतन नहीं कर पाता है। वह उदास हो जाता है। अधिक कार्य को वह शरीर के लिए हानिकारक मानता है। थका हुआ व्यक्ति ऐसे कार्य करने लगता है जो वह सामान्य स्थिति में नहीं करता है। इस संबंध में अनुसंधानकर्त्ताओं ने अपने निष्कर्षों के आधार पर सिद्ध किया है कि औद्योगिक थकान कर्मचारी के समायोजन के साथ उत्पादन एवं समाज को भी प्रभावित करती है। फ्लोरेंस (Florance) नामक विद्वान ने थकान के अध्ययन को निम्न तीन भागों में बांटा है-

1. कार्य ह्रास (Work decrement), 2. दैहिक स्थिति (Phisical state), 3. थकान की अनुभूति (Feeling of fatigue)

19.9.2 थकान का स्वरूप

थकान के स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

19.9.2.1 मानसिक शक्तियों का ह्रास (Decrease in mental powers)- जिन कार्यों के संपादन हेतु मानसिक शक्तियों का उपयोग होता है, उन कार्यों को लगातार करते रहने से ऐसी अवस्था आती है। जब मानसिक शक्तियों का ह्रास होने लगता है, कार्य के उत्पादन में कमी आने लगती है तथा अन्त में कार्य के प्रति अरूचि पैदा हो जाती है। इसी अवस्था को थकान कहा जाता है। मानसिक कार्यों में मानसिक ऊर्जा का व्यय होता है। इससे व्यक्ति और अधिक कार्य नहीं कर पाता है। वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण प्रत्येक व्यक्ति की कार्य क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है। जिन व्यक्तियों में उच्च प्रेरणा, काम करने की प्रतिज्ञा और उद्देश्य को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जिन व्यक्तियों में होती है, उन्हें जल्दी ही थकान का अनुभव नहीं होता है। इसी प्रकार कुछ असामान्य परिस्थितियों में भी थकान की अनुभूति कम होती है। मानसिक थकान उद्योगपति व कर्मचारी दोनों के लिए हानिकारक होती है। इससे व्यक्ति की प्रसन्नता में कमी होने लगती है। सोचने, कार्य करने की तथा निर्णय की शक्ति का ह्रास होने लगता है। इससे विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाओं की संभावना रहती है।

19.9.2.2 शारीरिक शक्तियों का ह्रास (Decrease in physical power)- थकान के कारण शारीरिक क्रियाएं भी प्रभावित होती हैं। इससे शरीर में अनेक परिवर्तन आते हैं। इसमें श्वास तथा रक्त की गति में वृद्धि हो जाती है। थकान के समय जो शारीरिक परिवर्तन होते हैं वे सभी रासायनिक प्रतिक्रियाओं पर आधारित होते हैं। ये प्रतिक्रियाएं निम्नलिखित हैं-

1. मांसपेशी में शक्ति उत्पन्न करने वाले तत्त्वों की कमी- शरीर में कार्य संपादन हेतु शक्ति ग्लाइकोजन (Glycogen) नामक पदार्थ से प्राप्त होती है। यह पदार्थ शर्करा (Suger) में परिवर्तित होता रहता है। अधिक समय तक कार्य करने से मांसपेशियों में विभिन्न प्रकार के विषैले तत्त्व एकत्रित हो जाते हैं। अर्थात् कार्य की निरन्तरता से ग्लाइकोजन नामक तत्त्व लैक्टिक एसिड (स्बजपब बपक) में परिवर्तित होने लगता है। इससे मांसपेशियां सिकुड़ने लगती हैं। लैक्टिक एसिड को ऑक्सीजन की पूर्ति होने पर वह पुनः ग्लाइकोजन में परिवर्तित हो जाता है किन्तु ऑक्सीजन के अभाव में यह कार्य बंद हो जाता है। ऐसी स्थिति में श्वास की गति में तीव्रता आ जाती है अथवा श्वास रुक-रुककर आती है।

2. मांसपेशी तथा रक्त संचार में अनावश्यक तत्त्वों का समावेश- विभिन्न खोजों से यह सिद्ध हुआ है कि कई ऐसे तत्त्व हैं जो थकान के लिए उत्तरदायी होते हैं। जब ये तत्त्व मांसपेशियों में एकत्रित होने लगते हैं तो थकान की अनुभूति होती है। पौटेशियम फॉस्फेट (Porassium Phosphate) तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड आदि विषैले तत्त्व एवं गैस मांसपेशियों में एकत्रित होने लगेंगे तो कार्य करने की शक्ति का ह्रास होने लगता है। अन्ततः एक स्थिति में कार्यशक्ति शून्य हो जाती है। शरीर में आवश्यक तत्त्वों की कमी से शारीरिक विकास रुक जाता है तथा मानसिक संतुलन बिगड़ने लगता है।

3. थकान में अन्य दैहिक परिवर्तन- उपरोक्त विषैले तत्त्वों के अतिरिक्त थकान की अवस्था में कई अन्य शारीरिक क्रियाएं तथा परिवर्तन प्रभावित होते रहते हैं। इस दौरान रक्त संचार हृदय-गति एवं पाचन संस्थान में परिवर्तन होते हैं। अन्तःस्रावी ग्रंथियां, नाड़ी संस्थान आदि में परिवर्तन होने लगते हैं। रक्त कोशिकाओं तथा उनकी रासायनिक प्रक्रियाओं में स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि थकान के समय संपूर्ण शरीर तथा उसकी प्रत्येक आंगिक क्रिया प्रभावित होती है। शारीरिक तथा मानसिक थकान एक दूसरे से संबंधित होती है। अर्थात् शारीरिक थकान होने पर मानसिक शक्ति का ह्रास होता है। मानसिक कार्य के पश्चात् शारीरिक थकान का अनुभव होता है।

19.9.2.3 उत्पादन का ह्रास (Decrease in production)– शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के ह्रास का प्रभाव उत्पादन पर बढ़ता है। वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण थकान की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में समान नहीं होती है। इससे उत्पादन भी कम-ज्यादा होता रहता है। मोसो (Moso) ने आर्गोग्राफ के प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य क्षमता में भिन्नता होती है। लेहमन (Lehman) नामक विद्वान ने कार्य शक्ति के आधार पर व्यक्तियों को तीन श्रेणियों में बांटा-शक्तिशाली (Energetic), अशक्तिशाली (Unenergetic) एवं सामान्य शक्तिशाली (Normal energetic or fatigueable)। मार्टिन (Martin) नामक विद्वान ने बताया कि कार्य के पहले घंटों में कर्मचारी ज्यादा कार्य करता है किन्तु आराम से पूर्व बहुत कम कार्य कर पाता है और आराम के बाद पुन: अधिक कार्य करता है।

19.9.2.4 थकान का अन्य पक्षों पर प्रभाव (Effect of fatigue on other aspects)– उद्योग में थकान एक गंभीर समस्या है। इससे उद्योग के अनेक पक्ष प्रभावित होते हैं। इनमें मुख्य पक्ष हैं-उत्पादन की कमी, सामग्री का अपव्यय, दुर्घटनाओं की संभावना।

1. उत्पादन की कमी– कर्मचारी के थकान के साथ ही उत्पादन में कमी आने लगती है। वर्नन (Vernon) ने बताया कि कार्य अवधि चाहे कितनी ही कम हो, कर्मचारी पर थकान का प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पादन प्रभावित होता है।

2. सामग्री का अपव्यय– थकान के कारण कर्मचारी कार्य को महत्त्व नहीं देता है। परिणामस्वरूप कार्य में असावध ानी व विघ्न पैदा हो जाता है। उत्पादन के गुणों का लोप होने लगता है। कर्मचारी सामग्री को बरबाद करने लगता है। इस प्रकार उत्पादन की मात्रा और गुणात्मक स्वरूप में भी कमी आने लगती है।

3. दुर्घटना की संभावना–थकान के कारण दुर्घटनाओं की संभावना अधिक रहती है। इससे संपत्ति को हानि पहुंचती है तथा व्यक्तिगत रूप से क्षति होती है।

19.9.3 थकान के कारण (Causses of fatigue)

किसी कार्य के पीछे कारण अवश्य होता है। यद्यपि थकान एक कार्य न होकर कर्मचारी की एक शारीरिक एवं मानसिक अवस्था होती है। इसमें कार्य शक्तियों का ह्रास होता है। इस अवस्था को उत्पन्न करने वाले कुछ तत्त्व, दशाएं एवं परिस्थितियां होती हैं, जिन्हें थकान का कारण माना जाता है। ये कारण निम्न हैं–

1. कार्य के घंटों का प्रभाव (Influence of hours of work)
2. विश्राम काल का प्रभाव (Effect of rest pause)
3. तापमान एवं वातायन (temrature and ventilation)
4. मशीन की रचना (Machine desigh)
5. वातावरण का प्रभाव (Effect of Atmosphere)
6. उचित आसन का प्रभाव (Effect of proper posture)
7. व्यक्तिगत कारण (Individual factors)
8. सामाजिक कारण (Social factors)

19.9.3.1 कार्य के घंटों का प्रभाव (Influence of hours of work)– मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा यह तथ्य सामने आया है कि अधिक घंटे कार्य करने से प्रति घंटा उत्पादन में कमी आ जाती है। इसके विपरीत कार्य के कम घंटे होने पर उत्पादन में वृद्धि होती है। इस प्रकार यदि कार्य के घंटे अधिक लंबे होंगे तो कर्मचारी थकान का अनुभव करेगा।

19.9.3.2 विश्रामकाल का प्रभाव (Effect of rest pause)– उद्योग में कार्य के घंटों को कम करने के साथ कार्य घंटों के बीच विश्राम भी बहुत आवश्यक होता है। यदि कार्य के बीच आराम करने के बाद कर्मचारी पुन: कार्य करता है तो वह अधिक उत्पादन कर सकता है।

19.9.3.3 तापमान एवं वातायन (Temprature and ventilation) – अधिक ठंडा और अधिक गर्म स्थान पर कार्य करने वाले कर्मचारी शीघ्र ही थकान का अनुभव करते हैं। साथ ही कई बीमारियों से भी पीड़ित रहते हैं। इससे कर्मचारी के साथ उत्पादन भी प्रभावित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.9.3.4 मशीन की बनावट (Desigh of Machine)– कुछ मशीनों की बनावट इस प्रकार होती है कि या तो कर्मचारी खड़ा रहकर कार्य कर सकता है या बैठकर कार्य कर सकता है। इसलिए एक ही अवस्था में अधिक समय तक रहने से कर्मचारी जल्दी ही थक जाता है। कभी–कभी मशीन की बनावट इस प्रकार होती है कि शरीर के किसी अंग विशेष से ही अधिक कार्य लेना पड़ता है। इस प्रकार मशीन की बनावट भी थकान का महत्त्वपूर्ण कारण है।

19.9.3.5 वातावरण का प्रभाव (Effect of Atmosphere)– कोलाहल और थकान का गहरा संबंध होता है। उद्योग में जहां शोर अधिक होता है वहां कर्मचारी को जल्दी ही थकान का अनुभव होने लगता है। परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि कोलाहलपूर्ण वातावरण में कर्मचारी को काम करने के लिए शारीरिक बल अधिक लगाना पड़ता है। इससे कर्मचारी का ध्यान कार्य में केन्द्रित नहीं रह पाता है। इससे कार्य में त्रुटियों की संभावना भी अधिक रहती है। वेस्टन नामक विद्वान ने कपड़ा सीने वाले कुछ कर्मचारियों पर इसका प्रयोग किया तब यह निष्कर्ष निकाला कि शान्त वातावरण में 7.5 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि हुई।

19.9.3.6 उचित आसन का प्रभाव (Effect of proper posture)– कार्य करते समय कर्मचारी का उचित आसन न होने से थकान के साथ–साथ दुर्घटनाओं की भी संभावना बनी रहती है। शारीरिक आसनों को सही रखने के लिए उचित व्यवस्था न होने से कार्य पर इसका प्रभाव पड़ता है।

19.9.3.7 व्यक्तिगत कारण (Individual factors)– थकान के लिए अनेक व्यक्तिगत कारण उत्तरदायी होते हैं। उनमें दो कारण मुख्य हैं–नींद की कमी और प्रेरणा का अभाव।

1. नींद की कमी (Lack of sleep)– मनुष्य की उम्र के अनुसार नींद के निश्चित घंटे होते हैं। बड़ी मशीनों से संबंधित कार्य करने वाले कर्मचारी की नींद में यदि कोई कमी होती है तो थकान शीघ्र ही होती है, साथ में उत्पादन का ह्रास भी होने लगता है। दुर्घटनाओं की भी संभावनाएं अधिक रहती हैं। कम नींद के अलावा अधिक नींद भी थकान का कारण होती है।

2. प्रेरणा का अभाव (Lack of motivation)– प्रेरणा के अभाव में कर्मचारी को थकान की अनुभूति शीघ्र होने लगती है। यदि कार्य में संलग्न कर्मचारी को अर्थ या पदोन्नति संबंधी कोई जानकारी दी जाए तो वह एक प्रेरणा का कार्य करती है। इससे थकान का अनुभव देर से होगा और उत्पादन में भी वृद्धि होगी। इनके अतिरिक्त अस्वस्थता (Ill health), कुसमायोजन (Maladjustment) पर्याप्त शक्ति का अभाव (Lack of power required), कार्य अभ्यास का अभाव (Lack of practice on work) तथा कर्मचारी का पारिवारिक जीवन आदि ऐसे कारण हैं जो कर्मचारी की थकान में सहायक होते हैं।

19.9.3.8 सामाजिक कारण (Social factors)– समाज कर्मचारी की उद्योगशाला है। इस उद्योगशाला के पारिवारिकजनों से यदि किसी प्रकार का असंतोष होगा तो उसे थकान की अनुभूति बनी रहती है। यदि कर्मचारी इस उद्योगशाला में अपने को असुरक्षित महसूस करता है या मान–सम्मान जैसी अन्य कोई बात हो तो भी वह स्वयं को थका हुआ पाएगा। इससे भी उत्पादन प्रभावित होता है, दुर्घटनाओं की संभावना बनी रहती है।

19.9.4 थकान दूर करने के उपाय (Methods of eliminating fatigue)

उद्योग में जिन कारणों से थकान उत्पन्न होती है यदि उन्हीं कारणों का निराकरण किया जाए तो कर्मचारी थकान से बच सकता है। यही सबसे अच्छा उपाय है। थकान दूर करने के उपाय संक्षेप में निम्न प्रकार हैं–

19.9.4.1 समुचित कार्य अवधि (Proper working hours)– कर्मचारी को थकान की अनुभूति न होने पाए, इसके लिए सबसे सरल उपाय है कार्य के घंटे अधिक नहीं होने चाहिए। कार्यकाल की अवधि जलवायु, कर्मचारी के स्वास्थ्य, आयु आदि को ध्यान में रखकर निश्चित करनी चाहिए। कार्य अवधि औद्योगिक व्यवस्था की उन्नति की कुंजी होती है।

19.9.4.2 पर्याप्त विश्राम (Suffeicient rest pause)– थकान दूर करने के लिए विश्राम बहुत आवश्यक होता है। विश्रामकाल और विश्राम काल का वितरण थकान को दूर करने में बहुत सहायक होता है।

19.9.4.3 कार्य–परिवर्तन (Change of work)– लगातार एक ही कार्य करते रहने से कर्मचारी अरोचकता और थकान का शिकार हो जाता है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि यदि कर्मचारी को बदल–बदलकर कार्य करने को दिया जाए तो थकान व अरुचि की समस्या पैदा नहीं होगी।

19.9.4.4 औद्योगिक वातावरण (Industrial atmosphere)– थकान को दूर करने हेतु औद्योगिक वातावरण पर नियंत्रण रखना आवश्यक होता है। तापक्रम, प्रकाश, वातायन एवं शान्त वातावरण होने से कर्मचारी को थकान की अनुभूति कम होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.9.4.5 मशीन (Machine)—मशीनों से उत्पन्न थकान को दूर करने के लिए मशीनों की बनावटों में सुधार होना चाहिए। कभी-कभी मशीनें भी आवाज करने वाली होती हैं जो थकान को बढ़ाती हैं। इसलिए मशीनों की आवाज एक लय में हो। मशीन और कार्य की रफ्तार कर्मचारी की क्षमता और अनुभव के अनुसार होने से न तो कर्मचारी जल्दी थकेगा और न ही उत्पादन प्रभावित होगा।

19.9.4.6 कर्मचारी का स्वास्थ्य (Health of worker)- थकान का संबंध स्वास्थ्य से होता है। यदि कर्मचारी का स्वास्थ्य सही नहीं होगा तो कर्मचारी के लिए और भी अनेकों समस्याएं सामने आती हैं। इसलिए कर्मचारी के स्वास्थ्य का पूरा ख्याल रखना चाहिए।

19.9.5 थकान का मापन (Measurement of fatigue)

थकान दूर करने के उपायों का क्रियान्वय तभी उचित रूप से हो सकता है जब थकान मापन हेतु उपयुक्त विधियों का प्रयोग किया जाए। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर थकान मापन हेतु जिन परीक्षणों का निर्माण हुआ है वे निम्न हैं-

19.9.5.1 भौतिक परीक्षण (Psysical tests)- इन परीक्षणों द्वारा किसी विशेष समय में किसी विशेष व्यक्ति की 'शक्ति द्वारा उत्पादन' (Energy output) का मापन किया जाता है। इन परीक्षणों में 'हस्त-शक्ति मापन यंत्र' (Hand dynamometer), 'पारा-शक्ति मापन यंत्र' (Mercury dynamometer), 'जल-शक्ति मापन यंत्र' (Water dynamometer) आदि प्रमुख हैं।

19.9.5.2 दैहिक परीक्षण (Psysicological tests)- इसके द्वारा थकान के समय कर्मचारी की नाड़ी गति, ऑक्सीजन की मात्रा एवं गति तथा विभिन्न त्वचा संबंधी संवेदनाओं का मापन किया जाता है।

19.9.5.3 मनोदैहिक परीक्षण (Psychophisical tests)- इनके अंतर्गत मनोदैहिक परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। इसमें शरीर की कंपन (Oscillations) तथा विश्रामहीनता की अवस्था का भी मापन होता है।

19.9.5.4 रासायनिक परीक्षण (Chemical tests)-इन परीक्षणों द्वारा रक्त संचार, मल-मूत्र, लार आदि का विश्लेषण किया जाता है।

19.9.5.5 मानसिक परीक्षण (Mental tests)- इनके द्वारा समस्त मानसिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। संवेदनात्मक प्रभेद (Senory discrimination), ध्यान, कल्पना, बुद्धि, स्मृति आदि का मापन किया जाता है।

19.9.5.6 उत्पादन के रिकॉर्ड (Production Record)-औद्योगिक स्थितियों में इनका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग के संबंध में टपजमसमे ने लिखा है- "The production curve has been generally accepted as the most satisfactory test of futigue in determinating the effect of methods and the conditions of work upon the capacity to work."

यद्यपि यह कहना अनुचित होगा कि ये सारे परीक्षण दोषमुक्त हैं। इनके दोषों का निवारण पूर्णरूपेण संभव नहीं है। सावधानी के द्वारा इनको उपयुक्त बनाया जा सकता है।

19.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

I निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. औद्योगिक दुर्घटना के कारण तथा निवारण पर प्रकाश डालिए।

II लघूत्तरात्मक प्रश्नः-

1. थकान के स्वरूप को समझाते हुए थकान के मापन की विधियों का वर्णन करें।
3. औद्योगिक दुर्घटना के क्या दुष्परिणाम होते हैं? दुर्घटना प्रवणता हेतु कौन से परीक्षणों का उपयोग किया जाता है?
4. थकान दूर करने के उपाय बताइये?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई : 20 जीवन विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा औद्योगिक समस्याओं का निराकरण

संरचना

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्योग जगत की मुख्य समस्याएं
20.3 कर्मचारी-प्रबन्धन संबंधी समस्याएं एवं जीवन विज्ञान प्रशिक्षण
20.3.1 कर्मचारी की व्यक्तिगत समस्याएं एवं जीवन विज्ञान
20.3.2 कर्मचारी प्रबन्धन सम्बंधी समस्याएं एवं जीवन विज्ञान
20.3.3 थकान दुर्घटना सम्बंधी समस्याएं और जीवन विज्ञान
20.3.3 कर्मचारी की कुसमायोजन सम्बंधी समस्याएं एवं जीवन विज्ञान
20.3.5 अकुशल कर्मचारीयों की समस्याएं एवं जीवन विज्ञान
20.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.0 प्रस्तावना (Introduction)

औद्योगिक जगत् जहां देश एवं लोगों का आर्थिक विकास करता है वहीं इस जगत् को अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। प्रत्येक औद्योगिक इकाई की अपनी-अपनी समस्या है। कहीं कुछ समस्याएं सामान्य है तो कहीं विशिष्ठ। कुछ प्रमुख समस्याएं ऐसी भी होती है जो प्रत्येक औद्योगिक इकाई में होती है जैसे—उत्पादन की समस्या, उत्पादन के खपत की समस्या, कर्मचारी की व्यक्तिगत समस्याएं, कर्मचारी एवं प्रबंधन के बीच सम्बंधों की समस्या, थकान एवं दुर्घटना की समस्या, कर्मचारी मनोबल की समस्याएं एवं प्रदूषण सम्बंधी समस्याएं आदि-आदि। औद्योगिक इकाइयां इस प्रकार की समस्याओं का समाधान करने के लिए कई प्रकार के उपायों को अपनाती है और इनका समाधान भी करती हैं परन्तु कभी-कभी ये उपाय आर्थिक दृष्टि से मंहगे पड़ते हैं तो कई बार इन समस्याओं का निराकरण हो ही नहीं पाता।

पिछले कुछ दशकों से औद्योगिक जगत् में मानव सम्बंधी समस्याओं के समाधान के लिए कई ध्यान-योग पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा है। इन प्रयोगों से कई सकारात्मक प्रभाव सामने आए हैं और कई औद्योगिक समस्याओं का समाधान भी हुआ है। जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के प्रयोग भी औद्योगिक क्षेत्र में इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए किये गये हैं और इनके भी सकारात्मक प्रभाव देखे गये है। यद्यपि जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के प्रयोग वैज्ञानिक शोध के रूप में नहीं हो पाए हैं फिर भी जो कुछ भी प्रयोग हुए हैं उनसे परिकल्पना एवं सैद्धान्तिक रूप से यह स्पष्ट होता है कि जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान उद्योग की कई समस्याओं का हल करने में सक्षम है।

20.1 उद्देश्य (Objectives)

1. उद्योग जगत् की मुख्य समस्याओं के बारे में जान सकेंगे।
2. औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं में जीवन विज्ञान की भूमिका के महत्व को जान सकेंगे।

20.2 उद्योग जगत की मुख्य समस्याएं (Main Problems of Industrial Field)

उद्योग जगत् की मुख्य समस्याओं को हम निम्नलिखित कुछ मुख्य भागों में बांट सकते हैं और किस प्रकार जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के द्वारा इनका समाधान कर सकते हैं इसका भी उल्लेख आगे कर रहे हैं।

1. कर्मचारी की व्यक्तिगत समस्याएं—

(अ) पारिवारिक समस्याएं (ब) स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याएं

(स) मनोबल की समस्याएं (द) समायोजन की समस्याएं

2. कर्मचारी एवं प्रबंधन के मध्य सम्बंधों की समस्याएं,

3. थकान एवं दुर्घटना सम्बंधी समस्याएं

4. कर्मचारी की कुसमायोजन सम्बंधी समस्याएं, जैसे- चरित्र, घूसखोरी, कर्त्तव्यच्युतता एवं नशे की आदत,

5. अकुशल कर्मचारियों की समस्याएं।

उपरोक्त समस्याएं प्राय: सभी औद्योगिक इकाइयों में होती हैं और इनको हल करने के प्रयास भी निरन्तर किये जाते हैं। यदि इन समस्याओं का सही समय पर ध्यान देकर हल नहीं किया जाए तो ये समस्याएं जटिल हो सकती हैं और औद्योगिक कार्यों की निष्पत्ति पर इनका व्यापक नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। उपरोक्त समस्याओं के समाधान हेतु औद्योगिक इकाई के मालिक एवं प्रबंधक अनेक प्रकार के उपायों को काम में लेते हैं और इन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करते हैं।

उपरोक्त समस्याओं को ठीक से समझने तथा इनके निराकरण में जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान किस प्रकार उपयोगी है इसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या हम आगे कर रहे हैं। जीवन विज्ञान जहां व्यक्ति को जीने की कला सिखाता है वहीं प्रेक्षाध्यान व्यक्ति की आंतरिक शक्ति के आयामों को खोलता है। अधिकांश औद्योगिक समस्याएं मूलरूप से मनुष्य से ही सम्बंधित है। मनुष्य की ये समस्याएं उसके जीवन जीने की सही कला को नहीं जानने के कारण ही पैदा होती है। यदि मनुष्य जीवन जीने की सही कला जान जाता है तो समस्याएं शीघ्र ही समाप्त हो जाती है और यदि मनुष्य जीवन जीने की कला नहीं जान पाता है तो उसकी समस्याएं जटिल होती रहती हैं और बढ़ती रहती हैं। प्रेक्षाध्यान व्यक्ति के आंतरिक जगत् का परिष्करण करता है तथा इसका नियमित अभ्यास व्यक्ति को अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है, व्यक्ति की क्षमताओं का विकास करता है एवं उनका बोध करवाता है।

20.3 समस्याएं एवं जीवन विज्ञान प्रशिक्षण (Problems and Science of Living)

20.3.1 कर्मचारी की व्यक्तिगत समस्याएं एवं जीवन विज्ञान (Personal Problems of Worker and Science of Living)

20.3.1.1 पारिवारिक समस्याएं (Family Problems)

व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं में अन्य समस्याओं के अतिरिक्त पारिवारिक समस्याएं भी होती हैं जो व्यक्ति में तनाव पैदा करती है। इन तनावों के कारण व्यक्ति अपना कार्य ठीक ढंग से नहीं कर पाता। परिवार में कलह, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था की समस्या, परिवार के सदस्यों के साथ समायोजन आदि कुछ मुख्य समस्याएं व्यक्ति को तनावग्रस्त एवं अव्यवस्थित कर देती हैं जिसके कारण वह अपना आवंटित कार्य ठीक ढंग से नहीं कर पाता, फलस्वरूप उसके कार्य में त्रुटियां बढ़ जाती हैं और खराब निष्पादन होता है जिसका उद्योग के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। प्रेक्षाध्यान के कुछ प्रयोगों जैसे- कायोत्सर्ग, श्वास प्रेक्षा आदि प्रयोग प्रशिक्षण से व्यक्ति अपने व्यवहार एवं क्रियाओं को समान्य एवं सहज बना सकता है। कर्मचारी के परिवार के अन्य सदस्य भी प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान के प्रयोग करे तो उनके व्यवहार में भी सहजता आ जाती है। जिससे घर में प्रत्येक सदस्य का अन्य सदस्यों के साथ सामंजस्य बना रहता है। जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के नियमित प्रयोग से कर्मचारी में व्यवहार कुशलता बढ़ती है और उसका व्यवहार एवं क्रियाएं सहज होने लगती है जिससे उसका तनाव कम होता है और कार्य सम्बंधी त्रुटियां कम से कम होती है। इससे उसका निष्पादन अच्छा होता है एवं उद्योग का उत्पादन भी बढ़ जाता है।

20.3.1.2 स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याएं (Health Related Problems)

कर्मचारी में स्वास्थ्य सम्बंधी भी समस्याएं हो सकती हैं। वह शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से रूग्ण हो सकता है। वर्तमान के संघर्षमय जीवन एवं प्रतिस्पर्धा के कारण उक्त प्रकार के स्वास्थ्य रुग्णता स्वाभाविक है और इसका सीधा प्रभाव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर्मचारी की कार्य क्षमता एवं कार्य निष्पत्ति पर पड़ता है और इनका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक उत्पादन पर पड़ता है। जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान, योगासन एवं यौगिक क्रियाओं के द्वारा उक्त प्रकार की रुग्णताओं को ठीक किया जा सकता है और कर्मचारी स्वयं को स्वस्थ बनाए रख सकता है। इससे उसकी कार्य क्षमता बनी रहती है और उद्योग को प्रत्यक्ष लाभ होता है।

शारीरिक रुग्णता के कारण व्यक्ति की कार्य करने की शारीरिक क्षमता घट जाती है, व्यक्ति थकान का अनुभव करता है। मानसिक अस्वस्थता के कारण व्यक्ति में चिड़चिड़ापन आ जाता है। उसकी चिन्ताएं बढ़ जाती हैं एवं मानसिक अस्थिरता हो जाती है। भावनात्मक अस्वस्थता के कारण व्यक्ति का व्यवहार अतिसंवेदनशील हो जाता है और उसमें संवेगात्मक अस्थिरता आ जाती है। इनसे व्यक्ति के अन्तःस्रावी स्रावों में अनियमितता आ जाती है अर्थात् हार्मोन्स स्रावित करने वाली ग्रंथियों का कार्य अनियमित हो जाता है। जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के कुछ विशेष प्रयोगों जैसे- कायोत्सर्ग, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा आदि के प्रशिक्षणों द्वारा उपरोक्त रुग्णताएं दूर की जा सकती हैं। इन प्रयोगो से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का कार्य तथा हार्मोन्स का स्राव सामान्य हो जाता है फलस्वरूप व्यक्ति शारीरिक रूप से, मानसिक रूप से तथा भावनात्मक रूप से स्वस्थ रहता है। इस स्वस्थता के कारण व्यक्ति में कार्य करने की क्षमता शारीरिक एवं मानसिक रूप से बढ़ जाती हैं, परिणामस्वरूप वह अपना कार्य अधिक अच्छा करने लगता है और इससे उसकी कार्यनिष्पति भी बढ़ जाती है। अन्ततः औद्योगिक उत्पादन सही ढंग से बढ़ जाता है।

20.3.1.3 मनोबल की समस्याएं (Problems Related to Morals)

औद्योगिक स्वास्थ्य एवं उत्पादन पर वैयक्तिक मनोबल, सामुहिक मनोबल एवं औद्योगिक मनोबल का बहुत बड़ा प्रभाव पडता है। हमनें पूर्व अध्याय में मनोबल को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों की व्याख्याएं की हैं। कर्मचारी की संतुष्टि तथा प्रबन्धन के साथ उसके पारस्परिक संबंध उसके मनोबल को प्रभावित करते है। व्यक्ति का वैयक्तिक मनोबल समूह मनोबल को प्रभावित करता है और समूह मनोबल औद्योगिक मनोबल को प्रभावित करता है। मूलरूप से व्यक्ति का मनोबल बहुत महत्वपूर्ण होता है। व्यक्ति के मनोबल को ऊँचा बनाए रखनें के लिए उसकी संतुष्टि बनाए रखनी होगी तथा साथ ही साथ प्रबन्धन के साथ पारस्परिक अन्तर्क्रियाऐं भी सुधारनी होगी। इसके लिए व्यक्ति की वैयक्तिक अन्तर्दृष्टि और प्रबन्धन सदस्यों की अन्तर्दृष्टि का विकास होना आवश्यक है। जिससे कि दोनों के बीच अच्छा सामञ्जस्य स्थापित हो सके, दोनों पक्ष एक दूसरे की समस्याओं को समझ सके और एक दूसरे को संतुष्टि प्रदान कर सके। अन्तर्दृष्टि के विकास हेतु कुछ चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान किया जाता है और अनुप्रेक्षाएं की जाती है जैसे—दर्शन केन्द्र, ज्योति केन्द्र तथा ज्ञान केन्द्र पर ध्यान और सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा ।

20.3.1.4 समायोजन की समस्याएं (Adjustment Problems)

कर्मचारी का समायोजन उद्योग के उत्पादन एवं कर्मचारियों के कार्यों के निष्पत्तियों पर बहुत बडा प्रभाव डालता है। कर्मचारी का सही समायोजन स्वयं के साथ, अपने कार्य के साथ, अपने सहभागियों के साथ होना आवश्यक है। इसके लिए कर्मचारी के व्यक्तित्व के कुछ गुणों का विकास होना आवश्यक है। व्यक्ति की बुद्धि, उसका अहम्, उसका पराहम्, उसकी स्व-प्रत्यय निर्माण क्षमता एवं शारीरिक तथा मानसिक तनावों जैसे कारक उसके व्यक्तित्व की स्थिति को प्रदर्शित करते है। कुछ शोध कार्यो द्वारा (गौड़ 1997, गौड़ एवं बेताल 1998), यह स्पष्ट हुआ है कि प्रेक्षाध्यान से व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता बढ़ती है, उसके अहम् और पराहम् क्षमता की भी वृद्धि होती है। जिससे व्यक्ति अपने कर्तव्यों को अधिक ठीक ढंग से समझने लगता है। प्रेक्षाध्यान से व्यक्ति में स्व-प्रत्यय निर्माण क्षमता, स्वबोध क्षमता भी बढ़ती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक तनावों में सार्थक कमी आती है। गौड़ एवं बेताल (1998) ने अपने शोध कार्यों में प्रेक्षाध्यान से व्यक्तियों के समायोजन पर सार्थक एवं सकारात्मक परिवर्तन देखा। उनके अनुसार प्रेक्षाध्यान करने वाले व्यक्तियों में अपने परिवार में समाज, अपने स्वास्थ्य के प्रति तथा संवेगात्मक रूप से सार्थक एवं बेहतर समायोजन करने की क्षमता का विकास होता है। अतः प्रेक्षाध्यान करने वाला व्यक्ति अपने परिवार में, समाज में अपना समायोजन अच्छी तरह से कर सकता है। यदि औद्योगिक कर्मचारी भी नियमित रूप से ध्यान करे तो उसका समायोजन अपने प्रति, अपने कार्य के प्रति, अपने सहभागियों के प्रति अधिक अच्छा हो सकता है। कर्मचारियों के बेहतर समायोजन से औद्यिगिक समस्याएं कम होती है और उद्योग की प्रगति होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.3.2 कर्मचारी–प्रबन्धन संबंधी समस्याएं एवं जीवन विज्ञान (Worker- Management Related Problems and Science of Living)

प्रायः यह देखा जाता है कि अधिकांश उद्योगों में कर्मचारी एवं प्रबन्धन के संबंध मधुर नहीं होते। उद्योगपतियों एवं प्रबन्धन का उद्देश्य कम लागत पर अधिक लाभ अर्जित करना होता है इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे कभी–कभी अपने कर्मचारियों के हितों की उपेक्षा कर देते है। कर्मचारियों से अधिक कार्य लेना और वेतन कम देना, कर्मचारियों की कठिनाइयों और हितो पर ध्यान न देना, वेतन समय पर न देना, जानबूझ कर कर्मचारियों पर दोष थोपते हुए उनकी त्रुटियों को बढ़ा चढ़ा कर बताना एवं उन पर दबाव बनाए रखना ये सभी कारक कर्मचारियों में असंतोष बढ़ाते हैं तथा इनके कारण पहले कर्मचारी का वैयक्तिक मनोबल गिरता है और फिर कर्मचारियों का सामूहिक मनोबल, फलस्वरूप औद्योगिक मनोबल गिर जाता है। इससे उद्योग में अशांति एवं अस्थिरता का वातावरण बन जाता है, हड़तालें होती है और कर्मचारी एवं प्रबन्धन आमने–सामने हो जाते है। एसी स्थितियों में कर्मचारियों एवं उद्योगपतियों अर्थात् उद्योग के दोनों पक्षों को सभी प्रकार की क्षति होती है।

इसी तरह औद्योगिक कर्मचारी भी उद्योगपतियों और प्रबन्धन से आवश्यकता से अधिक अपेक्षाऐं रखते है। समय पर कार्य पूर्ण नहीं करना, कार्य ठीक ढ़ंग से नहीं करना, उद्योग में गुटबाजी पैदा करना, प्रबन्धकों और उद्योगपतियों को दबाने के लिए अनुचित तरीकों का प्रयोग करना। इस प्रकार के कार्य भी प्रबन्धन और उद्योगपतियों में कर्मचारियों के प्रति असंतोष पैदा करते है और इसका भी अंतिम परिणाम यही होता है कि प्रबन्धक और कर्मचारी आमने–सामने हो जाते हैं। उद्योग की तालाबंदी हो जाती है और कर्मचारियों की छंटनी होने लगती है। इन सभी क्रियाओं का बुरा प्रभाव कर्मचारियों, प्रबन्धन एवं उद्योग पर पड़ता है। कई बार कर्मचारी वर्ग एवं प्रबंधन के मध्य सही ढ़ंग से सम्प्रेषण (Communication) नहीं हो पाता। कर्मचारी वर्ग प्रबंधन की बात ठीक ढंग से नहीं समझ पाता और प्रबंधन कर्मचारियों की। गलत संप्रेषण से भी दोनों वर्गों में कई प्रकार की भ्रांतियां या गलतफहमी पैदा हो जाती है जिससे उद्योग में अनावश्यक तनाव बढ़ जाता है। अतः आदर्श उद्योग में कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों में ऐसे व्यवहार की अपेक्षा की जाती है जिससे दोनो पक्ष एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता का भाव रखें, एक दूसरे की भावनाओं का आदर करे और एक दूसरे को अधिक ठीक ढंग से समझें। कर्मचारी में यह भावना कि यह उद्योग हमारा अपना है इसे किसी प्रकार की क्षति नहीं होनी चाहिए इसकी क्षति हमारी क्षति है, उद्योग विकास में सहायक होती है। इसी तरह उद्योगपतियों एवं प्रबन्धन की यह भावना कि कर्मचारी इस उद्योग का एक महत्वपूर्ण अंग है उसके हितों की रक्षा करना उद्योग का कर्तव्य है और उसको होने वाली किसी भी प्रकार की क्षति उद्योग की क्षति है, उद्योग विकास में सहायक होती है।

उपरोक्त इस प्रकार की भावनाऐं उत्पन्न करने के लिए जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण एक अहम् भूमिका निभा सकता है। कायोत्सर्ग, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा तथा कुछ विशेष अनुप्रेक्षाएं जैसे–सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा, सामंजस्य की अनुप्रेक्षा, मृदुता की अनुप्रेक्षा, कर्तव्य परायणता की अनुप्रेक्षा आदि के प्रयोग द्वारा उपरोक्त प्रकार की भावनाओं को बढ़ा सकते है और उद्योगपतियों, प्रबन्धन और कर्मचारी के बीच उत्तम सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

20.3.3 थकान दुर्घटना संबंधी समस्याऐं और जीवन विज्ञान (Fatigue, Accident Related Problems and Science of Living)

"दुर्घनाओं का थकान से सीधा सम्बन्ध है। अधिकांश दुर्घटनाएं कर्मचारी की थकान से होती है। कर्मचारियों में थकान दो प्रकार से होती है–शारीरिक थकान और मानसिक थकान। शारीरिक थकान अधिक कार्य करने से तथा विश्राम न करने से होती है जबकि मानसिक थकान मानसिक रूप से अधिक कार्य करने, कार्य रूचि का न होने से, मानसिक दबाव बढ़ने से, चिन्ता एवं कुण्ठाओं के बढ़ जाने से होती है। शारीरिक एवं मानसिक थकान का सीधा प्रभाव व्यक्ति की कार्यक्षमता तथा औद्योगिक उत्पादन पर पड़ता है। थकान से व्यक्ति की कार्य क्षमता एवं औद्योगिक उत्पादन दोनों में गिरावट आ जाती है। दुर्घटना का थकान से सीधा संबंध है और थकान बढ़ने से दुर्घटनाएं भी बढ़ जाती हैं। दुर्घटना होने के और भी कई कारण है जैसे– कर्मचारी द्वारा मशीन संचालन के समय सावधानी न रखना, उसके ध्यान का बंट जाना, मशीन का ठीक नहीं होना, क्षमता से अधिक कार्य करना और कर्मचारी में किसी प्रकार की व्याधि का होना। जीवन–विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के द्वारा इन समस्याओं को सिद्धान्ततः काफी सीमा तक हल किया जा सकता है। शारीरिक थकान को कायोत्सर्ग द्वारा दूर किया जा सकता है इसी तरह मानसिक थकान भी कायोत्सर्ग, शरीर प्रेक्षा और चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा द्वारा कम की जा सकती है अथवा पूर्णतया मिटाई जा सकती है। कार्य के प्रति रूचि और ध्यान की क्षमता में अभिवृद्धि के लिए भी प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों का उपयोग किया जा सकता है। कुछ

शोध कार्यों में (गौड 1998, गौड़-बेताल 1999) यह पाया गया है कि प्रेक्षाध्यान का नियमित अभ्यास करने से व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक तनाव (Ergic-tension) सार्थक रूप से कम होते हैं।

20.3.4 कर्मचारी की कुसमायोजन संबंधी समस्याऐं एवं जीवन विज्ञान (Maladjustment and Science of Living)

उद्योग में कर्मचारियों का समायोजन एक बहुत बड़ी समस्या है। कुसमायोजन संबंधी समस्याओं में चरित्र संबंधि कुसमायोजन, घूसखोरी संबंधी कुसमायोजन, कर्त्तव्य च्युतता संबंधी कुसमायोजन और नशे की आदत संबंधि कुसमायोजन मुख्य समस्याएं हैं। कुछ कर्मचारी चरित्र से ठीक नहीं होते, ऐसे कर्मचारी अपने विपरीत यौन वाले कर्मचारियों को परेशान करते है जिससे उनके कार्य करने की क्षमता में गिरावट आ जाती है तथा उनके कार्य निष्पत्ति में कमी आ जाती है और उद्योग में अनावश्यक तनाव बढ़ जाता है। कई बार चरित्र हीन व्यक्तियों की गलत हरकतों से अनावश्यक तनाव उत्पन्न हो जाता है और उद्योग में लड़ाई-झगड़ा होने लग जाता है। कुछ कर्मचारी घूसखोरी या चोरी कार्य में लिप्त हो जाते है। वे अपने अधिनस्थ कर्मचारियों का कार्य करने के लिए घूसखोरी करते है। इसी तरह वे अपना कार्य करवाने के लिए अपने अधिकारियों को घूस देते हैं। इस प्रकार के कृत्य अन्य कर्मचारियों का मनोबल गिराते है और इसका सीधा प्रभात्र उद्योग के निष्पादन पर पड़ता है। कई कर्मचारी अपने कर्तव्य की पालना ठीक ढंग से नहीं करते और अपना अधिकांश समय अनावश्यक बातों और क्रियाओं में व्यतीत कर देते है। जिसके फलस्वरूप उद्योग में अपेक्षित उत्पादन नहीं हो पाता। इसका भी उद्योग पर बुरा असर पड़ता है। कई कर्मचारी नशे की आदतों से ग्रस्त होते है। ऐसे कर्मचारी स्वयं तो नशा करते ही है परन्तु साथ ही साथ अपने सहकर्मियों को भी नशा करने के लिए प्रेरित करते है। कई कर्मचारी अपनी कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए अफीम जैसे मादक पदार्थो का सेवन करते हैं तो कई शराब जैसे मादक पदार्थो का दुरूपयोग करते है। मादक पदार्थो का सेवन करके कार्य करना बहुत ही खतरनाक होता है क्योंकि मादक पदार्थो के प्रभाव के कारण कर्मचारी की मनोपेशीय कार्यप्रणाली ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाती है, क्योंकि मस्तिष्क शरीर के अंगों पर से अपना नियंत्रण खो देता है और कई बार कर्मचारी दुर्घटना ग्रस्त हो जाता है। इससे कर्मचारी अपनी क्षति के साथ-साथ उद्योग की भी क्षति करता है।

उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए जीवन विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के कई प्रयोगों का उपयोग किया जा सकता है। कायोत्सर्ग एवं प्रेक्षाध्यान के अतिरिक्त कुछ अनुप्रेक्षाओं का प्रयोग नैतिक मूल्यों के विकास के लिए किया जा सकता है। जिनमें विशेष रूप से आत्मानुशासन, प्रामाणिकता और करूणा की अनुप्रेक्षाएं की जा सकती हैं। ये व्यक्ति के नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों की अभिवृद्धि में सहायक होती है। इसी तरह आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण, एकत्व की अनुप्रेक्षा, कर्तव्यनिष्ठा आदि अनुप्रेक्षाओं से कर्मचारियों की कुसमायोजन सम्बंधी समस्याओं को हल किया जा सकता है। मादक पदार्थो का सेवन करने वाले कर्मचारियों को अप्रमाद केन्द्र पर ध्यान करवाने से मादक पदार्थ लेने की आदत में सुधार आता है और व्यक्ति मादक पदार्थों के सेवन का त्याग कर देता है। गौड़ एवं बेताल (1999) ने व्यसनियों पर किए गए एक शोध कार्य में यह पाया कि यदि व्यसनी नियमित रूप से दो माह तक प्रतिदिन 20 से 30 मिनट तक अप्रमाद केन्द्र पर ध्यान करें तो उनके नशा करने की प्रवृत्ति में सार्थक सकारात्मक सुधार होता है और कई व्यक्ति नशा मुक्त हो जाते हैं।

20.3.5 अकुशल कर्मचारियों की समस्याएं एवं जीवन विज्ञान (Incompetant Workers Related Problems and Science of Living)

कई बार उद्योग में गलत चयन हो जाने से अकुशल कर्मचारियों का प्रवेश हो जाता है। अकुशल कर्मचारियों के कार्य करने को ढंग सही नहीं होने से या कार्य करने का सही ज्ञान न होने से उद्योग में दुर्घटना हो जाने का भय बना रहता है। इन अकुशल कर्मचारियों से औद्योगिक कार्यों की निष्पत्ति पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे कर्मचारियों को जीवन-विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण औद्योगिक प्रशिक्षण के साथ-साथ दिया जाना चाहिए। जीवन-विज्ञान प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण कर्मचारियों में अन्तर्दृष्टि का विकास, अवधान क्षमता का विकास, बौद्धिक क्षमता विकास तथा कुछ अन्य योग्यताओं का विकास करने में सहायक होता है। इससे कर्मचारी औद्योगिक प्रशिक्षण को सहजता से एवं शीघ्रता से ग्रहण कर सकता है और वह एक कुशल कर्मचारी बन सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस तरह हम देखते हैं कि जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के विभिन्न अवयव औद्योगिक समस्याओं को सुलझाने में सक्षम है। इनसे उपरोक्त विभिन्न प्रकार की समस्याओं के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की औद्योगिक समस्याओं की समाधान किया जा सकता है। एक आदर्श उद्योग में कर्मचारियों के लिए जीवन-विज्ञान और प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। कई उद्योगों में मनोवैज्ञानिक एवं परामर्शदाताओं की नियुक्ति कर्मचारियों के हितों के लिए तथा उचित मार्ग-दर्शन के लिए की जाती है। उसी तरह जीवन-विज्ञान प्रेक्षाध्यान का भी प्रकोष्ठ स्थापित कर उसमें प्रेक्षा प्रशिक्षक की नियुक्ति करनी चाहिए। उद्योग में जीवन-विज्ञान और प्रेक्षाध्यान का नियमित प्रयोग न केवल कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान करेगा बल्कि उस उद्योग की सम्पन्नता और निष्पादन में भी अभिवृद्धि करेगा।

20.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. औद्योगिक समस्याओं को विस्तार से समझाइये।

2. औद्योगिक जगत् में कर्मचारी की व्यक्तिगत समस्याएं क्या हैं? इनका निराकरण जीवन-विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण से किस तरह संभव है?

3. संक्षेप में टिप्पणी करें—

   1. थकान-दुर्घटना एवं जीवन-विज्ञान
   2. कर्मचारी कुसमायोजन एवं जीवन-विज्ञान
   3. कर्मचारी-प्रबंधन समस्याएं एवं जीवन-विज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एम.ए./एम.एस–सी. (पूर्वार्द्ध)

विषय – योग एवं जीवन विज्ञान

चतुर्थ पत्र : व्यावहारिक मनोविज्ञान एवं जीवन विज्ञान

संवर्ग

संवर्ग	1	अनुप्रायोगिक मनोविज्ञान एवं व्यक्तित्व
संवर्ग	2	व्यक्तित्व सिद्धान्त
संवर्ग	3	मानवीय क्षमताएं जीवन विज्ञान
संवर्ग	4	जीवन विज्ञान और औद्योगिक जगत–I
संवर्ग	5	जीवन विज्ञान और औद्योगिक जगत–II

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. संग्रामसिंह नाथावत**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   एमिटी विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
2. **प्रो. ए.के. मलिक**
   पूर्व आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
3. **प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा**
   प्रो. एवं डीन, स्कूल ऑफ लाईफ साईंस,
   गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर
4. **डॉ. साधना दौनेरिया**
   सविभागाध्यक्ष, योग विभाग
   बरकतुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
5. **प्रो. समणी मल्लीप्रज्ञा**
   आचार्या, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)
6. **डॉ. बी.पी. गौड़**
   पूर्व सहआचार्य, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

लेखक

डॉ. बी.पी. गौड, डॉ. हेमलता जोशी

संपादक

प्रो. ए.के. मलिक, जोधपुर

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 2000

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विषयानुक्रमणिका

क्र. सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
संवर्ग 1 :	**अनुप्रायोगिक मनोविज्ञान एवं व्यक्तित्व**	
इकाई 1	व्यवहारिक मनोविज्ञान एवं व्यक्तित्व वर्गीकरण: विकास, परिभाषाएं एवं क्षेत्र	1
इकाई 2	व्यक्तित्व: अर्थ, परिभाषाएं एवं कारक	9
इकाई 3	क्रेत्समर एवं शेल्डन का वर्गीकरण	18
इकाई 4	व्यक्तित्व का वर्गीकरण एवं आचार्य महाप्रज्ञ	26
संवर्ग 2 :	**व्यक्तित्व सिद्धान्त**	
इकाई 5	जी. डब्ल्यू आलपोर्ट का सिद्धान्त	34
इकाई 6	मरे का सिद्धान्त	42
इकाई 7	मास्लो का मानवीय सिद्धान्त	51
इकाई 8	मनोगत्यात्मक सिद्धान्त	62
संवर्ग 3 :	**मानवीय क्षमताएं जीवन विज्ञान**	
इकाई 9	मानवीय क्षमताएं - प्रकृति एवं परिभाषाएं	80
इकाई 10	बुद्धि एवं इसके सिद्धान्त	85
इकाई 11	बुद्धि परीक्षण, तकनीक एवं इसके मापन की विधियां	92
इकाई 12	जीवन विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा मानवीय क्षमताओं का विकास	102
संवर्ग 4 :	**जीवन विज्ञान और औद्योगिक जगत-I**	
इकाई 13	औद्योगिक मनोविज्ञान का परिचय	106
इकाई 14	कार्मिक परामर्श और दिग्दर्शन	115
इकाई 15	कार्मिक चुनाव प्रक्रिया	130

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 16 जीवन विज्ञान, व्यवसाय संतुष्टि, विश्लेषण और औद्योगिक उपार्जन/उत्पादन 136

संवर्ग 5 : जीवन विज्ञान और औद्योगिक जगत–II

इकाई 17 औद्योगिक उत्साह और जीवन विज्ञान प्रशिक्षण 144

इकाई 18 नेतृत्व 151

इकाई 19 थकावट एवं दुर्घटना 159

इकाई 20 जीवन विज्ञान प्रशिक्षण द्वारा औद्योगिक समस्याओं का निराकरण 171

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun